धर्म की बलिवेदी पर

05 सितंबर 1980 को आंध्र प्रदेश (अब तेलंगाना) के हैदराबाद के एक प्रतिष्ठित मुस्लिम परिवार में जन्मीं बेगम फरहाना ताज की आस्था पवित्र वेदों में है। स्वामी दयानंद सरस्वती का अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने के बाद इन्होंने वैदिक धर्म अंगीकार किया और अपना नया नाम मधु धामा रखा।

नोट : देशभर के सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं के पास उपलब्ध, न मिलने पर हमारे वितरक को लिखें

हिन्दी साहित्य सदन

2, बी. डी. चैंबर्स, 10/54 डीबी गुप्ता रोड, करोल बाग, नई दिल्ली - 110005

मोबाइल : 9213527666, 7065618655 वेबसाइट : hindisahityasadan.com

धर्म की बलिवेदी पर

फरहाना ताज

संपादन एवं सहलेखन

तेजपाल सिंह धामा

आर्यखंड बुक्स

खेकड़ा, बागपत (उप्र)

प्रकाशक

Aryakhand Books

Registration Number : UPSA8001231
31, Ward No. 25, Patti Girdharpur, Khekra,
Baghpat, Uttar Pradesh INDIA - 250101
Website : www.aryakhandbooks.com
Email : aryakhandbooks@gmail.com
Mobile : 7838103843

ISBN : 978-93-949

एकमात्र वितरक
हिन्दी साहित्य सदन
2, बी. डी. चैंबर्स, 10/54 डीबी गुप्ता रोड, करोल बाग, नई दिल्ली - 110005
फोन : 9213527666, 7065618655 वेबसाइट: hindisahityasadan.com

सर्वाधिकार © **मधु धामा**
वीडियो बुक्स © **आर्यखंड इंडिया प्राइवेट लिमिटेड**
4/1663, प्रथम तल, गली नं. 3 महावीर ब्लॉक, भोलानाथ नगर,
शाहदरा दिल्ली-32, वेबसाइट: aryakhand.in एप्प : aryakhand
(google Playstore)
पाठ्यक्रम अंश © **नीरा आर्य स्मारक एवं पुस्तकालय**
खेकड़ा, बागपत, उत्तर प्रदेश, भारत - 250101
वेबसाइट: neeraaryamemorial.com

मूल्य : पेपरबैक (छात्रोपयोगी संस्करण) : 250.00 रुपए
सजिल्द (पुस्तकालय संस्करण) : 550.00 रुपए

संस्करण : 15 अगस्त, 2025

शब्दांकन : तेजस
मुद्रक
सागर प्रकाशन, शाहदरा - 110032

Dharam Ki Balivedi Par

by: Farhana Taj

अनुक्रम

कबीरदास...9
गुरु हरगोबिन्द...25
बलिदानी मतिदास, सतीदास और दयाला...30
गुरु तेगबहादुर...35
भाई उदय सिंह...41
भाई तारू सिंह...43
भाई सुबेग सिंह और शाहबाज सिंह...46
गुरु गोबिंद सिंह...49
अजीत सिंह...85
फतेह सिंह...87
बन्दा बहादुर...91
गोकुल जाट...107
वीर हकीकतराय...122
महर्षि दयानंद सरस्वती...138
पंडित लेखराम...141
स्वामी श्रद्धानन्द...163
महाशय राजपाल...184

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्रणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4)

अर्थात् जब जब धर्म की हानि होने लगती है और
अधर्म आगे बढ़ने लगता है, तब तब मैं
स्वयं की सृष्टि करता हूँ, अर्थात् जन्म लेता हूँ।

सज्जनों की रक्षा एवं दुष्टों के विनाश
और धर्म की पुनःस्थापना के लिए
मैं विभिन्न युगों मैं अवतरित होता हूँ।

भूमिका

भारत वह पावन देश है, जिसमें वैदिक सभ्यता का विकास हुआ और विश्व को सबसे पहला, पावन और ईश्वरकृत धर्म भारत ने ही दिया। इसे हम वैदिक धर्म के नाम से जानते हैं, कालांतर में इसे वैदिक या हिन्दू भी कहा गया। यह निर्विवाद सत्य है कि हिन्दू धर्म विश्व के सभी धर्मों में सबसे पुराना धर्म है।

ये वेदों पर आधारित धर्म है, जो अपने अन्दर कई अलग-अलग उपासना पद्धतियाँ, मत, सम्प्रदाय, और दर्शन समेटे हुए हैं। अनुयायियों की संख्या के आधार पर ये विश्व का तीसरा सबसे बड़ा धर्म है, संख्या के आधार पर इसके अधिकतर उपासक भारत में हैं और प्रतिशत के आधार पर नेपाल में है। हालाँकि इसमें कई देवी-देवताओं की पूजा की जाती है, लेकिन वास्तव में यह एकेश्वरवादी धर्म है।

हिन्दी में इस धर्म को सनातन धर्म अथवा वैदिक धर्म भी कहते हैं। इण्डोनेशिया में इस धर्म का औपचारिक नाम हिन्दु आगम है। हिन्दू केवल एक धर्म या सम्प्रदाय ही नहीं है अपितु जीवन जीने की एक पद्धति है हिंसायाम दूयते या सा हिन्दु अर्थात् जो अपने मन, वचन, कर्म से हिंसा से दूर रहे वह हिन्दू है और जो कर्म अपने हितों के लिए दूसरों को कष्ट दे वह हिंसा है। जिस धर्म में दूसरों को कष्ट देना भी अधर्म माना गया, उस धर्म पर विदेशी आक्रांताओं ने न जाने कितनी बार आक्रमण किए और हिन्दू धर्म के विनाश के लिए हर संभव प्रयास किए। यहाँ यवन और आंग्ल धर्म का प्रचार-प्रसार किया और विदेशी शासकों ने विदेशी मत और संप्रदाय को भारत में हिंसा के बल पर फैलाने का प्रयास किया तो उसका भारी विरोध किया गया। लेकिन चूँकि विदेशी शासक ही भारत में तानाशाह बने हुए थे, इसलिए उन्होंने धर्म की रक्षा के लिए आंदोलन करने वाले वीरों को हिंसक ढंग से निपटने की नीति अपनाई और यही कारण

है कि भारत में धर्म की बलिवेदी पर अपने प्राणों की आहुतियाँ देने वाले वीरों की संख्या बहुत अधिक है, लेकिन हमने इस पुस्तक में केवल दस ऐसे वीरों के जीवन चरित्र ही उकेरे हैं, जिन्होंने भारतीय धर्म, सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए भारत माता के चरणों में अपने शीश चढ़ाए हैं। आशा है इस पुस्तक से अपने धर्म के लिए स्वाभिमान उत्पन्न होने की प्रेरणा मिलेगी। हमारा भारत ऋषि-मुनियों का देश है, इसलिए इसकी संतानों में ऋषियों-मुनियों का रक्त ही दौड़ रहा है, यही कारण है कि आजकल भारतीय हर क्षेत्र में चहुंमुखी विकास कर रहे हैं। समय-समय पर भारत देश के उत्थान और नवनिर्माण से लेकर इसके चहुंमुखी विकास में देश के असंख्य लोगों का योगदान रहा है, जिनके प्रति हर भारतीय नतमस्तक है। देश के उत्थान और नवनिर्माण में योगदान देने वाले अनेक लोगों ने अपने बलिदान भी दिए हैं, यह पुस्तक ऐसे ही बलिदानियों की गौरव गाथा है। ये बलिदानी महापुरुष काल एवं समय-सीमा से परे हैं, क्योंकि इनकी प्रेरणा तो लोगों को युगों-युगों तक देती रहेगी।

इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें महापुरुषों के जीवन की घटनाएँ गहन अनुसंधान के बाद लिखी गई हैं। सही मायनों में यह पुस्तक सबसे अलग हटकर और बेहद उपयोगी बनाई गई है, ताकि आने वाली पीढ़ी महान लोगों के जीवन को जानकर स्वयं अपनी संतानों को जीनियस और राष्ट्रभक्त बना सके और बालक एवं किशोर इसे पढ़कर प्रेरणा के पथिक बन सकें। इसी आशा और विश्वास के साथ।

- फरहाना ताज

कबीरदास

विक्रमी संवत 1455 की बात है। मुस्लिम आक्रांता सारे भारत को परवश कर चुके थे। हिन्दुओं को बड़े पैमाने पर मुसलमान बनाया जा रहा था। उन दिनों काशी में गौरी शंकर और सरस्वती नामक दंपति रहता था। दोनों पति-पत्नी बड़े ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे, इसलिए समाज में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी।

मुसलमानों ने सोचा कि यदि इन्हें मुसलमान बना लिया जाए, तो इनके प्रभाव से साधारण हिन्दू तो स्वतः ही मुसलमान बन जाएंगे। इन्हें तरह-तरह की यातनाएं दी गई, लेकिन गौरी शंकर और सरस्वती मुसलमान बनने को तैयार नहीं हुए। अन्त में मुसलमानों ने इनकी गौ की हत्या इनके ही घर में कर दी। सभी ब्राह्मणों ने मिलकर एक पंचायत की। पंचायत में स्वामी रामानंद बोले, “गौरी शंकर तुम्हारे घर में गौ हत्या हुई है, क्या तुम इसका पाप अपने सिर पर लेते हो?”

“परन्तु गौ हत्या तो म्लेच्छों ने की है।”

“फिर भी हुई तो आपके ही घर में है। पाप तो हुआ ही है।”

“तो इस पाप का प्रायश्चित क्या है स्वामी जी।”

“एक हजार गाय ब्राह्मणों को दान करो।”

“परन्तु मैं ग़रीब, इतनी गाय कहां से लाकर दान करूं? मैं असमर्थ हूं।”

"तो तुम्हें धर्म एवं जाति से बहिष्कृत किया जाता है।"

इस प्रकार गौरी शंकर और सरस्वती को हिन्दू धर्म से बहिष्कृत कर दिया गया। उनके घर को आग लगा दी गई। किसी भी हिन्दू मोहल्ले में इन्हें रुकने नहीं दिया गया। जहां भी जाते लोग पत्थर मार-मार कर भगा देते। अंततः एक मुस्लिम फकीर की कुटिया में इन्हें शरण मिली।

बेचारे गौरी शंकर तथा सरस्वती विवश हो गए। दोनों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। मुसलमानों ने पुरुष का नाम नीरु तथा स्त्री का नाम नीमा रखा। पहले उनके पास जो पूजा आती थी उससे उनकी रोजी-रोटी चल रही थी, और जो कोई रुपया-पैसा बच जाता था वे उसका दुरुपयोग नहीं करते थे। उस बचे धन से धर्म-भण्डारा कर देते थे। अब पूजा आनी भी बंद हो गई। उन्होंने सोचा अब क्या करें? उन्होंने एक कपड़ा बुनने की खड्डी लगा ली और जुलाहे का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। कपड़ा बुन कर निर्वाह करने लगे। कपड़े की बुनाई से घर के खर्च के पश्चात्त जो पैसा बच जाता था, उसको भण्डारों में लगा देते थे। हिन्दू ब्राह्मणों ने नीरू-नीमा का गंगा घाट पर दरिया में स्नान करना भी बंद कर दिया था। कहते थे कि अब तुम मुसलमान हो गए हो।

गंगा दरिया का ही पानी लहरों के द्वारा उछल कर काशी में एक लहर तारा नामक बहुत बड़े सरोवर को भरे रखता था। उसमें बहुत निर्मल जल भरा रहता था, उसमें कमल के फूल उगे हुए थे।

उसी लहर तारा तालाब पर नीरू-नीमा सुबह-सुबह ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने के लिए प्रतिदिन जाया करते थे।

कहते हैं कि विक्रमी संवत 1455 ज्येष्ठ मास शुद्धि पूर्णमासी को ब्रह्ममुहूर्त में किसी विधवा स्त्री ने एक बालक को जन्म दिया। लोक-लाज के भय से वह उसे लहर तारा तालाब में फेंक आई। हालांकि कुछ लोग इस बात से सहमत नहीं। उनका कहना है कि सतलोक से एक दिव्य प्रकाश आया जो तालाब में बालक के रूप में बदल गया।

नीरू व नीमा प्रतिदिन की तरह उस दिन भी लहर तारा स्नान करने जा रहे थे। रास्ते में नीमा ने प्रभु से प्रार्थना की कि हे भगवान शिव (क्योंकि वे भले ही मुसलमान बन गए थे, लेकिन अपनी वह साधना हृदय

से नहीं भूल पा रहे थे, जो इतने वर्षों से कर रहे थे।) क्या आपके घर में हमारे लिए एक बच्चे की कमी पड़ गई? हमें भी एक लाल दे देते, हमारा जीवन भी सफल हो जाता। ऐसा कहकर फूट-फूट कर रोने लगी।

उसके पति नीरू ने कहा, "नीमा प्रभु की इच्छा पर प्रसन्न रहने में ही हित होता है। यदि ऐसे रोती रहेगी तो तेरा शरीर कमज़ोर हो जायेगा, आंखों से दिखना बंद हो जायेगा। हमारे भाग्य में संतान नहीं है। ऐसे कहते-कहते लहर तारा तालाब पर पहुंच गए।"

थोड़ा-थोड़ा अंधेरा था। नीमा स्नान करके बाहर आई। अपने कपड़े बदले। नीरू स्नान करने के लिए तालाब में प्रवेश करके गोते मार-मार कर नहाने लगा। नीमा जब स्नान करते समय पहना हुआ कपड़ा धोने के लिए दोबारा तालाब के किनारे पर गई, तब तक अंधेरा हट गया था। सूर्य उदय होने वाला ही था। नीमा ने तालाब में देखा कि सामने कमल के फूल पर कोई वस्तु हिल रही है। कबीर ने बच्चे के रूप में एक पैर का अंगूठा मुख में दे रखा था और एक पैर को हिला रहे थे। पहले तो नीमा ने सोचा कि शायद कोई सर्प न हो और मेरे पति की तरफ आ रहा हो। फिर ध्यान से देखा तो समझते देर न लगी कि ये तो कोई बच्चा है। बच्चा और कमल के फूल पर। एकदम अपने पति को आवाज़ लगाई कि देखना जी बच्चा डूबेगा, बच्चा डूबेगा।

नीरू बोला, "नादान तू बच्चों के चक्कर में पागल हो गई है। पानी में भी तुझे बच्चा नज़र आने लगा।"

"हां, वह सामने कमल के फूल पर देखो।" नीमा की ज़ोरदार आवाज़ से प्रभावित होकर जिस तरफ हाथ से संकेत कर रही थी नीरू ने उधर देखा, एक कमल के फूल पर नवजात शिशु लेटा हुआ था। नीरू उस बच्चे को फूल समेत उठा लाए और नीमा को दे दिया। जैसे व्यक्ति गुड़ खा कर अन्य को उसके आनन्द को नहीं बता सकता, खाने वाला ही जान सकता है। जैसे मां प्यार करती है ऐसे शिशु कबीर के कभी मुख को चूमा, कभी सीने से लगा रही थी और फिर बार-बार उसके मुख को देख रही थी। इतने में नीरू स्नान करके बाहर आया। (क्योंकि मनुष्य समाज की तरफ़ ज़्यादा देखता है) उसने विचार लगाया कि न तो अभी मुसलमानों से हमारा

कोई विशेष प्यार बना है और हिन्दू ब्राह्मण भी हमारे से द्वेष करते हैं। पहले इसी अवसर का लाभ मुसलमानों ने उठाया कि हमें मुसलमान बना दिया। हमारा कोई साथी नहीं है। यदि हम इस बच्चे को ले जाएंगे तो लोग पूछेंगे कि बताओ इस बच्चे के माता-पिता कौन हैं? तुम किसी का बच्चा उठा कर लाए हो। इसकी मां रो रही होगी। हम क्या जवाब देंगे, कैसे बताएंगे? कमल के फूल पर बताएंगे तो कोई मानेगा नहीं। यह सर्व विचार करके नीरू ने कहा, "नीमा इस बच्चे को यहीं छोड़ दे।"

"जी मैं इस बच्चे को नहीं छोड़ सकती। मेरे प्राण जा सकते हैं, मैं तड़फ कर मर जाऊंगी। न जाने मेरे ऊपर इस बालक ने क्या जादू कर दिया? मैं इसको नहीं छोड़ सकती।" नीरू ने नीमा को सारी बात समझायी कि हमारे साथ ऐसा बन सकता है।

नीमा ने कहा, "इस बच्चे के लिए मैं देश निकाला भी ले सकती हूं, परन्तु इसका नहीं छोडूंगी। नीरू ने उसकी नादानी को देख कर सोचा कि यह तो पागल हो गई, समाज को भी नहीं देख रही है। नीरू ने नीमा से कहा कि मैं आज तक तेरी बात की अवहेलना नहीं की थी, क्योंकि हमारे बच्चे नहीं थे। जो तू कहती रही मैं स्वीकार करता रहा। परन्तु आज मैं तेरी यह बात नहीं मानूंगा। या तो इस बालक को यहीं पर रख दे, नहीं तो तुझे अभी दो थप्पड़ लगाता हूं। उस महापुरुष ने पहली बार अपनी पत्नी की तरफ़ हाथ किया ही था। उसी समय शिशु रूप में कबीर जोर-जोर से रोने लगा। नीरू को बालक पर दया आ गई और उन्होंने इसे अपना लिया।

कबीर जब पांच वर्ष के हुए तो उसके माता-पिता उसे रामानंद से शिक्षा दिलाना चाहते थे, लेकिन एक मुसलमान को रामानंद ने पढ़ाने से इनकार कर दिया। यह बात बालक कबीर को अच्छी नहीं लगी, इसलिए उसने रामानंद को ही गुरु बनाने की ठान ली।

कबीर ने गुरु मर्यादा बनाए रखने के लिए एक लीला की। वे सुबह-सुबह अंधेरे में पंचगंगा घाट की पौड़ियों के ऊपर लेट गए, जहां पर स्वामी रामानंद जी प्रतिदिन स्नानार्थ जाया करते थे। रामानंद चारों वेदों के ज्ञाता और पवित्र गीता के विद्वान माने जाते थे। स्वामी रामानंद की आयु 104 वर्ष की हो चुकी थी। काशी में जो पाखण्ड पूजा दूसरे पंडितों ने चला रखी थी वह बंद करवा दी थी। रामानंद जी शास्त्र अनुकूल साधना बताया करते थे और पूरी काशी में अपने बावन दरबार लगाया करते थे। रामानंद पवित्र वेदों के आधार पर विधिवत् साधन बताते थे। ओम् नाम का जाप उपदेश देते थे।

उस दिन भी जब स्नान करने के लिए पंचगंगा घाट गए तो पौड़ियों पर कबीर लेटे हुए थे। सुबह ब्रह्ममुहूर्त के अंधेरे में स्वामी रामनंद जी को कबीर दिखाई नहीं दिए। कबीर के सिर में रामानंद जी के पैर की खड़ाऊं लग गई। कबीर ने जैसे बालक रोते हैं ऐसे रोने शुरू कर दिया। रामानंद जी तेजी से झुके और देखा कि कहीं बालक को चोट तो नहीं लग गई तथा प्यार से उठाया। उसी समय रामानंद जी के गले की कण्ठी (माला) निकल कर कबीर के गले में डल गई। रामानंद ने कहा कि बेटा राम-राम बोलो। राम के नाम से दुःख दूर हो जाते हैं, पुत्र राम-राम बोलो, कबीर के सिर पर हाथ रखा। बालक चुप हो

गया। फिर रामानंद स्नान करने लग गए और सोचा कि बच्चे को आश्रम में ले चलूंगा, जिसका होगा उसके पास भिजवा दूंगा। रामानंद ने स्नान करके देखा तो बच्चा वहां पर नहीं है। कबीर को साधना के लिए राम नाम मिल गया था। कबीरदास हर समय अपने इसी इष्टदेव श्रीराम के पावन नाम का चिंतन किया करते थे। भक्तजनों को उपदेश देते हुए वह अक्सर कहते कि जो व्यक्ति सत्य और सदाचार का पालन करते हुए भगवान के नाम का स्मरण करता है, उसे कभी पाप और नरक से भयभीत नहीं होना चाहिए। कबीरदास ने अपनी साखियों में ग़रीबों, असहायों और अपाहिजों के प्रति दया भाव और करुणा रखने तथा कर्मकांडों और आडंबरों से दूर रहने की प्रेरणा दी।

एक दिन स्वामी रामानंद का कोई शिष्य कहीं पर सत्संग कर रहा था। कबीर वहां पर चले गए। वह ऋषि जी श्री विष्णु पुराण की कथा सुना रहा था। वह कह रहा था कि भगवान विष्णु जी सारी सृष्टि के रचनहार हैं, यही पालनकर्ता हैं, यही राम और कृष्ण रूप में अवतार आने वाली परम शक्ति हैं, अजन्मा हैं, श्री विष्णु जी के कोई माता-पिता नहीं हैं। कबीर ने यह सारी चर्चा सुनी। सत्संग के उपरान्त कबीर ने कहा, "ऋषि जी क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूं?"

"हां बेटा! पूछो।" वहां सैकड़ों की संख्या में भक्तजन उपस्थित थे।

"आप विष्णु पुराण से सत्संग सुना रहे थे कि श्री विष्णु जी परमशक्ति हैं, इन्हीं से ब्रह्मा और शिव की उत्पत्ति हुई है।"

"मैं जो सुनाता हूं, विष्णु पुराण में ऐसा ही लिखा हुआ है।"

"ऋषि जी मैंने तो आपसे संशय निवारण के लिए प्रार्थना की है आप क्षुब्ध मत होईये। एक दिन मैंने—शिव पुराण सुना था। उसमें वह महापुरुष सुना रहे थे कि भगवान शिव से विष्णु और ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। देवी भागवत के तीसरे स्कंद में लिखा है कि देवी इन तीनों ब्रह्म-विष्णु-शिव की मां है। ये तीनों नाशवान हैं, अविनाशी नहीं हैं।"

ऋषि जी निरुत्तर हो गए, परन्तु क्रोधित होकर बोले, "तू कौन है? किसका पुत्र है?" कबीर से पहले ही दूसरे भक्तजन कहने लगे कि यह तो नीरू जुलाहे का पुत्र है।

स्वामी रामानंद का शिष्य कहने लगा कि तूने गले में कण्ठी कैसे डाल रखी है? (विष्णु व साधु तुलसी का एक मणिये की माला गले में डालते हैं, उससे यह प्रमाणित होता है कि इन्होंने विष्णु परंपरा से उपदेश ले रखा है।) "तेरा गुरुदेव कौन है?"

कबीर ने कहा, "मेरे गुरुदेव वही हैं जो आपके गुरुदेव हैं।"

वह ऋषि बहुत क्रोधित हो गया तथा बोला, "रे नादान! तू अछूत जुलाहे का बच्चा और मेरे गुरुदेव को अपना गुरुदेव बताता है। मेरे गुरुदेव का पता है कौन हैं? श्री श्री 1008 पंडित रामानंद जी आचार्य। तू जुलाहे का बालक, वे तो तेरे जैसे अछूतों के दर्शन भी नहीं करते और तू कह रहा है कि मैंने उनसे नाम लिया है। देख लो भाई भक्तजनों यह झूठा, कपटी है। अभी गुरुदेव के पास जाऊंगा और उनको तेरी सारी कहानी बताऊंगा। तू छोटी जाति का बच्चा हमारे गुरुदेव की बेइज्जती करता है।"

"ठीक है गुरुदेव जी को बताओ।" कबीर ने कहा।

उस ऋषि ने जाकर रामानंद जी बताया कि गुरुदेव जुलाहे जाति का एक लड़का है। उसने तो हमारी नाक काट दी। वह कहता है कि स्वामी रामानंद जी मेरे गुरुदेव हैं। हे भगवन्! हमारा तो बाहर निकलना दुःभर हो गया।

स्वामी रामानंद जी बोले कि कल सुबह उसको बुला कर लाओ। कल देखना तुम्हारे सामने मैं उसको कितना दण्ड दूंगा।

अगले दिन सुबह-सुबह कबीर को दस नादान व्यक्तियों ने पकड़ कर रामानंद के सामने उपस्थित कर दिया। रामानंद ने यह दिखाने के लिए कि मैं कभी छोटी जाति वालों के दर्शन भी नहीं करता, यह झूठ बोल रहा था कि इसने मेरे से दीक्षा ली है, आगे पर्दा लगा लिया। रामानंद ने पर्दे के पीछे से पूछा कि तू कौन है और तेरी क्या जाति है? तेरा कौन सा पंथ है, अर्थात किस परमात्मा की पूजा करता है?

कबीर ने कहा, "जाति हमारी जगतगुरु, परमेश्वर पद पंथ।
दास ग़रीब लिखति परै, नाम निरंजन कंत॥

यदि मेरी जाति पूछ रहे हो तो मैं जगतगुरु हूं।" मेरा पंथ क्या है? इसके उत्तर में कबीर ने कहा, "मेरा परमेश्वर पंथ है। ईश, ईश्वर, परमेश्वर

(ब्रह्म, परब्रह्म, पूर्णब्रह्म तथा क्षर पुरुष, अचर पुरुष, परम अक्षर पुरुष) मैं उस सर्वोच्च शक्ति परमेश्वर का मार्गदर्शन करने आया हूं, जो अनन्त कोटि ब्रह्मांड के रचयिता और धारक-पोषण करने वाले हैं।"

इस बात को सुनकर स्वामी रामानंद बहुत क्षुब्ध हो गए तथा कहा, "रे निकम्मे! तू छोटी जाति का और छोटा मुंह बड़ी बात। तू अपने आप भगवान बन बैठा।"

"हे गुरुदेव! आप मेरे गुरुजी हैं। आप मुझे गाली भी दें तो भी मुझे आनन्द आएगा। लेकिन मैं जो आपको कह रहा हूं, मैं ज्यों का त्यों पूर्णब्रह्म ही हूं, इसमें कोई संशय नहीं है। अहम् ब्रह्मास्मि।"

"ठहर जा तेरी लम्बी कहानी बनेगी, तू ऐसे नहीं मानेगा। मैं पहले अपनी पूजा कर लेता हूं।" रामानंद ने आगे कहा, "इसको बैठाओ मैं पहले अपनी कुछ क्रिया रहती है वह कर लेता हूं, बाद में इससे निपटूंगा।"

स्वामी रामानंद जी क्या क्रिया करते थे? भगवान विष्णु जी की एक मूर्ति बनाते थे। फिर स्वच्छ कपड़े भगवान ठाकुर को पहना कर गले में माला डालकर, तिलक लगाकर मुकुट रख देते हैं। रामानंद जी ने भगवान की कलात्मक मूर्ति बनाई। श्रद्धा से जैसे नंगे पैरों जाकर अपने आप ही गंगा जल लाए हों, ऐसी अपनी भावना बना कर ठाकुर जी को स्नान करवाया तथा नए वस्त्र पहना दिए। तिलक लगा दिया, मुकुट रख दिया और कण्ठी (माला) डालनी भूल गए। यदि कण्ठी न डालें तो पूजा अधूरी और मुकुट रख दिया तो पुनः उसे उतारा नहीं जा सकता। यदि उसी दिन मुकुट उतार दें तो पूजा खण्डित मानी जाती है। स्वामी रामानंद जी अपने आप को कोस रहे थे कि इतना जीवन हो गया मेरा, कभी भी ऐसी गलती जीवन में नहीं बनी थी। प्रभु आज क्या गलती बन गई मुझ पापी से? यदि मुकुट उतारूं तो पूजा खण्डित। उसने सोचा कि चल मुकुट के ऊपर से कण्ठी (माला) डाल कर देखता हूं। मुकुट में माला फंस गई आगे नहीं जा रही थी। तब रामानंद जी ने सोचा अब क्या करूं? हे भगवन्! आज तो मेरा सारा दिन व्यर्थ गया। आज की मेरी भक्ति कमाई व्यर्थ गई (क्योंकि जिसको परमात्मा की कसक होती है उसका एक नित्य नियम भी रह जाए तो उसको दर्द बहुत होता है। जैसे इंसान की जेब कट जाए और फिर

बहुत पश्चाताप करता है। ऐसे ही प्रभु के सच्चे भक्तों को इतनी लगन होती है।) इतने में कबीर ने कहा, "स्वामी जी माला की घुण्डी खोलो और गले में डाल दो। फिर गांठ लगा दो, मुकुट उतारना नहीं पड़ेगा।" अब रामानंद जी काहे के मुकुट उतारे था, काहे की गांठ खोले था। कुटिया के सामने लगा पर्दा भी स्वामी रामानंद ने अपने हाथ से उतार फेंक दिया और सारे ब्राह्मण समाज के सामने कबीर को सीने से लगा लिया। रामानंद ने कहा कि हे कबीर! आपका तो इतना कोमल शरीर है जैसे रूई हो और मेरा तो पत्थर जैसा शरीर है। एक तरफ तो प्रभु खड़े हैं और एक तरफ जाति व धर्म की दीवार है। प्रभु चाहने वाली पुण्यात्माएं धर्म की बनावटी दीवार को तोड़ना श्रेयकर समझती हैं। वैसा ही स्वामी रामानंद ने किया।

अब वे प्रायश्चित का महत्व समझ चुके थे। इसके बाद स्वामी रामानंद के सत्संग के लिए राजा से लेकर साधारण भक्त तक आने लगे थे। एक दिन राजा दिव्यांशु सपरिवार सत्संग के लिए आए हुए थे। एक व्यक्ति ने उन्हीं के समक्ष प्रश्न किया, "महात्मा, मैंने कुसंगति में पड़कर अनेक अपराध किए हैं। मैं पापों से हर क्षण भयभीत रहता हूं। कई बार मन में आता है कि आत्महत्या कर पापों से मुक्ति पा लूं।"

स्वामी जी ने कहा, "मानव जीवन बड़े भाग्य से मिलता है। इसे सत्संग में लगाना चाहिए। कुसंग के कारण पाप कर्म होना स्वाभाविक है। सबसे पहले कुकर्मियों का संग न करने का संकल्प लो। भविष्य में गलत कार्य न करो। प्रायश्चित से मन शुद्ध हो जायेगा।"

राजा ने यह बात सुनी, तो उसके मन में जिज्ञासा पैदा हुई कि प्रायश्चित से मन की शुद्धि कैसे हो सकती है? वह दूसरे दिन स्वामी जी के पास जा पहुंचा। उसने प्रश्न किया, "महाराज, प्रायश्चित से मन की शुद्धि व पापों से मुक्ति कैसे मिल सकती है?"

स्वामी जी बोले, "हमारे साथ भ्रमण के लिए चलो।" वह राजा को नदी किनारे ले गए। नदी के एक किनारे का पानी सड़ गया था। उससे बदबू आ रही थी। स्वामी जी ने पूछा, "राजन, यह जानते हो कि यह पानी क्यों सड़ गया है?"

राजा ने कहा, "महात्मन् जल का प्रवाह रुकने के कारण पानी सड़ गया है।"

रामानंद ने कहा, "जिस प्रकार वर्षा का पानी या पानी का वेग सड़े पानी को धकेलकर साफ कर देता है, उसी प्रकार प्रायश्चित मन व हृदय के विकारों को बहाकर ले जाता है। सत्संग से ही पाप कर्मों का अंत होता है।"

रामानंद के गले लगाने के बाद धीरे-धीरे कबीर की ख्याति चारों ओर फैल गई। वे अपनी बात काव्यात्मक ढंग से कहने लगे, क्योंकि काव्य में कही गई बातों का समाज पर ज़्यादा प्रभाव पड़ता था।

एक हाथ में तलवार व दूसरे में कुरान लेकर सिकन्दर लोदी जेहाद के लिए भारत में जगह-जगह कत्लेआम मचा रहा था। उन दिनों उसने काशी में गदर मचाया हुआ था।

उस दिन काशी नगरी में सुलतान सिकन्दर लोदी का दरबार लगा हुआ था। मुल्लाओं ने मिलकर लोदी से शिकायत पेश की थी कि काशी का एक मुसलमान जुलाहा कबीर बड़े जोर-शोर के साथ इस्लाम के विरुद्ध प्रचार कर रहा है और इस तरह प्रजा को भड़का रहा है। काज़ी ने सुल्तान से हुक्मनामा लेकर कबीर को गिरफ्तार करवा लिया था। आज उसकी दरबार में पेशी थी।

व्यक्ति बूढ़ा होता है, पर सत्य हमेशा जवान रहता है। कबीर की उम्र छियानबे वर्ष की हो चुकी थी। दुबला-पतला शरीर बुढ़ापे ने जर्जर बना डाला था। उसके दोनों हाथों में हथकड़ियां पड़ी हुई थीं। सूखे सफेद बाल. ..चहेरे पर झुर्रियां...झुर्रियों में से झांकती चुंधियाई आंखें...लेकिन उन चुंधियाई आंखों में सत्य की चमक। भले ही वह खड़ा किया गया था अपराधी की स्थिति में और हाथ बांध दिए गए थे उसके। परन्तु उसकी आंखों की वह चमक तनकर सीधी चौंध फेंक रही थी ऊंचे सिंहासन पर

तने बैठे सुलतान सिकन्दर लोदी की क्रोध से तमतमा रही गोल-गोल दोनों आंखों में।

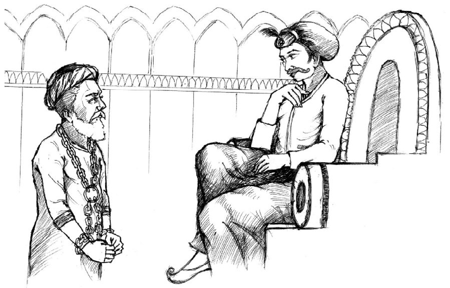

"तो इसी वृद्ध जुलाहे का नाम कबीर है?" सुलतान ने काज़ी से पूछा था।

"हां, जहांपनाह!" काज़ी ने अदब से खड़े होकर तथा झुककर कहा।

"इसका गुनाह?"

"शहंशाह, यह जुलाहा रियाया को भड़काता फिरता है—इस्लाम के खिलाफ़ मुसलमानों के खिलाफ़, मुल्लाओं के खिलाफ़, कुरान पाक के खिलाफ़, मस्जिदों के खिलाफ़, रोज़े-जमाज़ के खिलाफ़। कहता है, नमाज़ ढोंग है; मुसलमान गौहत्या करते हत्या करते हैं। दिन को रोज़ा रखते हैं, राम को गऊ का मांस खाते हैं। इस तरह से पहले तो बन्दगी करते हैं फिर खून करते हैं। यह हर तरह के कुफ्र कहता फिरता है। शरीअत के मुताबिक यह काफिर है। इसलिए तरह की रूह से इस काफिर को सज़ा सुनाकर हुजूर सुआब हासिल करें।"

"ठीक है।" इसके बाद सुलतान ने कबीर से पूछा, "क्या तुम अपना जुर्म कुबूल करते हो कि तुमने यह सब कह-कहकर रियाया को भड़काने की कोशिश की है और कुरान पाक की तौहीन की है?"

"मैंने न किसी को भगड़काया है, न किसी की तौहीन की है।" कबीर बोला, "जो मुझे सच लगा है वही कहा है। चाहे वह मुसलमानों के बारे में हो, चाहे हिन्दुओं के बार में हो। इसीलिए तो मैं कहता फिरता हूं :

"अरे इन दोउन राह न पाई,
हिन्दू अपनी करें बड़ाई, गागर छुअन न देई
वेस्या के पायन तर सोवें, यह देखो हिन्दुआई
मुसलमान के पीर औलिया, मुरगी मुरगा खाई
खाला केरी बेटी ब्याहें, घरहि में करें सगाई।

"तो क्या तू इस्लाम की बुराई करके हज़रत मुहम्मद साहब पर दोष नहीं मढ़ रहा?" सुलतान लोदी ने सवाल किया।

कबीर ने धीरे से उत्तर दिया :

"न जाने तेरा साहब कैसा।
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे
क्या साहब तेरा बहरा है।
चिऊंटी के पग नेवर बाजे
सो भी साहब सुनता है।"

"कबीर तेरी बातों से तो हमें शक होने लगा है कि तू मुसलमान है भी कि नहीं। सच बता, तेरे मां-बाप कौन थे?"

"नीमा और नीरू मेरे माता-पिता हैं, जो बलात् मुसलमान बनाये गये थे। लेकिन मैं न मुसलमान हूं, न हिन्दू, सिर्फ इंसान हूं, साधु हूं :

जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।

इसीलिए मैं धरम-करम के पाखंडों को नहीं मानता। मुझे कोई लालच नहीं है इसलिए मैं ढोंग नहीं रचता।"

"साधु होकर धरम-करम नहीं मानता? कैसा धरम है तेरा? हो क्या तुम आख़िर? किस पंथ के साथ हो?" सुलतान लोदी ने पूछा।

"ना मैं धरमी नाहिं अधरमी
ना मैं जती न कामी हो।
ना मैं कहता ना मैं सुनता
ना मैं सेवक, स्वामी हो।

सबकी नज़रें कबीर पर टिकी थी। काज़ी ने उठकर कहा, "शहंशाह, यह बागी है। देख लीजिए, इसकी बातों से बगावत की बू आ रही है।"

तभी पीछे से कबीर की पत्नी लोई आगे आकर कहने लगी, "यह बागी नहीं है। सच ही कह रहे हैं कि यह सबसे अलग है।"

लोदी गरजा, "कौन है यह औरत?"

काज़ी ने बताया, "हुज़ूर, यह इस बागी की बीवी है।"

सुलतान ने आंखों तरेरकर कबीर और लोई की ओर देखते हुए कहा,

"बगावत की सज़ा जानते हो? रियाया में पाक मज़हब के खिलाफ़ नफरत की आग फैलाने के अलावा तुम हुकूमत के खिलाफ़ भी नफरत फैलाने की हिमाकत कर रहे हो। तुम जानते हो इस गुनाह का नतीजा?"

"खूब जानता हूं।" कबीर ने गम्भीर स्वर में कहा, "लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि मैं किसी से नफरत नहीं करता। न मैं घृणा फैला रहा हूं। मैं तो अगर कुछ फैला रहा हूं तो केवल प्रेम। लेकिन मैं देख रहा हूं कि प्रेम न हिन्दू धर्म सिखा रहा है, न इस्लाम। हिन्दुओं ने वर्ण बनाकर इंसानों के बीच नफरत की दरारें डाली हुई हैं और मुसलमान आज इस्लाम के नाम पर इंसानों के ऊपर जुल्म ढा रहे हैं। क्या पंडित और क्या मुल्ला-काज़ी, सबके सब अपने-अपने तौर पर लोगों को लूट रहे हैं हर तरफ ढोंग-ही-ढोंग दिखाई दे रहा है मुझे तो, प्रेम कहीं नहीं नजर आता। और किसी को इतनी फुरसत नहीं कि प्रेम का रस पी सके। अपनी-अपनी डफली पर अपना-अपना स्वार्थ का राग गाने में मस्त है हर कोई। कोई नहीं सुन पर रहा प्रेम-रूपी सत्य के उस अनहद नाद को। किसी भी किताब को देख लें, चाहे वेद हो या कुरान, सभी प्रेम को ही ईश्वर का प्रसाद बताते हैं। प्रेम से बड़ा कोई पंथ नहीं।" उसने आगे कहा, "और क्योंकि मैं प्रेम में विश्वास रखता हूं इसीलिए मैं हिंसा का विरोध करता हूं। हिंसा का विरोधी हूं, तभी तो मांस खाने के खिलाफ़ हूं।''

"यह काफ़िर है।" काज़ी ने कहा, "हुजूर, क्या यह हिन्दुओं जैसी बात नहीं कह रहा?"

कबीर ने उत्तर दिया, "किसी बेकुसूर की जान लेने की बात करना ही अगर हिन्दुओं वाली बात करना है काज़ी साहब, तो मैं माने लेता हूं, यह हिन्दुओं जैसी बात है। लेकिन इस काम में हिन्दू भी थोड़े ही कम हैं। वे भले ही गऊ को नहीं मारते, लेकिन बाकी तो बेकुसूर-बेजुबान जानवरों को वे भी मार खाते हैं। मैं तो हर उस आदमी को बुरा कहता हूं जो दूसरों को खाता है या दूसरों का खाता है। मुल्ला हों या पंडित, सबके-सब भोले-भाले लोगों को रूढ़ियों के जंजाल में जकड़कर उन्हें चूस रहे हैं। दूसरों के माल पर मौज उड़ा रहे हैं। ढोंगी हैं, चोर हैं, लुटेरे हैं और यह सारी-की-सारी लूट मचाई जाती है मज़हब के नाम पर। मज़हब चाहे कोई

भी हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। लूटने का ढंग बदल जाता है, बस। इसलिए मज़हब की नहीं मानव बनने की जरुरत है।"

कबीर की नसीहत पर सुलतान सिकन्दर लोदी क्रोधी शेर की तरह दहाड़ पड़ा "बस, बस, बहुत हो चुकी तेरी बकवास काफ़िर! तू खुद मान रहा है कि तू काफ़िर है। इसलिए हम तुझे मौत की सज़ा देते हैं।" फिर काज़ी की तरफ मुंह करके हुक्म दे दिया, "इस काफ़िर जुलाहे को मस्त हाथी के पैरों तले रौंद डालो।"

"कहते हैं कि मरने वाले की अंतिम इच्छा तो खुदा भी पूरी कर देते हैं।" कबीर ने कहा।

"क्या इच्छा है तुम्हारी काफ़िर?" लोदी ने पूछा।

"मुझे मौत की सज़ा मगहर में दी जाए।"

"क्यों?"

"क्योंकि मगहर के बारे में मान्यता है कि वहां मरने वाले को दोजख मिलता है, जब कि काशी में मरने वाले को जन्नत मिलती है।"

"क्या तुम जन्नत में नहीं जाना चाहते? जो मगहर में मरकर दोजख में जाना चाहते हो?"

कबीर ने मुस्कुराते हुए कहा :

"का काशी मगहर असर, हृदय राम बस मोरा
जो काशी तन तजै कबीरा, रामहि कौन निहोरा।

यानी जब राम मेरे हृदय में हैं, तो मेरे लिए क्या मगहर। सब एक समान हैं।"

जंजीरों में जकड़कर कबीर को मगहर लाया गया। वहां लाते ही जब सुलतान के हुक्म के अनुसार कबीर को मस्त हाथी के पैरों तले रौंदा जाने लगा, तब लोई पछाड़ खाकर पति के पैरों पर गिर पड़ी। पुत्र कमाल भी पिता से लिपटकर रोने लगा।

लेकिन कबीर तनिक भी विचलित नहीं हुआ। आंखों में वही चमक बनी रही। चेहरे की झुर्रियों में भय का कोई चिह्न नहीं उभरा। एकदम शान्त-गम्भीर वाणी में सुलतान को सम्बोधित हो कहने लगा :

"माली आवत देखिकर, कलियन करी पुकार।

फूले फूले चुन लिए
कालिह हमारी बार।"

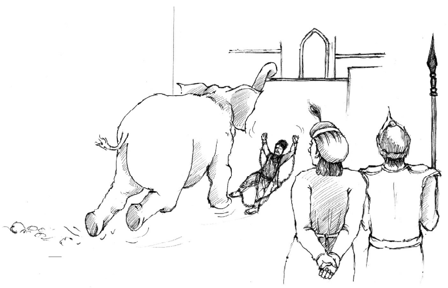

और फिर इतना कहते ही हलके से मुस्कुरा दिया।

कबीर आगे बोला, "मुझे तो मरना ही था; आज नहीं मरता तो कल मरता। लेकिन सुलतान कब तक इस गफलत में भरमाए पड़े रह सकेंगे, कब तक फूले-फूले फिरेंगे कि वह नहीं मरेंगे?"

कबीर के जन्म की तरह ही मृत्यु को लेकर भी अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं, परन्तु साहित्य तथा इतिहास सम्बन्धी शोधों के आधार पर जो तथ्य प्रमाणित होते हैं, वे यही सिद्ध करते हैं कि कबीर को मौत की सज़ा मिली थी। संवत् 1551 अर्थात सन् 1494 के आसपास, जब सिकन्दर लोदी काशी आया, वह इसकी मौत का कारण बना। मृत्यु का प्रामाणिक कारण भी सिकन्दर लोदी के आदेश से काज़ी द्वारा हाथी के पैरों तले कुचलवाया जाना ही है। कबीर को जिस समय हाथी के पैरों तले कुचलवाया जा रहा था, उस समय कबीर का एक शिष्य ही वहां मौजूद था, जिसने बाद में यह पद लिखा :

अहो मेरे गोविन्द तुम्हारा जोर
काज़ी बकिवा हस्ती तोर।
बांधि भुजा भलैं करि डार्‌यो
हस्ति कोपि मूंड में मार्‌यो।
भाग्यो हस्ती चीसां मारी
वा मूरत की मैं बहिहारी।
महावत तोकूं मारौं सांटी
इसहि मराऊं घालौं काटी।
हस्ती न तोरे धरे धियान
वाकै हिरदै बसे भगवान।

कहा अपराध सन्त हौ कीन्हा
बांधि पोट कुंजर कूं दीन्हा।
कुंजर पोट बहु बन्दन करै
अजहु न सूझे काज़ी अंधरै।
तीन बेर पतियारा लीन्हा
मन कठोर अजहूं न पतीना।
कहै कबीर हमारे गोब्यन्द
चौथे पद में जन का ज्यन्द।

अर्थात 'हे गोविन्द! आपकी शक्ति की बलिहारी जाऊं। काज़ी ने आपको (कबीर को) हाथी से तुड़वाने का आदेश दिया। कबीर की भुजाएं अच्छी तरह से बांधकर डाल दिया गया। महावत ने हाथी को क्रोधित करने के लिए उसके सिर पर चोट मारी। हाथी चिंघाड़कर दूसरी ओर भाग चला। उस प्रकार भागते हुए हाथी की मूरत पर मैं बलिहारी जाऊं। हाथी को भागता देख काज़ी ने महावत से कहा कि मैं तुझे छड़ी से पीटूंगा और इस हाथी को कटवा डालूंगा। लेकिन हाथी तो उस समय भगवान के ध्यान में मस्त था। लोग भी कहने लगे कि इस सन्त ने क्या अपराध किया है। जो इसका गट्ठर सा बांधकर हाथी के सामने डाल दिया गया है। लेकिन हाथी बार-बार उस गट्ठर की वन्दना करने लगा। पर अज्ञान से अन्धे हुए काज़ी को यह देखकर भी कुछ सुझाई न दिया। तीन बार उसने परीक्षा ली, परन्तु कठोर मनवाले काज़ी को अब भी विश्वास न हुआ। कबीर मन में कहने लगे कि गोविन्द तो हमारे हैं, मैं जन का ज़िन्दा पीर हूं तथा मैंने चौथी बार चौथे पद (मोक्ष) को प्राप्त कर लिया।'

ऊपर दिया पद नागरी प्रचारिणी सभा की 'कबीर ग्रंथावली' में तो है ही, साथ ही 'गुरु ग्रंथ साहब' में भी मिलता है। कबीर की मौत के बाद उनके अंतिम संस्कार के लिए कोई आगे नहीं आया। कहते हैं कि उन्हें जंगल में फेंक दिया गया। लेकिन इसके विपरीत कबीर साधक मानते हैं कि वे स्वेच्छा से अपनी मौत मरे थे और उनका शरीर पुष्पों में बदल गया था। जिस महात्मा ने जीवन-भर अंधविश्वासों का विरोध किया, उनके खुद के जीवन के साथ भी अंधविश्वासपूर्ण बातें किंवदन्तियां प्रचलित हो गई।

गुरु हरगोबिन्द

सिक्ख इतिहास में गुरु अर्जुन देव जी के सुपुत्र गुरु हरगोबिन्द साहिब की दल-भंजन योद्धा कहकर प्रशंसा की गई है। गुरु हरगोबिन्द साहिब की शिक्षा दीक्षा महान् विद्वान् भाई गुरदास की देख-रेख में हुई। गुरु जी को बराबर बाबा बुड्ढाजी का भी आशीर्वाद प्राप्त रहा। छठे गुरु ने सिक्ख ६ ार्म, संरु ति एवं इसकी आचार-संहिता में अनेक ऐसे परिवर्तनों को अपनी आंखों से देखा जिनके कारण सिक्खी का महान् बूटा अपनी जड़े मजबूत कर रहा था। विरासत के इस महान पौधे को गुरु हरगोबिन्दसाहिब ने अपनी दिव्य-दृष्टि से सुरक्षा प्रदान की तथा उसे फलने-फूलने का अवसर भी दिया। अपने पिता श्री गुरु अर्जुन देव की शहीदी के आदर्श को उन्होंने न केवल अपने जीवन का उद्देश्य माना, बल्कि उनके द्वारा जो महान कार्य प्रारम्भ किए गए थे, उन्हें सफलता पूर्वक सम्पूर्ण करने के लिए आजीवन अपनी प्रतिबद्धता भी दिखलाई।

बदलते हुए हालातों के मुताबिक गुरु हरगोबिन्द साहिब ने शस्त्र एवं शास्त्र की शिक्षा भी ग्रहण की। वह महान योद्धा भी थे। विभिन्न प्रकार के शस्त्र चलाने का उन्हें अद्‌भुत अभ्यास था। गुरु हरगोबिन्द साहिब का चिन्तन भी क्रान्तिकारी था। वह चाहते थे कि सिख कौम शान्ति, भक्ति एवं धर्म के साथ-साथ अत्याचार एवं जुल्म का मुकाबला करने के लिए भी सशक्त बने। वह अध्यात्म चिन्तन को दर्शन की नई भंगिमाओं से जोडना चाहते थे। गुरु- गद्दी संभालते ही उन्होंने मीरी एवं पीरी की दो तलवारें ग्रहण की। मीरी और पीरी की दोनों तलवारें उन्हें बाबा बुड्ढाजीने पहनाई। यहीं से सिख इतिहास एक नया मोड लेता है। गुरु हरगोबिन्दसाहिब मीरी-पीरी के संकल्प के साथ सिख-दर्शन की चेतना को नए अध्यात्म दर्शन के साथ जोड देते हैं। इस प्रक्रिया में राजनीति और धर्म एक दूसरे के पूरक बने। गुरु जी की प्रेरणा से श्री अकाल तख्त साहिब का भी भव्य

अस्तित्व निर्मित हुआ। देश के विभिन्न भागों की संगत ने गुरु जी को भेंट स्वरूप शस्त्र एवं घोडे देने प्रारम्भ किए। अकाल तख्त पर कवि और ढाडियोंने गुरु-यश व वीर योद्धाओं की गाथाएं गानी प्रारम्भ की। लोगों में मुगल सल्तनत के प्रति विद्रोह जागृत होने लगा। गुरु हरगोबिन्दसाहिब नानक राज स्थापित करने में सफलता की ओर बढ़ने लगे। उन्हें मुगलों का एक दूत अश्व पर सवार मिला। दोनों साथ-साथ चलने लगे। पहले तो दूत ने गुरु साहिब के समक्ष इस्लाम कबूलने का प्रस्ताव रखा, जब गुरु जी ने धर्म त्यागने से मना कर दिया तो वह आक्रांता वेदों और अन्य हिन्दू धर्म ग्रंथों की निंदा करने लगा। गुरु जी से यह सहन न हुआ और जिस मुख से आक्रांता ने वेदों की निंदा की थी, गुरु ने उस मुख में कटार भोंक कर उसकी हत्या कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि दल-बल भेजकर जहांगीर ने गुरु हरगोबिन्द साहिब को ग्वालियर के किले में बन्दी बना लिया।

इस किले में और भी कई राजा, जो मुगल सल्तनत के विरोधी थे, पहले से ही कारावास भोग रहे थे। गुरु हरगोबिन्दसाहिब लगभग तीन वर्ष ग्वालियर के किले में बन्दी रहे। महान सूफी फकीर मीयांमीर गुरु घर के श्रद्धालु थे। जहांगीर की पत्घ्नी नूरजहांमीयांमीर की सेविका थी। इन लोगों ने भी जहांगीर को गुरु जी की महानता और प्रतिभा से परिचित

करवाया। बाबा बुड्डाव भाई गुरदास ने भी गुरु साहिब को बन्दी बनाने का विरोध किया। जहांगीर ने केवल गुरु जी को ही ग्वालियर के किले से आजाद नहीं किया, बल्कि उन्हें यह स्वतन्त्रता भी दी कि वे 52 राजाओं को भी अपने साथ लेकर जा सकते हैं। इसीलिए सिख इतिहास में गुरु जी को बन्दी छोड़ दाता कहा जाता है। ग्वालियर में इस घटना का साक्षी गुरुद्वारा बन्दी छोड़ है।

अपने जीवन मूल्यों पर दृढ रहते गुरु जी ने शाहजहां के साथ चार बार टक्कर ली। वे युद्ध के दौरान सदैव शान्त, अभय एवं अडोल रहते थे। उनके पास इतनी बडी सैन्य शक्ति थी कि मुगल सिपाही प्रायः भयभीत रहते थे। गुरु जी ने मुगल सेना को कई बार कड़ी पराजय दी। जब वे रणभूमि में होते थे तो शत्रु के लिए यमराज सिद्ध होते थे और देश के लिए देवदूत।

गुरु हरगोबिन्दसाहिब नेतृत्व में लड़े गए पहले युद्ध के पहले शहीद भाई भाना सिंह जी थे, जो आत्मज्ञानी भी थे और बहादुर भी। वे इलाहाबाद के रहने वाले थे। धर्मयुद्ध का होना सुनकर शीश चढ़ाने आए थे। उन्होंने गुरु महाराज के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था।

मुगल जनरल शमस खान ने भाई भाना सिंह पर वार किया। भाई ने शमसखान का सिर कद्दू की तरह उतार फेंका, परंतु भाई जी भी स्वयं ऐसे घेरे में आ गए कि गोलियों के साथ भून दिए गए।

गुरु हरगोबिन्दसाहिब ने अपने व्यक्तित्व और कृत्तित्व से एक ऐसी अदम्य लहर पैदा की, जिसने आगे चलकर सिख संगत में भक्ति और शक्ति की नई चेतना पैदा की। गुरु जी ने अपनी सूझ-बूझ से गुरु घर के श्रद्धालुओं को सुगठित भी किया और सिख-समाज को नई दिशा भी प्रदान की। अकाल तख्त साहिब सिख समाज के लिए ऐसी सर्वोच्च संस्था के रूप में उभरा, जिसने भविष्य में सिख शक्ति को केन्द्रित किया तथा उसे अलग सामाजिक और ऐतिहासिक पहचान प्रदान की। इसका श्रेय गुरु हरगोबिन्दसाहिब को ही जाता है।

गुरु हरगोबिन्दसाहिब जी बहुत परोपकारी योद्धा थे। उनका जीवन दर्शन जन-साधारण के कल्याण से जुडा हुआ था। यही कारण है कि उनके समय में गुरमतिदर्शन राष्ट्र के कोने-कोने तक पहुंचा। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के महान संदेश ने गुरु-परम्परा के उन कार्यो को भी प्रकाशमान बनाया जिसके कारण भविष्य में मानवता का महा कल्याण होने जा रहा

था। गुरु जी के इन अथक प्रयत्नों के कारण सिख परम्परा नया रूप भी ले रही थी तथा अपनी विरासत की गरिमा को पुनरूनए संदर्भो में परिभाषित भी कर रही थी। गुरु हरगोबिन्दसाहिब की चिन्तन की दिशा को नए व्यावहारिक अर्थ दे रहे थे। वास्तव में यह उनकी आभा और शक्ति का प्रभाव था। गुरु जी के व्यक्तित्व और त्तित्वका गहरा प्रभाव पूरे परिवेश पर भी पडने लगा था। गुरु हरगोबिन्दसाहिब जी ने अपनी सारी शक्ति हरमन्दिरसाहिब व अकाल तख्त साहिब के आदर्श स्थापित करने में लगाई। गुरु हरगोबिन्दसाहिब प्रायरू पंजाब से बाहर भी सिख धर्म के प्रचार हेतु अपने शिष्यों को भेजा करते थे।

गुरु हरगोबिन्द साहिब ने सिक्ख जीवन दर्शन को सम-सामयिक समस्याओं से केवल जोडा ही नहीं, बल्कि एक ऐसी जीवन ष्टि का निर्माण भी किया जो गौरव पूर्ण समाधानों की संभावना को भी उजागर करता था। सिख लहर को प्रभावशाली बनाने में गुरु जी का अद्वितीय योगदान रहा।

गुरु हरगोबिंद साहिब जी जब कश्मीर की यात्रा पर थे, तब उनकी मुलाकात माता भाग्भरी से हुई थी जिन्होंने पहली मुलाकात पर उनसे पूछा कि क्या आप गुरु नानक देव जी हैं क्योंकि उन्होंने गुरु नानक देव जी को नहीं देखा था। उन्होंने गुरु नानक देव जी के लिए एक बड़ा सा चोला (एक पहनने का वस्त्र) बनाया था, जिसमे 52 कलियाँ थी ये चोला उन्होंने उनके बारे में सुनकर कि उनका शरीर थोडा भारी है ये वस्त्र थोडा बड़ा बनाया था। माता की भावनाओं को देखते हुए गुरु साहिब ने ये चोला उनसे लेकर पहन लिया। गुरु साहिब जब ग्वालियर के किले से मुक्त किये गए तो उन्होंने यही चोला पहन रखा था जिसकी 52 कलियों को पकड़ कर किले की जेल में बंद सारे 52 राजा एक एक कर बाहर आ गए, तभी से गुरु हरगोबिन्द साहिब जी दाता बन्दी छोड़ कहलाए थे।

बलिदानी मतिदास, सतीदास और दयाला

आज यदि संसार में सनातन संस्कृति पुनः पुष्पित और पल्लवित हो रही है, तो इसकी रक्षा के लिए वे असंख्य हुतात्माओं के बलिदान हैं, हम जिनके नाम तक नहीं जानते। इन्हीं असंख्य बलिदानियों में हैं भाई मतिदास और सतिदास जी, जिन पर इस्लाम ग्रहण करने का दबाब था। नहीं मानने पर पहले मतिदास जी को आरे से चीरा गया था और अगले दिन 10 नवम्बर को सतिदास जी रुई में बाँधकर जलाये गये। राष्ट्र, संस्कृति और धर्म रक्षा के लिए इस वंश के यह बलिदान पहले नहीं थे और न अंतिम, इस कुल की पीढ़ियों ने बलिदान देने का मानों कीर्तिमान बनाया है।

भाई मतिदास और भाई सतिदास सगे भ्राता थे। मतिदास जी बड़े और उनसे लगभग डेढ़ वर्ष छोटे सतिदास जी थे। इस परिवार की पीढ़ियों का इतिहास राष्ट्र संस्कृति और धर्म रक्षा के लिये बलिदानों से भरा है। भाई मतिदास और सतिदास के पिता भाई हीरानंद जी पितामह भाई लख्खीदास जी और प्रपितामह भाू प्रयागा जी भी सिक्ख परंपरा से जुड़ गए थे और राष्ट्र तथा धर्म की रक्षा के लिए अपना जीवन अर्पित करते हुए बलिदान हुऐ। बाद की पीढ़ी में भाई बालमुकुन्द को अंग्रेजी काल में फाँसी हुई और भाई परमानन्द को कालापानी जेल भेजा गया। इन्हीं के वंशज थे स्वतंत्रता संग्राम सेनानी डाक्टर भाई महावीर जो मध्यप्रदेश के राज्यपाल भी रहे।

यह परिवार मूलतः यह कश्मीरी पंडित कुल है, जो महर्षि भृगुकुल से संबंधित था। महर्षि भृगु के कुल में ही उत्पन्न हुए थे महर्षि दधीचि, शुक्राचार्य और भगवान परशुराम जी जैसी विभूतियाँ, जिनके आख्यानों से पुराण भरे हैं। भाई मतिदास और इनके सभी वंशज भगवान परशुराम जी

को अपना आदर्श मानते थे इसलिए शस्त्र और शास्त्र दोनों का अनुपालन इस कुल की स्थाू परंपरा रही है। समाज को शास्त्रीय रहस्य का ज्ञान देना, सामाजिक जागरण के लिए सतत देशाटन करना और आवश्यकता पड़ने पर शस्त्ए लेकर प्रत्यक्ष युद्ध करना इनकी जीवन शैली थी। काबुल से लेकर दिल्ली तक इस परिवार द्वारा स्थापित किए ज्ञान केन्द्रों के चिन्ह और युद्ध के विवरण इतिहास की पुस्तकों में मिल जाते हैं। राष्ट्र रक्षा के लिये जब सिक्ख पंथ की नीव पड़ी तो धर्म रक्षा के लिए अपने पूर्वजों की परंपरा के अनुरूप यह परिवार सिख पंथ से जुड़ गया। इस वंश के लगभग सभी सदस्य सिख गुरुओं की निजी टोली में रहे, कभी जत्थेदार तो कभी मंत्री या कभी निजी सेवक। भाई मतिदास और भाई सतिदास गुरु तेग बहादुर के शिष्य बने।

भाई मतिदास जी का जन्म 13 जनवरी 1641 को पंजाब के झेलम जिले के अंतर्गत ग्राम करियाला में हुआ था। यह क्षेत्र अब पाकिस्तान में है, दोनों भाइयों ने शस्त्र और शास्त्र दोनों की शिक्षा अपने घर में ली। उनके पिता भाई हीरानंदजी को भी शस्त्र संचालन की महारथ हासिल थी, वे गुरु हरराय के सहायक रहे। भाई मतिदास और भाई सतिदास बालवय से ही गुरु परंपरा से जुड़ गए थे। समय के साथ औरंगजेब का शासन आया, सत्ता हथियाने की आंतरिक कलह पर नियंत्रण करके औरंगजेब ने छल बल और लालच से भारत के मतान्तरण का अभियान चलाया।

समय के साथ 1665 में गुरु तेग बहादुर जी ने गुरु गद्दी संभाली और दोनों भाई गुरु सेवा में आए। भाई मतिदास के पास समूचा सुरक्षा और धन प्रबंध था तो भाई सतिदास के साथ गुरुगाधि की भोजन व्यवस्था। औरंगजेब का दमन चक्र कश्मीर और पंजाब से आरंभ हुआ, कश्मीरी पंडितों और अन्य समाज जनों का एक दल भाई मतिदास के पास आया और उनके माध्यम से गुरु तेग बहादुर जी से मिला। गुरु तेग बहादुर जी ने रक्षा का वचन दिया और सिखों का सैन्य दल बनाकर रक्षा के लिए भेजा। सिख रक्षकों ने पंजाब और कश्मीर ही नहीं अन्य स्थानों पर भी सनातन समाज और सनातन धर्म स्थलों की रक्षा का दायित्व संभाला। अनेक स्थानों पर टकराव, इसी अभियान के अंतर्गत गुरु तेग बहादुर जी

ने कीरतपुर से पांच मील उत्तर में माखोवाल गांव के पास चक नानकी की स्थापना की, जो अब गुरुद्वारा आनंदपुर साहिब नाम से जाना जाता है। यह सतलज नदी के किनारे शिवालिक पर्वत माला की तलहटी में पंजाब और हिमाचल प्रदेश की सीमा पर स्थित है। इसके निर्माण में भाई मतिदास और भाई सतिदास की भूमिका महत्वपूर्ण थी।

औरंगजेब ने 1669 में दो आदेश निकाले, एक उसके राज्य की सीमा में बने सभी हिन्दु मंदिरों को गिराने का और दूसरा सिख गुरु तेगबहादुर जी एवं उनके सभी सहयोगियों को जिन्दा या मुर्दा पकड़ने का। औरंगजेब ने अपने राज्य की सीमा में हिन्दुओं की धार्मिक प्रथाओं के सार्वजनिक पालन तथा सार्वजनिक रूप से त्यौहार मनाने पर भी रोक लगा दी थी। औरंगजेब के इस आदेश का पालन करने के लिये मुगल सेना की टुकड़ियाँ निकल पड़ी। और गुरु तेग बहादुर जी को पकड़ने के लिए भी घेराबंदी शुरु हुई। इसकी बिना परवाह किए गुरु तेग बहादुर जी अपने अभियान में लगे रहे उनके साथ भाई मतिदास, भाई सतिदास, भाई दयाला और अन्य सेवादार साये की भाँति अपने गुरु के साथ रहे और पूरे भारत के धर्म स्थलों की सुरक्षा के लिए जन जागरण अभियान चलाते रहे। अपने इस अभियान के अंतर्गत उनकी यात्र केवल कश्मीर या पंजाब ही नहीं अयोध्या, काशी, मथुरा उज्जैन आदि स्थानों पर भी गए।

सनातन धर्म रक्षा अभियान के अंतर्गत जब गुरु तेग बहादुर जी रोपड़ के पास मलिकपुर रंगहारन में थे, तब मुगल सैन्य टुकड़ी ने अचानक धावा बोलकर गिरफ्तार कर लिया गया, यह गिरफ्तारी धोखे से की गई थी। वस्तुतः इन्हें बातचीत के लिए आदर सहित दिल्ली आने का निमंत्रण दिया गया। गुरु तेगबहादुर जी ने आमंत्रण पर भरोसा कर सहमति दे दी और दिल्ली की ओर चल दिये उनकी सेवा सुरक्षा के बहाने मुगल टुकड़ी साथ चल रही थी और अवसर देखकर बंदी बना लिये गए। यह औरंगजेब की रणनीति थी, वह गुरु तेगबहादुर और उनकी निजी टोली को जीवित पकड़ना चाहता था, ताकि भय लालच अथवा यातनाओं से उनका धर्मान्तरण कराकर पूरे सनातन समाज का मनोबल तोड़ सके।

गुरु तेग बहादुर के साथ भाई मतिदास, भाई सतिदास, भाई

दयाला, भाई उदय, और भाई जैता सहित अन्य सिक्ख सेवादार भी थे। सभी को बंदी बनाकर पहले सरहिन्द लाया गया, सरहिन्द में धर्मान्तरण के लिए दबाव डाला गया, लालच दिया, भय दिखाया पर बात न बनी तब सबकों लोहे के पिंजरों में कैद करके दिल्ली भेजा गया। दिल्ली में यातनाएँ देने का क्रम चला, कठोरतम यातनाओं के बाद भी न कोई झुका और न किसी ने मतान्तरण स्वीकार किया।

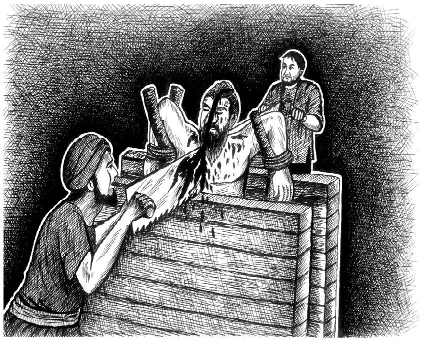

तब 9 नवम्बर 1675 को सबसे पहले भाई मतीदास को लकड़ी के पटियों में बाँधा गया, फिर जल्लादों ने सिर पर आरा रखा और धीरे धीरे चीरना आरंभ किया। उनके शरीर को कमर तक चीरकर दो भागों में बांट दिया गया और भयभीत करने के लिये यह दृश्य सभी बंदियों को दिखाया गया, परन्तु फिर भी कोई न डिगा।

अगले दिन 10 नवम्बर 1675 को भाई सतीदास को पहले रुई में लपेटकर गट्ठर नुमा बनाया गया और आग लगाई गई, पुनः यह दृश्य भी सबको दिखाया गया ताकि अन्य को भयभीत किया जा सके। लेकिन कोई भी आर्य अपने धर्म से नहीं डिगा। इन वीरों का बलिदान देखकर हिन्दुओं में और जोश उत्पन्न होता था और वे धर्म की बलिवेदी पर मर मिटने के लिए आगे बढ़ने लगते थे। सच कहा है किसी ने कि देश और धर्म बलिदान चाहता

है। अंततोगत्वा तीसरे दिन भाई दयाला को कढ़ाई में डालकर धीमी आँच से गरम करके क्रूरतम मौत दी गई। इन क्रूरतम प्रताड़नाओं के दर्द की कल्पना भी नहीं की जा सकती, जो इन हुतात्माओं ने राष्ट्र, संस्कृति और धर्म की रक्षा के लिए सहर्ष सही। सभी बलिदान हुए परन्तु किसी ने अपना धर्म न त्यागा। अंत में 24 नवम्बर को गुरु तेग बहादुर का बलिदान हुआ, जहाँ इन हुतात्माओं का बलिदान हुआ वह दिल्ली का चाँदनी चौक क्षेत्र है तत्पश्चात वहाँ गुरुद्वारा शीशगंज साहिब का निर्माण हुआ।

भाई मतिदास और भाई सतिदास के बलिदान का उल्लेख अमृतसर स्वर्ण मंदिर सहित भारत के विभिन्न गुरुद्वारों में है और चाँदनी चौक दिल्ली में भी गुरुद्वारा सीसगंज साहिब के सामने भाई मतिदास, भाई सतिदास स्मृति संग्रहालय का निर्माण किया गया है।

गुरु तेगबहादुर

गुरु तेग बहादुर का जन्म पंजाब के अमृतसर नगर में हुआ था। ये गुरु हरगोविन्द जी के पाँचवें पुत्र थे। आठवें गुरु इनके पोते हरि किशन राय जी की अकाल मृत्यु हो जाने के कारण जनमत द्वारा ये नवम् गुरु बनाए गए।

इन्होंने आनन्दपुर साहिब का निर्माण कराया और ये वहीं रहने लगे थे। उनका बचपन का नाम त्यागमल था। मात्र 14 वर्ष की आयु में अपने पिता के साथ मुगलों के हमले के खिलाफ हुए युद्ध में उन्होंने वीरता का परिचय दिया। उनकी वीरता से प्रभावित होकर उनके पिता ने उनका नाम त्यागमल से तेग बहादुर (तलवार के धनी) रख दिया।

युद्धस्थल में भीषण रक्तपात से गुरु तेग बहादुर जी के वैरागी मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनका मन आध्यात्मिक चिंतन की ओर हुआ। धैर्य, वैराग्य और त्याग की मूर्ति गुरु तेग बहादुर जी ने एकांत में लगातार 20 वर्ष तक बाबा बकाला नामक स्थान पर साधना की। आठवें गुरु हरकिशन जी ने अपने उत्तराधिकारी का नाम के लिए बाबा बकाले का निर्देश दिया। गुरु जी ने धर्म के प्रसार के लिए कई स्थानों का भ्रमण किया। आनंदपुर साहब से कीरतपुर, रोपण, सैफाबाद होते हुए वे खिआला (खदल) पहुँचे। यहाँ उपदेश देते हुए दमदमा साहब से होते हुए कुरुक्षेत्र पहुँचे। कुरुक्षेत्र से यमुना के किनारे होते हुए कड़ामानकपुर पहुँचे और यहीं पर उन्होंने साधु भाई मलूकदास का उद्धार किया।

इसके बाद गुरु तेग बहादुर जी प्रयाग, बनारस, पटना, असम आदि क्षेत्रों में गए, जहाँ उन्होंने आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक, उन्नयन के लिए रचनात्मक कार्य किए। आध्यात्मिकता, धर्म का ज्ञान बाँटा। रूढ़ियों, अंधविश्वासों की आलोचना कर नए आदर्श स्थापित किए। उन्होंने

परोपकार के लिए कुएँ खुदवाना, धर्मशालाएँ बनवाना आदि कार्य भी किए। इन्हीं यात्राओं में 1666 में गुरुजी के यहाँ पटना साहब में पुत्र का जन्म हुआ। जो दसवें गुरु गुरु गोविंद सिंह बने। विश्व इतिहास में धर्म एवं मानवीय मूल्यों, आदर्शों एवं सिद्धांत की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति देने वालों में गुरु तेग बहादुर साहब का स्थान अद्वितीय है।

धरम हेत साका जिनि कीआ
सीस दीआ पर सिरड न दीआ।

इस महावाक्य अनुसार गुरुजी का बलिदान न केवल धर्म पालन के लिए अपितु समस्त मानवीय सांस्कृतिक विरासत की खातिर बलिदान था। धर्म उनके लिए सांस्कृतिक मूल्यों और जीवन विधान का नाम था। इसलिए धर्म के सत्य शाश्वत मूल्यों के लिए उनका बलि चढ़ जाना वस्तुतः सांस्कृतिक विरासत और इच्छित जीवन विधान के पक्ष में एक परम साहसिक अभियान था। आततायी शासक की धर्म विरोधी और वैचारिक स्वतंत्रता का दमन करने वाली नीतियों के विरुद्ध गुरु तेग बहादुरजी का बलिदान एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक घटना थी। यह गुरुजी के निर्भय आचरण, धार्मिक अडिगता और नैतिक उदारता का उच्चतम उदाहरण था। गुरुजी मानवीय धर्म एवं वैचारिक स्वतंत्रता के लिए अपनी महान शहादत देने वाले एक क्रांतिकारी युग पुरुष थे।

उन्होंने सदा प्रेम, एकता, भाईचारे का संदेश दिया। किसी ने गुरुजी का अहित करने की कोशिश भी की तो उन्होंने अपनी सहनशीलता, मधुरता, सौम्यता से उसे परास्त कर दिया। गुरुजी की मान्यता थी कि मनुष्य को किसी को डराना भी नहीं चाहिए और न किसी से डरना चाहिए। वे अपनी वाणी में उपदेश देते हैं भै काहू को देत नहि। नहि भय मानत आन। वे बाल्यकाल से ही सरल, सहज, भक्ति-भाव वाले कर्मयोगी थे। उनकी वाणी में मधुरता, सादगी, सौजन्यता एवं वैराग्य की भावना कूट-कूटकर भरी थी। उनके जीवन का प्रथम दर्शन ही था कि धर्म का मार्ग सत्य का मार्ग है और सत्य की सदैव विजय होती है।

औरंगजेब ने एक बार अपने मंत्रियों से पूछा, ''हम जानना चाहते हैं कि चारों तरफ विद्रोह की चिंगारी क्यों भड़क रही है।''

''धर्म इसका सबसे बड़ा कारण है।'' एक मंत्री ने साहस करके कह ही दिया।

''मतलब!'' औरंगजेब ने कहा, ''हम आपकी बात को समझ नहीं पाए हैं।''

''यहां विभिन्न धर्म और संप्रदाय के लोग रहते हैं, जब तक एक भाषा और एक धर्म नहीं होगा, तब तक देश में एकता कायम नहीं हो सकती।''

''ठीक है तो एक ही धर्म इस्लाम को मानने का फरमान जारी कर देते हैं।''

''यह तो पहले भी किया जा चुका है, इससे कोई लाभ नहीं होगा।''

''तो फिर!''

''लोगों को उस एक धर्म पर विश्वास होना चाहिए। हिंदुस्तान में एक ही धर्म और एक ही शासक होना चाहिए।''

''ठीक है हम सब धर्मों के ग्रंथों को उन्हीं के धर्माचार्यों से पढ़वाकर सुनवाएँगे, जो धर्म हमें सबसे अच्छा लगेगा, उसी को हम राजधर्म स्वीकार कर लेंगे।'' और फिर औरंगजेब के दरबार में बारी-बारी से हर धर्म के धर्माचार्य आकर अपने-अपने धर्मग्रंथों का बखान करने लगे। इसी कड़ी में एक हिन्दू पंडित प्रतिदिन गीता का थोड़ा-थोड़ा भाष्य आकर उन्हें सुनाने लगा। वह विद्वान पंडित आकर गीता के कुछ श्लोक पढ़ता और उसका अर्थ औरंगजेब को सुनाता, पर वह पंडित गीता में से कुछ श्लोक छोड़ दिया करता था।

एक दिन पंडित बीमार हो गया और औरंगजेब को गीता सुनाने के लिए उसने अपने बेटे को भेज दिया, किंतु उसे उन श्लोकों के बारे में बताना भूल गया, जिनका अर्थ वहाँ नहीं करना था। उसके बेटे ने जाकर औरंगजेब को पूरी गीता का अर्थ सुना दिया, जिससे औरंगजेब को यह स्पष्ट हो गया कि हर धर्म अपने आपमें एक महान धर्म है। पर औरंगजेब खुद के धर्म के अलावा किसी और धर्म की प्रशंसा नहीं सुन सकता था।

''कर्म करो और फल की चिंता मत करो।'' औरंगजेब ने हँसते हुए कहा, ''अच्छा धर्म ग्रंथ है, फिर तो हमें किसी जंग को जीतकर भी उसके

राज्य को नहीं हड़पना चाहिए।''

''शहंशाह।'' पंडित के पुत्र ने कहा, ''फल देना तो ईश्वर के हाथ में है। ईश्वर की अच्छे और बुरे कर्मों के आधार पर फल प्रदान करता है।''

''ईश्वर के हाथ में नहीं मूर्ख आलमगीर के हाथ में है।'' एक मंत्री ने औरंगजेब की ओर देखते हुए कहा, ''शहंशाह आप सबको इस्लाम धारण करवा दें। इन धर्मकर्म के परीक्षण के चक्कर में आपको नहीं पड़ना चाहिए। इस्लाम से महान मजहब कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि इस्लाम की बुनियाद कुरान शरीफ पर टिकी है और कुरान शरीफ खुदा की किताब है। हम खुदा की किताब के खिलाफ कुछ नहीं सुन सकते।''

''ठीक कहते हो।'' औरंगजेब को उसकी बात समझ में आ गई और उसने सबको इस्लाम धर्म अपनाने का आदेश दिया एवं कुछ लोगों को यह कार्य सौंप दिया। उसने कहा कि सबसे कह दिया जाए कि इस्लाम धर्म कबूल करो या मौत को गले लगाओ। जब इस तरह की जबर्दस्ती शुरू हो गई तो अन्य धर्म के लोगों का जीना मुश्किल हो गया। इस जुल्म के शिकार कश्मीर के पंडित गुरु तेगबहादुर के पास आए और उन्हें बताया कि ''किस तरह इस्लाम धर्म स्वीकारने के लिए दबाव बनाया जा रहा है और न करने वालों को तरह-तरह की यातनाएँ दी जा रही हैं। हमारी बहू-बेटियों की इज्जत को खतरा है। जहाँ से हम पानी भरते हैं, वहाँ हड्डियाँ फेंकी जाती हैं।''

''इतना अन्याय!''

''हमें बुरी तरह मारा जा रहा है। कृपया आप हमारे धर्म को बचाइए।''

जिस समय ये लोग समस्या सुना रहे थे, उसी समय गुरु तेगबहादुर के 9 वर्षीय सुपुत्र बाला प्रीतम (गुरु गोविंदसिंह) वहाँ आए और पिताजी से पूछा, ''पिताजी ये लोग इतने उदास क्यों हैं? आप इतनी गंभीरता से क्या सोच रहे हैं?''

''बेटा ये पीड़ित लोग हैं, इन पर दिल्ली के शहंशाह द्वारा अत्याचार ढाए जा रहे हैं। साधु-संतों को भी खौलते तेल में पकौड़ी की तरह पकाकर

राक्षसों की हंसी हंस रहा है आलमगीर।''

गुरु तेग बहादुर ने कश्मीरी पंडितों की सारी समस्या बताई तो बाला प्रीतम ने कहा, ''इसका निदान कैसे होगा?''

गुरु साहिब ने कहा, ''इसके लिए बलिदान देना होगा।''

''बलिदान, पिताश्री!'' बालक प्रीतम ने कहा, ''आपसे महान पुरुष मेरी नजर में कोई नहीं है, भले ही बलिदान देना पड़े पर आप इन के धर्म को बचाइए।''

''कुमार,'' उसकी यह बात सुनकर वहाँ उपस्थित लोगों ने पूछा, ''अगर आपके पिता जी बलिदान दे देंगे तो आप यतीम हो जाएँगे और आपकी माँ विधवा हो जाएगी।''

''अगर मेरे अकेले के यतीम होने से लाखों लोग यतीम होने से बच सकते हैं और अकेले मेरी माँ के विधवा होने से लाखों माँ विधवा होने से बच सकती है तो मुझे यह स्वीकार है।''

''शाबाश बेटा, मुझे तुम पर गर्व है,'' फिर गुरु तेगबहादुर ने उन पंडितों से कहा, ''जाकर औरंगजेब से कह दो, अगर गुरु तेगबहादुर ने इस्लाम धारण कर लिया तो हम भी कर लेंगे और अगर तुम उनसे इस्लाम धारण नहीं करा पाए, तो हम भी इस्लाम धारण नहीं करेंगे और तुम हम पर जबर्दस्ती नहीं कर पाओगे।''

लोगों ने यह बात आकर औरंगजेब के कानों तक पहुँचा दी। औरंगजेब ने इस बात को स्वीकार कर लिया। गुरु तेगबहादुर औरंगजेब के दरबार में स्वयं चलकर गए। वहाँ औरंगजेब ने उन्हें तरह-तरह के लालच दिए। किंतु बात नहीं बनी तो उन पर बहुत सारे जुल्म किए। उन्हें कैद कर लिया गया, उनके एक शिष्य को खौलते तेल के कढ़ाह में भून दिया गया और दूसरे शिष्य को आरा से काट दिया गया, इस प्रकार दो शिष्यों को मारकर उन्हें डराने की कोशिश की, पर गुरु तेगबहादुर टस से मस नहीं हुए। उन्होंने औरंगजेब को समझाया, ''अगर तुम जबर्दस्ती करके लोगों को इस्लाम धारण करने के लिए मजबूर कर रहे हो तो यह जान लो कि तुम खुद भी सच्चे मुसलमान नहीं हो, क्योंकि तुम्हारा धर्म भी यह शिक्षा नहीं देता कि किसी पर जुल्म किया जाए।''

औरंगजेब ने गुरु से कहा, ''तेग बहादुर, अब तुम मेरे रहमो-करम पर हो। अगर तुम सच्चे संत हो तो हमें कोई चमत्कार करके दिखाओ, वरना अपना ईमान छोड़ दो।''

गुरु तेग बहादुर ने कहा, ''मेरी गर्दन में एक ताबीज बँधा है, जिसके कारण तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।''

यह सुनते ही औरंगजेब के इशारे पर गुरु तेग बहादुर का सर कलम कर दिया गया। यह घटना दिल्ली के चांदनी चौक में 11 नवम्बर 1675 में हुई। उनकी गर्दन में बँधा ताबीज खोलकर देखा गया तो उसमें लिखा था, ''मैंने अपना सिर दे दिया, धर्म नहीं।''

गुरु साहिब ने हँसते-हँसते अपना शीश कटाकर बलिदान दे दिया। उनके अद्वितीय बलिदान ने देश की सर्व धर्म समभाव की संस्कृति को सुदृढ़ बनाया। गुरु तेगबहादुर की याद में उनके शहीदी स्थल पर एक गुरुद्वारा साहिब बना है, जिसका नाम गुरुद्वारा शीश गंज साहिब है। हिन्दुस्तान और हिन्दू धर्म की रक्षा करते हुए शहीद हुए गुरु तेग बहादुर को प्रेम से कहा जाता है : 'हिन्द की चादर, गुरु तेग बहादुर।'

भाई उदय सिंह

भाई उदय सिंह ने भी सनातन धर्म के लिए बलिदान देकर देश एवं धर्म के लिए मर मिटने की परंपरा को आगे बढ़ाया था।

उन्होंने दशम पिता धन श्री गुरु गोबिंद सिंह जी की सेना में रहते हुए सरसा नदी पर लगभग 5 घंटों तक शाही मुगल सेना से लोहा लिया और फिर अंत में शहादत के पावन रुतबे को हासिल किया।

भाई उदय सिंह का जन्म 27 अक्तूबर 1665 को अलीपुर गांव के मुज्जफरनगर में हुआ था। ये भाई मनी सिंह जी के तीसरे बेटे थे। इन्होंने अपने जीवन का अधिकतर समय श्री आनंदपुर साहिब में ही बिताया था। इनका विवाह भी वहीं हुआ था। इनके 7 पुत्र थे, जिनमें से 5 पुत्रों ने धर्म की रक्षा के लिए हुए युद्ध में अपने प्राणों की आहुति दी थी।

साल 1699 की बैसाखी के पवित्र पर्व पर खालसा सृजना के समय भाई उदय सिंह जी ने 5 प्यारों के बाद पहले जत्थे में अमृतपान किया था, जिसके बाद इन्होंने अपना सारा जीवन खालसा पंथ की सेवा में समर्पित कर दिया। इन्होंने मुगल सल्तनत से हाथ मिलाकर श्री आनंदपुर साहिब पर हमला करने वाले पहाड़ी राजा केसरी चन्द का शीश श्री गुरु गोबिंद सिंह जी के चरणों में रखा था।

भाई उदय सिंह कृपाण चलाने में इतने माहिर थे कि अपनी कृपाण के सहारे ही इन्होंने खूंखार शेर तक का शिकार किया था। तीर अंदाजी में भी इनके फन का कोई सानी नहीं था। इन्होंने धर्म की रक्षा के लिए कई बार जुल्मियों का सर काटा था।

21 दिसंबर 1704 की रात जब कट्टर इस्लामी फौजों के षड्यंत्रों के चलते गुरु जी ने आनंदपुर किला छोड़ा तो उनके साथ भाई उदय सिंह जी भी थे। जैसे ही उनका काफिला सरसा नदी के तट पर पहुंचा, मुगलों की शाही सेना ने उन पर फिर हमला कर दिया। गुरु जी ने उन्हें 50 खालसा

योद्धाओं के साथ शाही पहाड़ी के मोर्चे पर तैनात किया था। भाई उदय सिंह जी ने पहले तो मुगलों को अपने तेज धार बाणों का स्वाद चखाया और फिर उन्हें अपनी कृपाण का हुनर दिखाया।

भाई जी ने लगभग 5 घंटे तक कट्टर इस्लामी सेना से युद्ध किया और हजारों की तादात में उनके सैनिकों को मृत्यु के हवाले किया। अंत में जुल्म के खिलाफ लड़ते लड़ते भाई उदय सिंह जी शहादत पा गए। उन्होंने जिस जोश और बहादुरी के साथ धर्म की रक्षा में अपनी हाजरी दी और जुल्मियों का सर काटा, वह अकथनीय है। भाई जी की शहादत हमें सिखाती है कि जुल्म के आगे झुकने की बजाए जुल्म का बहादुरी से सामना करना चाहिए।

भाई तारू सिंह

भाई तारू सिंह का जन्म अक्टूबर 1720 में पूहला गाँव में भाई जोध सिंह और बीबी धरम कौर के घर हुआ था। भाई तारू सिंह जब छोटे थे, तभी उनके पिता शहीद हो गए, इसलिए बीबी धरम कौर ने उनका और उनकी छोटी बहन बीबी तार कौर का पालन-पोषण किया।

सिख शहीद परम्परा का आरंभ श्री गुरु तेग बहादुर साहिब जी के साथ शहीद हुए तीन सिखों भाई मतीदास जी, भाई सतीदास जी और भाई दयाला जी की शहादत से होता है। इस परम्परा को चार साहिबजादों ने और गहरा रंग दिया। इसी श्रृंखला में 18वीं सदी के इतिहास के शहीदों में से महान सिख शहीद भाई तारू सिंह जी ने भी योगदान डाला।

ये जिला श्री अमृतसर के गांव पूहला के निवासी थे। खेतों में हल चलाकर, मेहनत कर अन्न पैदा करना इनके जीवन-निर्वाह का साधन था। ये पंथ के सच्चे सेवक और पंथ के हितचिंतक थे। क्षेत्र के हिन्दू-मुसलमान भी इनके उच्च एवं शुद्ध चरित्र का सम्मान करते थे।

वह जकरिया खान के अत्याचारों की चरम सीमा का दौर था। जंगलों में बसते सिखों को पकड़ कर खत्म करना उसके लिए मुश्किल हो गया। वह अपनी असफलता छिपाने के लिए निर्दोष सिखों पर अत्याचार करने लगा।

भाई तारू सिंह जी का स्वभाव बांटकर खाने और जरूरतमंदों की सहायता करने वाला था। सिखी आचरण के अनुसार अतिथियों को भोजन-पानी देना यह अपना धर्म समझते थे। बेघर हुए सिखों को जंगलों में लंगर पहुंचाने में इनके माता जी एवं बहन जी भी इनकी मदद किया करते थे। यह वह समय था जब मुगल सरकार की गलत नीतियों का विरोध कर रहे सिखों की मदद करना अपनी जान जोखिम में डालने के समान था। भाई तारू सिंह जी अपनी जान हथेली पर रखकर बेघर हुए सिंहों को गुप्त मार्ग द्वारा अन्न-पानी पहुंचाने की सेवा करते रहे। इसी क्षेत्र

में इनके एक विरोधी ने भाई तारू सिंह जी के विरुद्ध जकरिया खान के कान भरने शुरू कर दिए कि भाई तारू सिंह जी सिंहों को पनाह और भोजन देते हैं। बिना किसी पड़ताल के भाई तारू सिंह जी को गिरफ्तार करने के हुक्म जारी हो गए।

भाई तारू सिंह जी को छुड़वाने के लिए यत्न किए गए, लेकिन भाई तारू सिंह जी ने कहा, ''चिंता मत करो क्योंकि मेरा अटल विश्वास है कि कुर्बानी देकर ही शाही तख्त को हिलाया जा सकता है।''

भाई तारू सिंह जी को केश कटवा कर इस्लाम कबूल करने के लिए कहा गया, तो इन्होंने उत्तर में कहा, ''मैं सीस कटवा सकता हूं, मगर परमात्मा की दी प्यारी व पवित्र दात 'केश' नहीं कटवा सकता।''

भाई तारू सिंह जी को दुनिया भर की खुशियां देने का वायदा किया गया, मगर ये किसी भी कीमत पर अपने केशों को शरीर से अलग करने के लिए नहीं माने।

शाही फरमान पाकर जल्लाद खुरपी द्वारा भाई तारू सिंह जी को जी की खोपड़ी उतार रहा था और भाई जी जपुजी साहिब का पाठ कर रहे थे। सारा शरीर लहू-लुहान हो गया मगर आपके मुंह से उफ तक न निकली।

खोपड़ी उतारने के बाद भा जी को खाई में फैंक दिया गया। भाई जी इस हालत में भी बाणी पढ़ते रहे। इतिहासकार लिखते हैं कि जिस दिन भाई जी की खोपड़ी उतारी गई उसी दिन जकरिया खान की हालत बहुत खराब हो गई और वह तड़पने लगा। भाई सुबेग सिंह की मदद से जकरिया खान क्षमा मांगने के लिए भाई तारू सिंह जी के पास पहुंचा। भाई तारू सिंह जी ने कहा कि यह सब परमात्मा की लीला है।

जकरिया खान की मृत्यु के बाद भाई जी बिना खोपड़ी की हालत में भी 22 दिनों तक वाहेगुरु का नाम सिमरन करते रहे और तत्पश्चात शहादत प्राप्त कर गए। भाई तारू सिंह जी कोजी की शहीदी ने सिखी सिदक का संबंध केशों से और भी पक्की तरह से जोड़ दिया। केश हमारे धैर्य, हिम्मत, शानो-शौकत का चिन्ह बन गए।

खुरपी से खोपड़ी उतरवाने वाले सिख भाई तारू सिंह जी को जी की

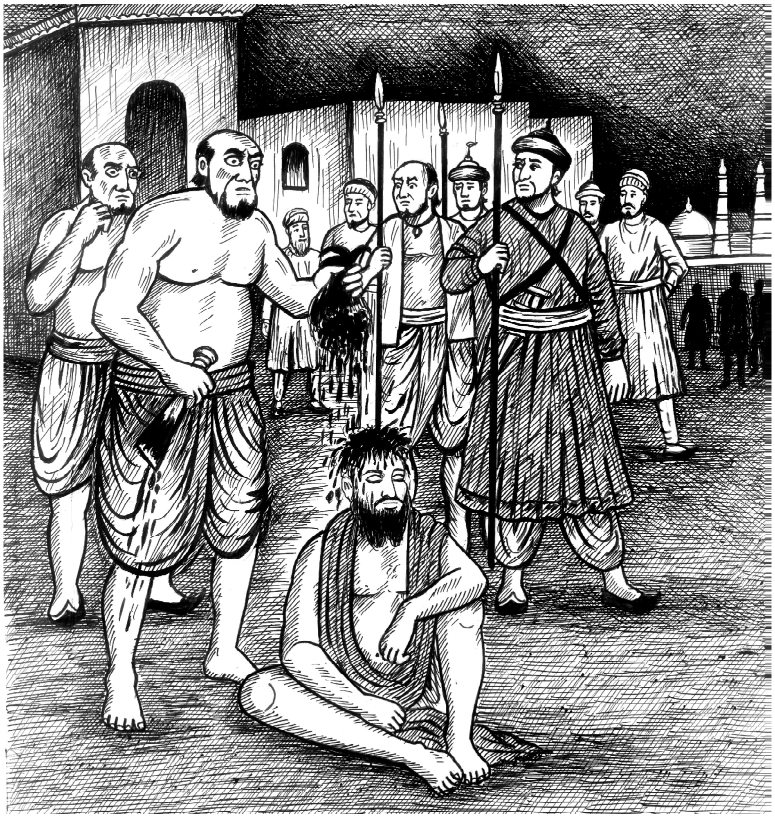

यह धन्य कमाई सदा के लिए अमर हो गई। इनकी महान कुर्बानी को सिख पंथ की रोजाना की अरदास द्वारा नमस्कार एवं सम्मान प्रदान किया जाता है।

भाई सुबेग सिंह और शाहबाज सिंह

भाई सुबेग सिंह गांव जम्बर (जिला लाहौर, पाकिस्तान) के निवासी थे। वे सुशिक्षित और फारसी के विद्वान थे। आप लाहौर में एक सरकारी ठेकेदार के रूप में कार्यरत थे और कुछ समय के लिए लाहौर शहर के कोतवाल भी रहे। आपके कार्यकाल में उस समय लाहौर में शांति और अमन-चैन था। उस समय का प्रशासन बागी सिखों से सुलह करने के लिए भाई सुबेग सिंह की मध्यस्थता चाहता था।

जिन सिखों के घर घोड़ों की काठी ऊपर हो, जो सिख जंगलों में निवास करते हों, जिन सिखों के अंग-संग गुरु साहिब स्वयं हों और अकाल पुरख जिनकी रगों में बसते हों, देश की आजादी और मिट्टी की आबरू के लिए रणक्षेत्र में जूझ मरने वाले ऐसे बहादुर सिखों को भला कौन समाप्त कर सकता था। अंततः जकरिया खान ने दिल्ली के तख्त से इजाजत लेकर सिखों से सुलह करने का सोचा और भाई सुबेग सिंह से मध्यस्थ की भूमिका अदा करने के लिए कहा।

हुकूमत ने खालसा को एक लाख सालाना की जागीर, कंगनवाल, झोबाल और देपालपुर परगना जैसे इलाके देने का प्रस्ताव रखा। सिखों को नवाबी का खिताब और कीमती वस्त्र देने का भी वादा किया गया। बदले में हुकूमत के खिलाफ जारी जंग को तुरंत बंद करने की शर्त रखी गई।

यह प्रस्ताव सिखों के प्रमुख सरदार दरबार सिंह को स्वीकार नहीं था। जब सरदार सुबेग सिंह ने निवेदन किया कि इस प्रस्ताव को स्वीकार कर कुछ समय के लिए शांति से जीवन व्यतीत करें और भविष्य में शत्रु से मुकाबले के लिए बेहतर तैयारी कर लें, तो हुकूमत का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। घोड़ों की लीद साफ करने वाले विनम्र सेवादार सरदार कपूर सिंह को नवाब के रूप में मनोनीत कर दिया गया।

कुछ समय शांति से गुजरने के बाद जकरिया खान ने फिर सिखों पर

सख्ती प्रारंभ कर दी। सिख उत्तम मौके की तलाश में जंगलों में निवास करने लगे।

सरदार सुबेग सिंह का पुत्र शाहबाज सिंह लाहौर के एक काजी से फारसी भाषा की विद्या ग्रहण कर रहा था। 18 वर्षीय शाहबाज सिंह खूबसूरत, गबरू और बुद्धिमान जवान था। काजी उनके उच्च्य आचरण और बुद्धिमता से प्रभावित था। वह चाहता था कि शाहबाज सिंह इस्लाम कबूल कर ले और अपनी बेटी का निकाह उससे कर दे। परंतु सच्चे गुरु-सिख शाहबाज सिंह ने काजी के सभी प्रस्ताव ठुकरा दिए। जब काजी को अपनी चाल कामयाब होती नहीं दिखी, तो उसने डराने-धमकाने की कोशिश की। इसमें भी असफल होने पर उसने झूठी शिकायतें करते हुए लाहौर के राज्यपाल जकरिया खान को शाहबाज सिंह के खिलाफ भड़काया।

जकरिया खान ने भाई सुबेग सिंह और शाहबाज सिंह को गिरफ्तार कर लिया। दोनों को अलग-अलग काल कोठरियों में कैद कर इस्लाम कबूल करने के लिए प्रताड़ित किया गया। झूठी खबरें देकर और असहनीय यातनाएँ देकर उन्हें मजबूर करने की कोशिश की गई।

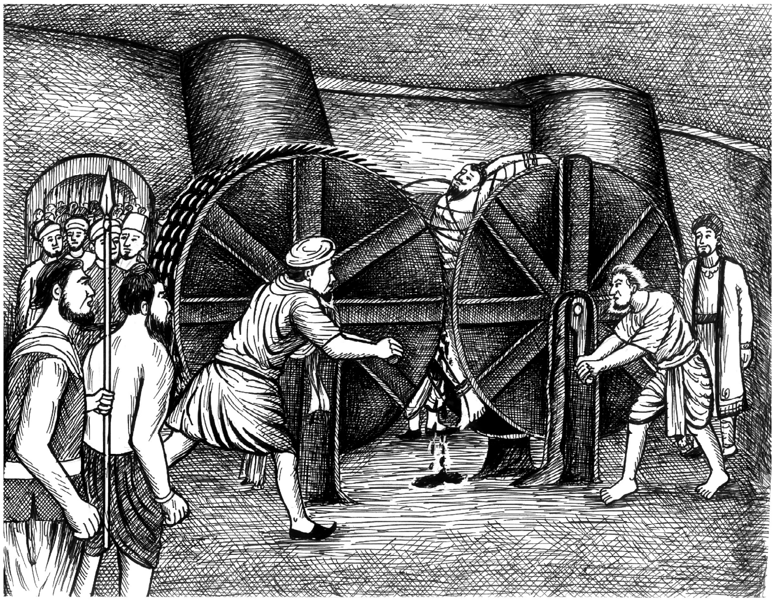

1 जुलाई सन 1745 को जकरिया खान की मृत्यु के बाद उसका पुत्र याहिया खान लाहौर का राज्यपाल बना। उसने पिता-पुत्र को इस्लाम कबूल करने की शर्त पर जान बख्शने का प्रस्ताव दिया, जिसे दोनों ने दृढ़ता से नकार दिया।

पिता-पुत्र को चरखड़ियों पर चढ़ाकर मौत की सजा सुनाई गई। तेज चाकुओं ने उनके शरीर को चीर कर रख दिया था, रक्त की धारायें बह निकली थी, उस समय अपने सिक्खी सिदक को संभाल कर, दोनों पिता-पुत्र ने गुरबाणी का पाठ करते हुए शहादत प्राप्त की।

उनकी यह वीरगति सिख धर्म और सिद्धांतों के प्रति उनकी अटूट आस्था का प्रतीक है।

गुरु गोविंद सिंह

गुरु गोविंद सिंह सिखों के दसवें गुरु थे। उनका जन्म बिहार के पटना शहर में हुआ था। उनके पिता गुरु तेग बहादुर की मृत्यु के उपरान्त 11 नवम्बर सन 1675 को वे गुरु बने। वह एक महान योद्धा, कवि, भक्त एवं आध्यात्मिक नेता थे।

उस समय औरंगजेब बादशाह दिल्ली के तख्त पर बैठा हुआ था। हिंदू धर्म की रक्षा के लिए जिस महान पुरुष ने अपने शीश की कुरबानी दी, ऐसे सिक्खों के नवें गुरु गुरु तेग बहादुर जी के घर में सिक्खों के दसवें गुरु गोविंद सिंह जी का परकाश हुआ था। उन दिनों गुरु तेग बहादुर जी पटना (बिहार) में रहते थे।

22 दिसंबर, सन् 1666 को गुरु तेग बहादुर की धर्मपरायण पत्नी गूजरी देवी ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया, जो बाद में गुरु गोविंद सिंह के नाम से विख्यात हुआ। बालक के जन्म पर पूरे नगर में उत्सव मनाया गया। उन दिनों गुरु तेग बहादुर असम-बंगाल में गुरु नानक देव जी के संदेश का प्रचार-प्रसार करते हुए घूम रहे थे।

सिख संगत के बीच बालक का नामकरण किया गया गोविंदराय। माता गूजरी ने बालक को जहाँ दया, करुणा और प्रेम के संस्कार दिए, वहीं साहस, वीरता और निर्भीकता की घुट्टी भी पिलाई। गोविंदराय की उम्र उस समय चार वर्ष की थी, जब गुरु तेग बहादुर वापिस आए। जिस समय उन्होंने हवेली में कदम रखा, तो उन्होंने देखा कि एक नन्हा बालक बच्चों को दो दलों में बाँट कर खेल रहा है। एक दल को उसने भयभीत किया हुआ है। गुरु तेग बहादुर ने जब ऐसा करने का कारण पूछा, तो उसने निर्भीकता से कहा, ''ये यवन हैं, मेरे शत्रु हैं, इसलिए उनके साथ ऐसा कर रहा हूँ।'' उसने कहा, ''मैं इन यवनों को कभी क्षमा नहीं कर

सकता।''

खेल खत्म हो गया। बालक से गुरु तेग बहादुर ने उसका परिचय पूछा, ''बालक आपका परिचय क्या है? आपके भाग्यशाली माता-पिता कौन हैं?''

बालक ने कहा, ''मेरा नाम गोविंदराय है। मैं गुरु तेग बहादुर जी का बेटा हूँ।''

गुरु साहब के चेहरे पर प्रसन्नता और अभिमान की चमक आ गई, ''आप गुरु तेग बहादुर के बेटे हैं? यह तो बहुत अच्छी बात है, तभी तो हमें लगा था कि...''

''और आप?'' बालक ने पूछा, ''महाशय आप अपना भी तो परिचय देने की कृपा करें कि आप कौन हैं?''

''मैं तुम्हारा पिता...!'' सुनते ही पुत्र ने पिता के चरणों का स्पर्श किया और पिता ने पुत्र को अपनी गोद में उठा लिया। तब तक माता गूजरी और सिख सेवक वहाँ पहुँच चुके थे। गुरु साहब ने माता गूजरी को संबोधित करते हुए कहा, ''जो संतान को जन्मती ही नहीं, उसे संस्कारवान भी बनाती है वह माता धन्य है।''

अपनी और अपने पुत्र की प्रशंसा सुनकर माता गूजरी की आंखों में आँसू छलकने लगे। बालक गोविंदराय धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था। भाई कृपाल सिंह उन्हें शस्त्र चलाने में पारंगत कर रहे थे, लेकिन उम्र के साथ-साथ उसकी कारगुजारियाँ भी बदलने लगी थीं। जिस हवेली में वे रहते थे, उसमें एक कुआँ था। आस-पास की स्त्रियाँ वहाँ जल भरने आया करती थीं। उन्हें तंग करने में बालक गोविंदराय को बड़ा मजा आता था। वह अपने दोस्तों के साथ तीर-कमान लेकर छिपकर बैठ जाता और जब स्त्रियाँ अपने सिर पर जल का घड़ा लेकर वहाँ से गुजरतीं तो

वह और उसके मित्र तीरों का निशाना बनाकर उन घड़ों को फोड़ दिया करते। गोविंदराय का निशाना इतना अचूक था कि वह कभी खाली नहीं जाता था। वे स्त्रियाँ उन बालकों की शैतानी से बहुत दुःखी थीं। वे जानती थीं कि इन सबका मुखिया गोविंदराय है। उन्होंने रोज-रोज के नुकसान से तंग आकर गोविंदराय की शिकायत करने का मन बनाया।

एक दिन सभी स्त्रियाँ मिलकर माता गूजरी के पास पहुँचीं और गोविंदराय की शिकायत करने लगीं, ''बीजी! संभालो अपने लाड़ले को।''

एक बोली, ''वह रोज हमारे घड़े फोड़ देता है। रोज-रोज का नुकसान हम कहाँ तक उठाएँ?''

दूसरी बोली, ''बीजी! वो अकेला नहीं है, उसके साथ उसकी पूरी मित्र-मंडली है। हमने कई बार उन्हें समझाया, पर वे मानते ही नहीं।''

तीसरी बोली, ''बीजी ! आप जरा सोचो, अगर कभी निशाना चूक गया, तो हमारी तो जान ही चली जाएगी। ये भी कोई खेल हुआ? हम तो तंग आ गए हैं, इसकी इन रोज-रोज की शैतानियों से।''

''तुम लोगों ने मुझे पहले क्यों नहीं बताया?'' माता गूजरी ने कहा, ''अच्छा देखो, मैं तुम्हें पीतल के घड़े दिलवा देती हूँ। यह उन्हें नहीं फोड़ पाएगा और मैं उसे फटकारूंगी भी। तुम चिंता मत करो।''

माता गूजरी ने उन औरतों को नए चमकदार पीतल के घड़े दिलवा दिए। उन घड़ों को पाकर वे बहुत खुश थीं। बालक गोविंदराय और उसके साथियों ने तीर-कमान से उन घड़ों को फोड़ने का प्रयास किया, पर वे सफल नहीं हो सके। जिस समय वे अपने हाथ अजमा रहे थे, उसी समय माता गूजरी ने पीछे से आकर रंगे हाथों गोविंदराय को पकड़ लिया। गोविंदराय को पकड़े जाते देखकर उसके सभी साथी जान बचाकर भाग निकले। औरतें हँसने लगीं, 'अब आया बच्चू पकड़ में।' माता गूजरी ने गोविंदराय को प्रेम भरी भाषा में फटकारते हुए कहा, ''यह बहुत बुरी बात है बेटा ! अगर तुम्हारा निशाना चूक जाए और छोड़ा हुआ तीर किसी को लगे तो कितना बड़ा अनर्थ हो जाए। तुम्हारा तो खेल होगा, जबकि दूसरे की जान चली जाएगी।''

''अब कभी भी ऐसा नहीं करूँगा। वचन देता हूँ।'' गोविंदराय ने

कहा।

पटना में गोविंदराय जब तक रहे। एक बार की बात है कि पटियाला राज्य के गुड़ाक नामक गांव में, भीखन शाह नाम के एक पहुँचे हुए फकीर ने रात में, एक स्वप्न देखा कि पटना में एक ऐसे पैगम्बर का जन्म हुआ है, जो अनेक ईश्वरीय शक्तियों से संपन्न है। ऐसा स्वप्न देखने के बाद वह पटना की ओर चल दिया। मार्ग में अनेक कठिनाइयों से जूझता हुआ वह एक दिन पटना जा पहुँचा। मठों और मंदिरों के संत-महात्माओं से पूछते-पूछते वह गोविंदराय की हवेली पर पहुँचा। वहाँ उसने माता गूजरी से प्रार्थना की, ''माई! सुना है तेरी कोख से किसी पैगंबर ने अवतार लिया है। मुझे उसके दर्शन करा दे।''

माता का हृदय आशंकित हो उठा, ''फकीर बाबा! मैं नहीं जानती कि वह पैगंबर है या कुछ और। मैं तो उसे अपना बेटा मानती हूँ। तुम पहले भोजन करो और फिर विश्राम कर लो। वह अभी आता ही होगा। तब तुम उससे मिल लेना।''

थोड़ी देर बाद गोविंदराय बाहर से आया, तो उसकी माता गूजरी ने उसे फकीर बाबा के सामने खड़ा कर दिया। बालक को देखकर फकीर बाबा ने दो कटोरों में पानी भरकर उसके सामने रखा और बोला, ''पुत्र! इन दो कटोरों में से तुम किसी भी एक कटोरे को छुओ।''

''परंतु क्यों बाबा?'' बालक ने पूछ ही लिया था।

''मैं तुम्हारी धर्म-आस्था की परीक्षा लेना चाहता हूँ। ये दोनों कटोरे विभिन्न धर्मों से संबंधित हैं। मैं देखना चाहता हूँ कि तुम्हारी आस्था किस धर्म में है।'' उस फकीर ने निसंकोच भाव से सही-सही बात कह दी थी।

गोविंदराय ने दोनों कटोरों का स्पर्श किया और उन्हें लुढ़का दिया। फकीर बाबा आश्चर्य से गोविंदराय का मुँह देखता रह गया वह माता

गूजरी से बोला, ''माई! तेरा यह बालक कोई साधारण बालक नहीं है। बड़ा होकर यह महान योद्धा होगा और अपनी कौम का सिरमौर बनेगा। दीन-दुखियों का सहायक होगा। यह किसी धर्म के साथ पक्षपात नहीं करेगा। परंतु जिस धर्म में अनाचार या अधर्म का बोलबाला होगा, उसका विध्वंस करने में भी यह पीछे नहीं रहेगा। अत्याचारियों का विनाश करेगा। इस बालक में ईश्वर का अंश है। यह सभी को अपना बनाकर चलेगा।''

''आपका बहुत-बहुत धन्यवाद बाबा।'' इस प्रकार माता गूजरी ने भीखन शाह फकीर को धन-धान्य देकर विदा किया।

उन दिनों पटना में राजा फतेहचंद रहते थे। उनके पास किसी चीज की कमी नहीं थी। बस कमी थी तो औलाद की। औलाद का सुख भला कौन नहीं चाहता, हर किसी को तो संतान की चाह रहती ही है। एक दिन वे अपने खास हितैषी के कहने पर अपनी पत्नी के साथ गुरु तेग बहादुर से मिलने हवेली पर आए। वहाँ पर बालक गोविंदराय को देखकर राजा फतेहचंद की पत्नी ने प्यार से उसे अपने पास बुलाया। गोविंदराय जाकर उनकी गोद में बैठ गए। राजा फतेहचंद की पत्नी को ऐसा लगा कि उनकी पुत्र प्राप्ति की कामना पूरी हो गई है। वे बालक गोविंद राय को खूब दुलार करके अपने महल में लौट आई।

कुछ दिन बाद ही राजा की पत्नी को लगा कि वह गर्भवती हो गई है। उचित समय आने पर उसने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। गोविंदराय ने गोद में बैठकर मानो उनकी बँधी कोख को खोल दिया था। फिर उन्होंने चार पुत्रों को जन्म दिया। तब से राजा और रानी बालक गोविंदराय के भक्त हो गए। बैसाखी सिख समुदाय का बहुत बड़ा और जाना-माना त्योहार है। इस त्योहार का इतिहास से भी बहुत गहरा संबंध है। इस संबंध में एक कथा प्रचलित है। यह सर्वविदित है कि मुगल शासक औरंगजेब भारत में इस्लाम धर्म फैलाना चाहता था और लोगों को जबर्दस्ती इस्लाम धर्म का अनुयायी बनाना चाहता था। सिखों के नवें गुरु तेग बहादुर सिंह जी ने इसका विरोध किया। इस विरोध को खत्म करने के लिए औरंगजेब ने उनकी हत्या कर दी।

गुरु तेग बहादुर सिंह जी की हत्या के बाद गुरु गोविंद सिंह दसवें

गुरु कहलाए। ''सवा लाख से एक लड़ाऊं'' कि भावना को साकार रूप देने के लिए गुरु गोविन्द राय ने 3 मार्च, 1699 बैसाखी के दिन पूरे देश में फैले अपने अनुयायियों, श्रद्धालुओं को बैसाखी के महाकुंभ पर आनन्दपुर साहब पहुँचने के संदेश भेजे। लोग अधिक से अधिक संख्या में आनन्दपुर साहब में इकट्ठे किए। विशाल पंडाल इन्सानी सरों का समुद्र ही दिखाई दे रहा था।

गुरु गोविंद सिंह ने यहाँ पर लोगों के मन में साहस पैदा करने के लिए लोगों से जोश और हिम्मत की बातें कीं। उन्हें इस समस्या से निपटने के लिए खुद आगे आने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने लोगों से कहा, ''जो लोग इस कार्य के लिए अपना जीवन बलिदान करने के लिए तैयार हैं, वे ही आगे आएँ।'' फिर वे रुके और मंच पर माता भगवती को याद कर गुरु जी ने अकाल पुर्ख से अरदास की, ''हे अकाल पुर्ख। समर्थ प्रदान कर कि सामने बैठी इस निष्तेज कोम रूपी मिट्टी से लाल पैदा कर सकूँ।''

हाथ में नंगी तलवार आँखों में चमक लिए विशाल समूह को सम्बोधित करते हुए गुरु जी ने पुनः कहा, ''जाति और धर्म की रक्षा के लिए मुझे एक व्यक्ति का सिर चाहिए, जो इस कार्य के लिए अपना शीश कटवाना चाहता है, वह मंच पर आए।''

लाहौर का दया राम खत्री अपना शीश कटवाने आन खड़ा हुआ, ''गुरुदेव मातृभूमि के लिए अपना शीश चढ़ाने के लिए मैं तैयार हूँ। मेरे लिए मातृभूमि से बढ़कर और कुछ नहीं।''

''शाबाश।'' गुरु महाराज उसे बाजू से पकड़ मंच पर लगे तंबू में ले गए। कड़ाके की आवाज आई, खून से रंगी तलवार हाथ में थामें गुरु गोविन्द सिंह ने बारी-बारी चार और सिर माँगे। जगन्नाथपुरी का हिम्मत राय कुम्हार, द्वारका निवासी मोहकम चंद शिम्बा (धोबी), बिहार का साहब चंद नाई, दिल्ली का धर्मदास जाट अपना-अपना सिर कटवाने मंच पर आए।

पाँच बार खून से भरी तलवार हाथ में थामे बाहर आए गोविन्द राय को देख जनसमूह हैरान हो गया। कुछ ही समय उपरांत उन पांचों शीश देने वाले वीरों को हथियारों से सजाए, स्वयं शाही लिबास और कल्गी

धारण किए। गोविन्द राय मंच पर आन खड़े हुए। लोहे के बड़े बाँटे (बर्तन) में पवित्र जल भरवा पतासे डाल वाणी का उच्चारण करते हुए तलवार से हिला गुरु महाराज ने अमृत तैयार किया। पांचों शस्त्र धारी वीरों को वह अमृत पिलाया। उन सभी के नाम का अंतिम शब्द सिंह पुकार उनको पांच प्यारों की उपाधि से सम्मानित किया। उनके एक-एक सिर के बदलते अपना सर्वस्व, धर्म और जाति की रक्षा हेतु बलिदान करने की प्रतिज्ञा ली। जात-पात, ऊंच-नीच का भेद मिटा धर्म, जाति और मर्यादा की खातिर ज्ञान देने वाले खालसा पंथ की सर्जना की घोषणा की। पूरा पंडाल वाहे गुरु जी का खालसा, वाहे गुरु जी की फतह के जयघोष से गूँज उठा।

अमृत चख सिंह सजने की होड़ लग गई। गुरु गोविन्द सिंह साहब ने सिंहों को खालसा का नाम बख्शा और पाँच निशानियाँ 'कंघा, कड़ा, कच्छा, केश और 'कृपाण' धारण करने का आदेश दिया। इस प्रकार आनन्दपुर साहब, सिख पंथ की जन्म स्थली और चढ़ती कला का केन्द्र बना। उन्होंने हिन्दुओं की रक्षा के लिए लोगों में एकता और स्वाभिमान की ज्योत जलाई। आनन्दपुर साहिब ने एक फौजी छावनी का रूप धारण कर लिया। बाद में छोटी-मोटी कई लड़ाइयों में मुगलों और पहाड़ी राजाओं को खालसा फौज ने पराजित किया।

बैसाखी को कई इतिहासकार भारत में जंग-ए-आजादी का शंखनाद मानते हैं। गुलामी की जंजीरों को काटकर गुरु गोविन्द सिंह ने हक हलाल की लड़ाई की शुरुआत की, वहीं जो इंसान अपने हाथों में एक लाठी भी पकड़ने में झिझकता था, उन्होंने कृपाण पकड़ने का साहस भरा। एक-एक करके पाँच जांबाज अपना शीश हथेली पर रख कर आगे आए और गुरु गोविन्द सिंह के उस आह्वान को चरितार्थ किया।

वो पंच प्यारे जो देश के विभिन्न भागों से आए थे और समाज के अलग-अलग जाति और सम्प्रदाय के लोग थे, उन्हें एक ही कटोरे में अमृत पिला कर गुरु गोविन्द सिंह ने एक बना दिया। इस प्रकार समाज में उन्होंने एक ऐसी क्रान्ति का बीज रोपा, जिसने जाति का भेद और सम्प्रदायवाद, सब कुछ मिटा दिया।

इन पंच प्यारों को गुरु जी ने अमृत (अमृत यानी पवित्र जल जो सिख धर्म धारण करने के लिए लिया जाता है) चखाया, इसके बाद इसे बाकी सभी लोगों को भी पिलाया गया। इस सभा में मौजूद हर धर्म के अनुयायी ने अमृत चखा और खालसा पंथ का सदस्य बन गया। इस घटना को देश के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि उस समय देश में धर्म, जाति जैसी चीजों का बहुत ज्यादा बोलबाला था।

इस सभा में मौजूद सभी लोगों ने न सिर्फ सिख धर्म को अपनाया, बल्कि सभी ने अपने नाम के आगे सिंह भी लगाया। गुरु गोविंद सिंह भी पहले गोविंद राय थे। इस सभा के बाद ही वे गुरु गोविंद सिंह कहलाए। तभी से यह दिन खालसा पंथ की स्थापना के उपलक्ष्य में बैसाखी के तौर पर मनाया जाता है।

खालसा का अर्थ है खालिस अर्थात् विशुद्ध, निर्मल और बिना किसी मिलावट वाला व्यक्ति। इसके अलावा हम यह कह सकते हैं कि खालसा हमारी मर्यादा और भारतीय संस्कृति की एक पहचान है, जो हर हाल में प्रभु का स्मरण रखता है और अपने कर्म को अपना धर्म मान कर जुल्म और जालिम से लोहा भी लेता है। शत्रुओं के विनाश के लिए खालसा की स्थापना की गई।

गोविन्द सिंह जी ने एक नया नारा दिया है :

वाहे गुरु जी का खालसा,
वाहे गुरु जी की फतेह।

गुरु जी द्वारा खालसा का पहला धर्म है कि वह देश, धर्म और मानवता की रक्षा के लिए तन-मन-धन सब न्यौछावर कर दे। निर्धनों, असहायों और अनाथों की रक्षा के लिए सदा आगे रहे। जो ऐसा करता है, वह खालिस है, वही सच्चा खालसा है। ये संस्कार अमृत पिलाकर गोविंद सिंह जी ने उन लोगों में भर दिए, जिन्होंने खालसा पंथ को स्वीकार किया था।

बैसाखी का एक महत्त्व यह है कि परम्परा के अनुसार पंजाब में फसल की कटाई पहली बैसाख को ही शुरू होती है और देश के दूसरे हिस्सों में भी इसी दिन फसल कटाई का त्योहार मनाया जाता है, जिनके

नाम भले ही अलग-अलग हों। आज के युग में भी यदि हम श्री गुरु गोविन्द सिंह के जीवन के आदर्शों को, देश, समाज और मानवता की भलाई के लिए उनके समर्पण को अपनी प्रेरणा का स्रोत बनाएँ और उनके बताए गए रास्ते पर निष्ठापूर्वक चलें तो कोई कारण नहीं कि देश के अन्दर अथवा बाहर से आए आतंकवादी और हमलावर हमारा कुछ भी बिगाड़ सकें।

गोविंद सिंह ने सिखों में युद्ध का उत्साह बढ़ाने के लिए हर कदम उठाया। वीर काव्य और संगीत का सृजन उन्होंने किया था। उन्होंने अपने लोगों में कृपाण जो उनकी लौह कृपा था, के प्रति प्रेम विकसित किया। खालसा को पुनर्संगठित सिक्ख सेना का मार्गदर्शक बनाकर, उन्होंने दो मोर्चों पर सिक्खों के शत्रुओं के खिलाफ कदम उठाए।

उनकी सैन्य टुकड़ियाँ सिख आदर्शों के प्रति पूरी तरह समर्पित थीं, और सिखों की धार्मिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए सब कुछ दांव पर लगाने को तैयार थीं। लेकिन गुरु गोविंद सिंह को इस स्वतंत्रता की भारी कीमत चुकानी पड़ी थी। अंबाला के पास एक युद्ध में उनके चारों बेटे मारे गए। बाद में उनकी पत्नी, माँ और पिता भी संघर्ष की भेंट चढ़ गए। वह स्वयं भी एक पश्तो कबीलाई के हाथों उसके पिता की मौत के प्रतिशोधस्वरूप मारे गए। गोविंद सिंह ने स्वयं को अंतिम गुरु घोषित किया। उसके बाद से पवित्र पुस्तक आदिग्रंथ को ही सिख गुरु होना था। गुरु गोविंद सिंह आज भी सिक्खों के मन में वीरता के आदर्श और सिख सैनिक संत के रूप में अंकित हैं।

गुरु गोविंद सिंह ने धर्म, संस्कृति व राष्ट्र की आन-बान और शान के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया था। गुरु गोविंद सिंह जैसी

वीरता और बलिदान इतिहास में कम ही देखने को मिलता है। इसके बावजूद इस महान शख्सियत को इतिहासकारों ने वह स्थान नहीं दिया जिसके वे हकदार हैं। कुछ इतिहासकारों का मत है कि गुरु गोविंद सिंह ने अपने पिता का बदला लेने के लिए तलवार उठाई थी। क्या संभव है कि वह बालक स्वयं लड़ने के लिए प्रेरित होगा जिसने अपने पिता को आत्मबलिदान के लिए प्रेरित किया हो।

गुरु गोविन्द सिंह जी को किसी से बैर नहीं था, उनके सामने तो पहाड़ी राजाओं की ईर्ष्या पहाड़ जैसी ऊँची थी, तो दूसरी ओर औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता की आँधी लोगों के अस्तित्व को लील रही थी। ऐसे समय में गुरु गोविंद सिंह ने समाज को एक नया दर्शन दिया। उन्होंने आध्यात्मिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए तलवार धारण की।

भारत में देश-धर्म रक्षकों ने मुस्लिम एवं अँग्रेजों के पराधीनता काल में असंख्य भारतीयों को देश पर मर-मिटने की प्रेरणा दी, लेकिन इनमें गुरु गोविंद सिंह का जीवन, उनका कृतित्व एवं व्यक्तित्व इतनी विभिन्न दिशाओं और आयामों तक फैला हुआ था कि उनकी शक्ति, सामर्थ्य, वीरता,

बलिदान और राष्ट्र प्रेम में बड़े से बड़ा मुगल बादशाह बौना नजर आता है। वह मात्र 42 वर्ष की आयु में ही देश के अनेक राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, युद्ध और सुरक्षा के प्रकल्पों को सम्पन्न करके भारत के एक महान सपूत के रूप में प्रतिष्ठित हुए। वे संत के साथ सिपाही थे, साहित्यकार के साथ कुशल सेनानी थे तथा पथ-प्रदर्शक, समाज सुधारक और महामानव तो थे ही। वे अपने युग के शक्ति, भक्ति, साहित्य एवं सांस्कृतिक समन्वय के प्रतीक पुरुष थे। दीनहीन, अछूत-छूत सभी खालसा के समर्पित सैनिक थे। महान एवं साहसी गुरु से प्रशिक्षण पा कर सैनिक अब नर से नरसिंह बन आए थे। ऐसे युगान्तरकारी पुरुष इतिहास में कम ही मिलते हैं। शत्रुओं के छिट-फुट आक्रमणों का विध्वंस तो खालसा-वीरों ने किया ही। गुरु और उनके सैनिकों की असल परीक्षा तब हुई जब 26 जून, 1700 को मुगलों और पहाड़ी राजाओं की तीस हजार की सम्मिलित सेना ने आनंदपुर की ओर कूच कर दिया। गुरु मुश्किल से 6-7 हजार खालसा सैनिक एकत्रित कर पाए। इन सभी का उन्होंने अपने सफेद घोड़े पर सवार होकर नेतृत्व किया और उनमें अपने ओजस्वी भाषण से ऐसा पराक्रम और साहस भरा कि मुट्ठी भर सिख सेना शत्रुओं की अपार सेना से जा भिड़ी।

गुरु गोविंद सिंह ने कई विवाह किए और कई संतानें उन्हें हुईं, लेकिन सभी कुछ उन्होंने देश के ऊपर बलिदान कर दिया। उनका वैवाहिक जीवन हमेशा संघर्ष से भरा ही रहा। लाहौर के श्री भिकिया (सुभिकीजी) खत्री की कन्या सुश्री जितो के साथ श्री गोविंद सिंहजी का विवाह सन् 1677 ई. में सम्पन्न हुआ था। श्री रामसरणजी की कन्या सुश्री सुन्दरीजी के साथ उनका द्वितीय विवाह 1684 ई. में हुआ। उनका तीसरा विवाह रोहटास के सिख श्री हर भगवानजी की कन्या सुश्री साहिब दीवान के साथ सम्पन्न हुआ।

श्री गुरु गोविंद सिंहजी के चार पुत्र थे, बड़े पुत्र अजीत सिंहजी (माता सुन्दरीजी) का जन्म 26 जनवरी, 1687 के दिन हुआ था। जुझार सिंहजी (माता जितोजी) का जन्म 14 मार्च, सन् 1691 ई. में, जोरावर सिंहजी (माता जितोजी) का जन्म 17 नवम्बर, सन् 1696 ई. में और सबसे छोटे पुत्र फतेह सिंह (माता जितोजी) जन्म 25 फरवरी, सन् 1699 ई. में

हुआ।

एक बार गुरु गोविंद सिंह किसी गाँव में प्रवचन कर रहे थे। उन्हें सुनने के लिए बड़ी संख्या में लोग आए थे। गाँव के सभी तबके के लोग वहाँ थे। उनमें किसान, मजदूर और जमींदार सभी थे। प्रवचन करते हुए गुरु गोविंद सिंह को प्यास लगी। उन्होंने सामने बैठे एक युवक से पानी लाने को कहा। युवक चाँदी के गिलास में ठंडा पानी लेकर आया। गुरु जी उसके हाथ से गिलास लेते हुए बोले, ''बेटा, तुम्हारा हाथ बहुत कोमल है।''

युवक बोला, ''गुरु जी, हमें कोई काम नहीं करना पड़ता। हमारे घर में कई नौकर-चाकर हैं। इसके अलावा खेती का काम करने के लिए अलग से मजदूर हैं। वे ही सारा काम करते हैं।''

गुरु ने पूछा, ''फिर तुम क्या करते हो?''

युवक ने कहा, ''गुरु जी, मैं तो काम कराने के लिए नौकरों को आदेश देता हूँ। मौज मस्ती करता हूँ। संत लोगों के प्रवचन सुनता हूँ। दिन आराम से कट जाता है।''

इस पर गुरु गोविंद सिंह गिलास लौटाते हुए बोले, ''बेटा, मैं तुम्हारे हाथ का पानी नहीं पीऊंगा।''

युवक सकपका गया। बोला, ''गुरु जी, आप मेरे हाथ का पानी क्यों नहीं पीएंगे। मैं हाथ साफ करके पानी लाया हूँ। यह देखिए बिल्कुल साफ है मेरा हाथ।''

गुरु जी ने कहा, ''बेटा तुम्हारा हाथ साफ है, यह मैं देख रहा हूँ। लेकिन मैं ऐसे हाथों से जल ग्रहण नहीं कर सकता जो सेवा, सहायता या श्रम से अछूता हो। हाथ वही पवित्र और साफ होते हैं, जो दूसरों की सेवा करते हैं। श्रम और सेवा के बगैर हाथ ही क्या पूरा शरीर अपवित्र होता है। संतों के प्रवचन सुनकर भी तुम्हें ज्ञान नहीं हुआ कि श्रम और परोपकार ही सबसे बड़ा धर्म है।'' गुरु गोविंद सिंह की यह बात सुनकर वह युवक हमेशा के लिए उनका शिष्य बन गया और उसके बाद जहाँ-जहाँ कार सेवा होती, वह सबसे पहले पहुँचता। श्री गुरु गोविंद सिंहजी ने एक नगाड़ा बनवाया था और उसका नाम रणजीत नगाड़ा रखा था। यह नगाड़ा प्रातः

व सायंकाल बजाया जाता था। श्री गुरु गोविंद सिंहजी ने धीरे-धीरे सेना एकत्रित करना प्रारंभ कर दिया। उनकी सेना में स्वामी भक्त सिखों के साथ-साथ कुछ लोग धनार्जन के लिए भी सेना में भरती हुए, उन्होंने लाहौर से तीक्ष्ण बाण मँगवाए और धनुर्विद्या का अभ्यास प्रारंभ कर दिया।

इस प्रकार श्री गुरु गोविंद सिंहजी का बढ़ता हुआ संगठन, पहाड़ी राजाओं में डर पैदा कर रहा था। वे उन पर नियंत्रण रखना चाहते थे। पुनः निम्न कही जाने वाली जातियों को ऊपर उठाने के गुरु गोविंद सिंह के प्रयासों से, परम्परागत जाति-अभिमानी ये राजा रुष्ट हो गए थे और ऐसी स्थिति में उन्होंने गुरुजी के विरुद्ध मोर्चा खोल दिया। सिख इतिहास के अनुसार कलिहूर के राजा भीमचन्द (जिसके क्षेत्र में, गुरु गोविंद सिंह अपने शक्ति केन्द्र आनन्दपुर की स्थापना कर रहे थे।) के पुत्र अजमेरचन्द का विवाह गढ़वाल के राजा फतेशाह की पुत्री से निश्चित हुआ था। गुरु गोविंद सिंहजी इस समय पांवटा नामक स्थान पर थे। इस विवाह के अवसर पर अनेक पहाड़ी राजा ससैन्य उपस्थित हुए। योजना थी कि विवाह के बाद गुरु गोविंद सिंहजी पर आक्रमण किया जाए। गुरुजी को इस योजना की जानकारी जैसे ही हुई, उन्होंने पांवटा से 6 मील के अंतर पर, युद्ध की दृष्टि से उपयुक्त स्थान भंगाणी में मोर्चे बाँध लिए। इस युद्ध में गुरु गोविंद सिंहजी ने स्वयं नेतृत्व किया।

पहाड़ी राजाओं की सेना भाग गई और विजय प्राप्त कर गुरु गोविंद सिंह आनन्दपुर लौट गए। अप्रैल सन् 1689 में यह गुरुजी के जीवन का प्रथम युद्ध था। इसके बाद उन्होंने लोहगढ़, आनन्दगढ़, केशगढ़ और फतेहगढ़ दुर्ग बनवाए। पराजित राजाओं ने गुरु गोविंद सिंह से संधि कर ली और उनका साथ देना स्वीकार किया। उन्होंने औरंगजेब को कर देना रोक दिया। इस पर मुगल सेना ने आक्रमण कर दिया, पर गुरु गोविंद सिंहजी की सहायता से इस आक्रमणकारी सेना को उन्होंने परास्त कर दिया। पर राजाओं ने पुनः कमजोरी दिखाकर, मुगलों से संधि की तैयारी की। औरंगजेब के निर्देश पर लाहौर के सूबेदार दिलावर खान की सेना उनके पुत्र रुस्तम खान के नेतृत्व में गुरु गोविंद सिंह पर आक्रमण हेतु बढ़ी। दोनों ओर से युद्ध की तैयारी हुई, पर इसी बीच नदी में भारी बाढ़

आ जाने से, मुगल सेना को परेशान होकर लौटना पड़ा।

इसके बाद हुसैन खाँ नामक सेनापति राजाओं को लूटने लगा। गुरु गोविंद सिंह की सेना ने हुसैन खाँ को भी पराजित किया। औरंगजेब इस समय दक्षिण में था। पंजाब के समाचार उसे चिन्तित करने लगे। उसने अपने पुत्र मुअज्जम को भेजा। मुगल सेना ने पहाड़ी राजाओं को बुरी तरह कुचल डाला, परंतु आनन्दपुर फिर भी सुरक्षित रहा।

गुरु गोविंद सिंहजी यह जानते थे कि मुगल सत्ता से संघर्ष टल नहीं सकता। अतः वे अपनी स्थिति दृढ़ करने में लग गए।

औरंगजेब की सेना ने आनंदपुर पर हमला बोल ही दिया था। उस सेना में पाँच लाख सिपाही थे। जबकि, गुरु गोविंद सिंह की सेना में मात्र दस हजार खालसा सिपाही थे। तब भी उन्होंने औरंगजेब की सेना से लोहा लिया। उन खालसाओं में से एक को जिम्मा सौंपा गया था कि वह घायलों की मरहम पट्टी करे। वह अपने कर्तव्य का पालन बखूबी कर रहा था। एक दिन जब वह हताहतों की मरहम पट्टी कर रहा था, तब दूसरे खालसा सैनिक ने उसे दुश्मन सैनिक के जख्म पर मरहम लगाते देख लिया और गुरु गोविंद सिंह से उसकी शिकायत कर दी। गुरु गोविंद सिंह ने उस खालसा सिपाही को बुलाया और पूछा, ''यह सिपाही जो कुछ कह रहा है, क्या वह सच है?''

वह बोला, ''मुझे तो मात्र घायलों की चिकित्सा का कार्य सौंपा गया था, जो मैं कर रहा था। अब उनमें कौन सिपाही शत्रु का है और कौन अपने पक्ष का, इसका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं रहा।''

तब गुरु गोविंद सिंह बोले, ''निस्सहाय तो निस्सहाय है। भले ही वह अपना हो, या शत्रु पक्ष का। निस्सहाय की सहायता करना मानव का परम धर्म है। इस सिपाही ने तो मानव धर्म का पालन किया है।'' उन्होंने उस सिपाही को आदेश दिया, ''अब तुम शत्रु सैनिकों के जख्मों को भरने का भी काम किया करो।''

गुरु गोबिंद सिंह का जीवन संघर्ष, कुर्बानी और मानवता की सेवा की कहानी है। उन्होंने अन्याय और अत्याचार के खिलाफ एक सैनिक की तरह संघर्ष किया। लेकिन जीवन भर वे एक संत की तरह सादगी से रहे

और लोगों में अपना प्रेम बाँटते रहे। उनका कहना था कि इंसान, धरती पर मानवता की सेवा के लिए ईश्वर के भेजे गए दूत हैं और उनका ध्येय धरती पर शांति व प्रेम की अलख जगाना है। गोविंद सिंह ईश्वर को सर्वशक्तिमान मान कर जीवन के संग्राम में कूदे। उनके अनुसार 'ओम' का अर्थ है : ब्रह्मा, विष्णु और महेश। जब हम ओम का उच्चारण करते हैं तो इसका तात्पर्य होता है कि हम इस संसार को जन्म देने, पालने और फिर नष्ट करने वाली शक्तियों के सामने अपना सिर झुकाते हैं। गुरु नानक देव ने इन शक्तियों को मानते हुए इसके साथ 'एक' का अंक लगा दिया था, जिसका अर्थ था कि इन तीनों महान शक्तियों को पैदा करने वाला ईश्वर एक ही है। यही बात वेदों में भी कही गई है।

इसी बात की व्याख्या करते हुए गोविंद सिंह ने अपने ग्रंथ 'विचित्र नाटक' में फरमाया कि उसने (ईश्वर, महाकाल) अनेक व्यक्तियों को धर्म चलाने व ईश्वर की आराधना के लिए इस विश्व में भेजा, परंतु वे महान लोग आगे चलकर स्वयं ईश्वर रूप समझे जाने लगे और लोग ईश्वर की आराधना भूल कर उन व्यक्तियों की ही पूजा करने लगे। गोविंद सिंह जी ने कहा कि इस धरती से जुल्म खत्म करने व धर्म के प्रसार के लिए संत होने की जरूरत है, अपने आप को ईश्वर घोषित करवाने की नहीं।

गुरु गोविंद सिंह ने कहा कि इस धरती पर वही लोग राज करेंगे जो संत होंगे और धर्म पर चलने वाले होंगे। जो दूसरों पर जुल्म नहीं करेंगे और समाज के हर वर्ग को अपना समझ कर मानवता की सेवा को तत्पर रहेंगे। सिख धर्म का यही सार है।

गुरु गोविंद सिंह अन्याय और अत्याचार के आगे शीश झुकाने के कतई हक में नहीं थे। उनका कहना था कि जुल्म सहना कायरता की निशानी है और इससे अत्याचारी के हौसले बढ़ते हैं। उन्हें इस बात का बहुत गर्व था कि वे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की संतान हैं। विचित्र नाटक में उन्होंने इस बात का खूब बखान किया है।

गुरु गोविंद सिंह जी को 'संत-सिपाही' इसीलिए कहा जाता है। वे एक योद्धा भी थे और तपस्वी भी। यह गुरु जी ही थे कि जब सामने उनके पिता जी का पवित्र शीश लाया गया तो बजाए रोने-धोने के उन्होंने

प्रतिज्ञा की कि जो शासन ऐसा अन्याय करता है, उसे वह खत्म करके ही चैन लेंगे। यह गुरु जी ही थे, जिन्होंने अपने बच्चों में यह शक्ति भर दी कि वे पानी माँगे बगैर अंतिम सांस तक लड़ेंगे। इसी शक्ति का कमाल था कि उनके दोनों बेटे हँसते-हँसते दीवारों में जिंदा चिने गए, लेकिन उन्होंने उफ तक नहीं की।

गुरु जी का व्यक्तित्व बहुआयामी था। उन्होंने जहाँ 'चंडी-दी-वार' पंजाबी भाषा में लिखी, वहीं हिंदी में 'वार-चंडी' व 'सर्वलोक' ग्रंथ की रचना की। उन्होंने बावन भक्त कवियों की रचनाएँ संकलित कीं, रामायण व महाभारत को जनता की भाषा में लिखा और भारतीय संस्कृति को उजागर करने वाले ढेर सारे साहित्य का सृजन किया।

गोविंद जी के संदेशों का सार यह है कि यदि परमात्मा की बात करनी है, समूची दुनिया को संबोधित करना है तो धरती के किसी एक क्षेत्र के बन कर, किसी एक वर्ग के धार्मिक या सांस्कृतिक बँधनों में सीमित रहकर ऐसा करना संभव नहीं है। अपनी सोच को व्यापक करना होगा और पूरे विश्व को एक परिवार समझ कर विश्व दृष्टि का निर्माण करना होगा। मुगलों के साथ व हिंदू राजपूत राजाओं के साथ भी इनके कई युद्ध हुए, जिनमें मुगल सेना व पहाड़ी राजा की सेना को हर बार मुँह की खानी पड़ी।

यह युद्ध गुरु जी ने कोई जमीन जायदाद के लिए नहीं किए थे बल्कि जुल्म के विरुद्ध किए थे। गुरु गोविंद ने अन्याय को कभी सहन नहीं किया और अन्याय करने वालों को हमेशा उन्होंने नसीहतें दी और सबक सिखाया। गुरुजी ने स्पष्ट कहा कि यदि जुल्म के विरुद्ध सारे उपाय नाकाम हो जाएँ तो तलवार उठाना कोई पाप नहीं बल्कि पुण्य है। अपनी रक्षा आवश्यक है, इसलिए आत्म रक्षा हेतु यह जायज है :

चूं कार अज हमा हीलते दर गुजस्त।
हलाल असत बुरदन बशमशीर दसत।।

उनकी दिनोंदिन चढ़त देखकर कुछ राजा इर्ष्यालू हो गए और उन्होंने गुरु को सबक सिखाने के लिए औरंगजेब से सहायता माँगी। औरंगजेब के हुकम अनुसार सरहिंद, लाहौर के सूबेदार व शाही सेना के राजपूत

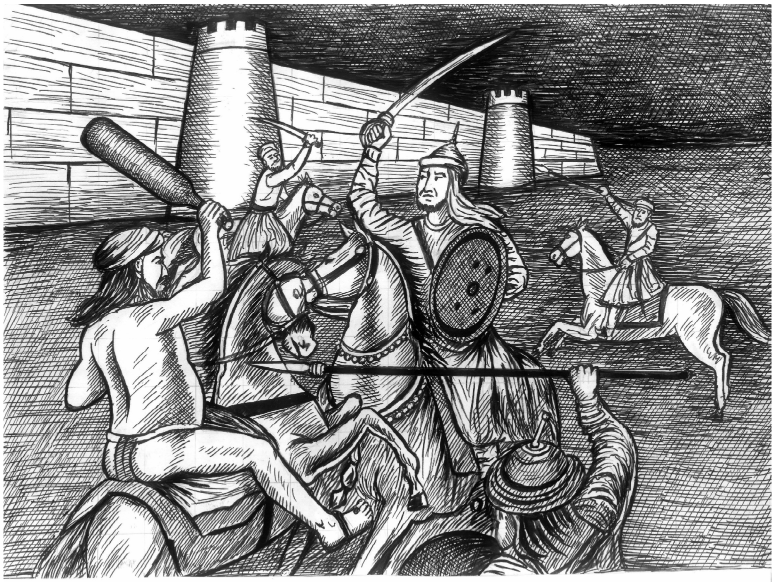

पहाड़ी राजाओं ने गुरु जी पर आनंदुपर साहिब में धावा बोल दिया। सात महीने तक लड़ाई चलती रही। 15 अप्रैल 1687 को भंगाणी का युद्ध हुआ। जिसमें कहिलूर के राजा भीमचंद ने अन्य राजाओं को साथ लेकर गुरु जी पर आक्रमण किया। पौंटा साहिब से सात मील पूर्व की तरफ यमुना और गिरी नदियों के बीच के स्थान भंगाणी पर युद्ध हुआ। इस युद्ध में गुरु जी की बुआ बीबी वीरों जी के पांचों पुत्रों तथा मामा कृपाल चंद जी ने हिस्सा लिया। गुरु जी के सिक्ख महंत कृपालदास जी उदासी ने भारी लाठी द्वारा हयात खान का सिर फोड़ दिया, इसमें गुरु जी की जीत हुई।

पहाड़ी राजाओं और अपने नामी सरदारों की पराजय से औरंगजेब बहुत चिंतित हो उठा। उसने एक विशाल सेना भेजी। इस सेना में सरहिंद, लाहौर और जम्मू के सूबेदारों की सेनाएँ भी सम्मिलित हुईं। 22 पहाड़ी राजा भी अपनी सेना के साथ उसमें आ मिले। गुरु गोविंद सिंहजी अपनी शक्ति के अनुसार तैयारी कर चुके थे। प्रारंभिक झड़पों में मुगल सैनिक और पहाड़ी राजा खालसा सेना के आगे टिक नहीं पाए। पर शीघ्र ही उस विशाल मुगल सेना ने आनंदपुर के चारों ओर कड़ा घेरा डाल दिया।

आनंदपुर का बाहर से संबंध टूट गया। अनाज और पानी की भारी कमी होने लगी। भूख-प्यास से सैनिक तड़पने लगे। मुगल सेनापति कुरान और पहाड़ी राजा गीता की सौगंध के साथ सन्देश भेजने लगे कि दुर्ग छोड़ दें तो उन्हें सुरक्षित जाने दिया जाएगा। सैनिक आग्रह करने लगे तो गुरुजी ने कहा, 'आ जा सकते हैं, परंतु लिखकर दे दें कि गुरु-शिष्य का सम्बन्ध तोड़ रहे हैं।' 40 सिखों ने यह 'बे-दावा' लिख दिया और दुर्ग छोड़कर चले गए। बाद में सिखों से सलाह कर दुर्ग का घेरा छोड़ गुरु गोविंद सिंह अपनी माता, पत्नियों और चारों पुत्रों अजीत सिंह, जुझार सिंह, जोरावर सिंह और फतेह सिंह तथा बचे हुए साथियों के साथ निकल गए। लेकिन उन्हें एक बार फिर युद्ध में भाग लेना पड़ा और एक-एक करके उनके चारों पुत्र देश के लिए शहीद हो गए।

चारों पुत्रों को शहीद करवाने वाले श्री गुरु गोविंद सिंह जी का वंश खालसा रूप में चिरंजीवी है। एक अकाल पुरख की उपासना करने वाले गुरुजी का वंश भी अकाली है। यहाँ उल्लेखनीय है कि सरहिन्द के नवाब वजीर खान के दरबार में नवाब मलेरकोटला शेरखान ने छोटे निरीह बालकों को इस प्रकार की सजा देने का विरोध किया था। चमकौर की गढ़ी से जाने के बाद गुरु जी माछीवाडे से होते हुए मालवा प्रदेश में पहुँचे, जहाँ पर सिखों ने उनका स्वागत किया। कांगड़ गाँव में गुरु जी ने औरंगजेब को चिट्ठी लिखी, जो कि जफरनामा (फतेहनामा) के नाम से प्रसिद्ध है। चिट्ठी में गुरु जी ने औरंगजेब को फटकार लगाई और कहा, ''तूने 'औरंगजेब' नाम को कलंकित किया है। तू सच्चा मुसलमान भी नहीं है, क्योंकि कुरान जुल्म के खिलाफ है। तूने यदि मेरे चार मासूम बच्चे मरवा दिए तो क्या हुआ अभी मैं जिंदा हूँ और तेरे निर्दयी राज का खात्मा अब अवश्य है।''

इतिहास गवाह है कि औरंगजेब ने जब यह चिट्ठी पढ़ी, तो वह बहुत ही भयभीत हो गया और उसने एक शासनादेश जारी किया, ''गुरु गोविंद सिंह की जायदाद वापिस की जाए और वह हिंदुस्तान में कहीं भी जाए उसको कोई तंग न करे।''

एक बार गुरु गोविंदसिंह जी के यहाँ एक कलंदर आया। जो रीछ

को पकड़कर नचाते हैं, उन्हें कलंदर (मदारी) कहते हैं। उस समय गुरु गोविंदसिंह जी आराम की मुद्रा में बैठे थे और एक सेवक चँवर डुला रहा था। भालू का खेल देखकर वह सेवक खूब हँसा और बोला, ''किस पाप के कारण इसकी यह गति हुई? मुझे कृपया यह बताइए।''

गुरु गोविंदसिंह जी ने उससे कहा, ''यह तेरा बाप है। क्या तुम इसे नहीं पहचान पाए हो?''

''यह सब मेरी समझ से परे है'' सेवक ने कहा, ''मैं मनुष्य हूँ, यह रीछ मेरा बाप कैसे?''

''यह पिछले जन्म में तेरा बाप था। यह गुरु के द्वार तो जाता था, लेकिन गुरु का होकर सेवा नहीं करता था। अपना अहं सजाने के लिए, उल्लू सीधा करने के लिए सेवा करता था, इसलिए इसे रीछ बनना पड़ा है।''

''मगर कैसे गुरुदेव'' उसने पूछ लिया था, ''मेरी समझ से तो अब भी परे की ही बात है।''

''एक दिन सत्संग पूर्ण होने के बाद प्रसाद बाँटा जा रहा था। इतने में वहाँ से किसान लोग बैलगाड़ियाँ लेकर निकले। उन्हें गुरुजी के दर्शन हो गए। अब गुरुद्वार का एक-एक कौर प्रसाद लेते जाएँ। वे बैलगाड़ी से उतरे, बैलों को एक ओर खड़ा किया और इससे बोले, ''हमें प्रसाद दे दो।''

इसने उधर देखा ही नहीं। वे भले गरीब किसान थे, लेकिन भक्त थे। उन्होंने दो तीन बार कहा, किंतु प्रसाद देना तो दूर बल्कि इसने कहा, ''क्या है? काले-कलूट रीछ जैसे, बार-बार प्रसाद माँग रहे हो, नहीं है प्रसाद!'' वे बोले, ''अरे भाई ! एक-एक कण ही दे दो। जिनके हृदय में परमात्मा प्रकट हुए हैं, ऐसे गुरुदेव की नजर प्रसाद पर पड़ी है। ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि अमृतवर्षी। थोड़ा सा ही दे दो।''

इसने कहा, ''क्या रीछ की तरह दे-दे कर रहे हो! जाओ नहीं देता!''

उसमें एक बूढ़ा बुजुर्ग भी था। वह बोला, ''हमें गुरु के प्रसाद से वंचित करते हो, हम तो रीछ नहीं हैं, किंतु जब गुरुसाहब तुम्हें रीछ बनाएँगे तब पता चलेगा!'' किसान लोग बददुआ देकर चले गए और

कालांतर में तेरा बाप मर कर रीछ बना। फिर भी इसने गुरुद्वार की सेवा की थी, उसी का फल है कि कई रीछ जंगल में भटकते रहते हैं किंतु यह कलंदर के घर आया और यहाँ सिर झुकाने का इसे अवसर मिला है। लाओ, अब इसका गुनाह माफ करते हैं।'' गुरुदेव ने पानी छाँटा। सेवक ने देखा कि गुरुसाहब की कृपा हुई, रीछ के कर्म कट गए और उस नीच चोले से उसका छुटकारा हुआ। वह वक्त भी आया जब 'गुरु गोविंद सिंह' अकेले भूखे प्यासे 'माछी बाड़ा' में वीरान जगह खण्डा हाथ में पकड़े कमान के सहारे बैठे थे। तलाश में निकले दो शाही ओहदादार सामने आ खड़े हुए। बड़े अदब से उन्होंने गुरु जी ने कहा, ''इस हालत में जब आपके सभी साथी समाप्त हो चुके हैं, आप बिल्कुल अकेले पड़ गए हैं दमड़े भी आपके पास नहीं, आप हार मान लें हम औरंगजेब से आपकी संधील करवा देते हैं।''

गुरु महाराज ने कहा, ''मेरे पास मेरे अन्दर मेरा खुदा, वाहे-गुरु अकाल पुर्ख है। निश्चय ही वह खुदा आप के अन्दर भी है। क्या आप चाहेंगे कि खुदा एक बादशाह के सामने हार मान लें?''

''नहीं ऐसा हम कदाचित् नहीं चाहते।'' लाचार हो उन्होंने कहा, ''हमें कोई सेवा बतलाइए।''

''अब मैं क्या सेवा बताऊँ?'' गुरु जी ने जवाब दिया, ''मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो।''

'गनी खान' और नबी खान' पठान भाइयों के कहने पर गुरु गोविंद सिंह ने नीले वस्त्र धारण कर समय का इंतजार किया। पठान भाइयों ने गुरु गोविंद सिंह को एक ही मुसलमान पीर की सूरत में मालवा तक पहुंचाया। उधर उन्हें छोटे साहबजादों तथा माता की शहादत के बारे में जानकारी मिली। यह सदमा उन्होंने बड़े धैये से बर्दाश्त किया और कहा, ''एक रोज खालसा सरहद की ईंट से ईंट बजा अपने भाइयों का बदला लेगा।''

उन्होंने नीले वस्त्र उतार जला दिए। मालवा के सिंहों ने कुछ घोड़े तथा शस्त्र और अपने आपको गुरु गोविंद सिंह के चरणों में भेंट किया। अपने उदेश्य की पूर्ति के लिए गुरु गोविंद सिंह ने घूम फिर सिंहों की फौज

इकट्ठी करनी शुरू कर दी। "मुक्त सर" की लड़ाई में शहीदी पाने वाले सूरमाओं को मुक्ते का नाम दे इज्जत बक्शी।

गुरु गोविंद सिंह के समय औरंगजेब के विरुद्ध हुई लड़ाई के हाल का यह विवरण उस वक्त की पंचायत के लेखक रामसहाय भाट ने लिखा था, जिसका तर्जुमा उर्दू से हिन्दी में मुंशी रामप्रसाद ने किया था। मूल लेख की नकल हिन्दी में इस प्रका है :

गुरु गोविंद सिंह जी के समय विशाल हरियाणा की सर्वखाप पंचायत ने औरंगजेब के अत्याचारों के विरुद्ध एक संघर्ष छेड़ रखा था। सारे हरियाणा में गुरु समर्थ रामदास नामी साधु संन्यासी औरंगजेब के विरुद्ध क्रान्ति का प्रचार कर रहा था। इसके दल में हजारों प्रचारी साधु शामिल थे। इनके अधीन सैकड़ों प्रचारक मंडलियाँ काम कर रही थीं।

गुरु गोविंद सिंह का भी इनके साथ पूरा संपर्क था। स्वयं गुरु गोविंद सिंह हरियाणा में पहुंचे थे और अनेक स्थानों पर वीरता का उपदेश दिया था। गुरु समर्थ रामदास की ये मण्डलियाँ ऊँटों पर, घोड़ों पर और पैदल गाँव-गाँव में घूमती थीं और पंचायत के अनेक नेता और योद्धा इन मण्डलियों के साथ थे। जिनमें से कुछ नाम ये हैं : मोहनलाल ब्राह्मण, महावीर सिंह जाट, हरदेव चन्द गूजर, महा सिंह राजपूत, सोहन सिंह रोड़, तेलू राम जोगी : ये सब साधु वेश में थे। जब गुरु गोविंद सिंह ने इन्दारपुर के पहाड़ पर एक साल तक लगातार वीर हवन यज्ञ किया और देश के वीरों का आह्वान किया तब भी ये उपरोक्त मल्ल योद्धा वहाँ पर उपस्थित थे। पहाड़ी राजाओं की सेना के साथ जब गुरु गोविंद सिंह के विरुद्ध औरंगजेब ने अपनी सेनाएँ भेजीं, तब गुरु गोविंदसिंह का एक पत्र लेकर एक साधु सर्वखाप पंचायत के स्थान पर आया। तब हरियाणा पंचायत की ओर से पंचायत के 1200 मल्ल सैनिक साधुओं के भेष में गुरु जी की सेना में जा मिले। गुरु गोविंद सिंह के पास उस समय अपने पाँच हजार सैनिक थे। गुरु जी ने अपने ओजस्वी भाषण में कहा कि बलिदान देने वाले वीर आगे आ जाएँ और जिन्हें अपना परिवार प्यारा हो वे अपने घर लौट जाएँ। इस कथन पर दो हजार लोग वापस लौट गए थे। परन्तु हरियाणा की पंचायत के 1200 मल्ल वीरों ने वहीं अपने 6 नेता चुने और यह प्रतिज्ञा

की : 'हम अपने शरीर का अंग-अंग देशहित में कटवा देंगे परन्तु पीठ नहीं दिखलाएँगे।' वे 6 नेता ये थे : सेवाराम जाट, मेधाराम गूजर, कल्लू सिंह रोड़, श्योनखश अहीर, धोकल कोली जाट और सरजू भंगी। उन बारह सौ (1200) वीरों में से छः सौ (600) जाट मल्ल, तीन सौ (300) गूजर मल्ल, दो सौ (200) अहीर सैनी मल, चालीस (40) रोड़, बीस (20) राजपूत, बीस (20) ब्राह्मण, दस (10) कहार और तीस (30) दूसरे मल्ल थे।

दोनों सेनाएँ भागी के मैदान में आ डटीं। औरंगजेब की सेना के पास बहुत तोपें भी थीं, परन्तु गुरु जी की सेना के पास और हरियाणा की पंचायती सेना के पास तलवारें, खाण्डे और भाले ही थे। उन्होंने प्रातःकाल ही शाही सेना पर तेज हमला बोल दिया और दिन के 1 बजे तक बादशाही सेना के आठ हजार जवानों को घास की तरह काट डाला और जीत गुरु गोविंद सिंह के ही हाथों में रही। इस युद्ध में मेरठ क्षेत्र के ग्राम शुकरनपुर (शिकोहपुर) के भागीरथ जाट मल्ल ने और लल (गठवाला) खाप के अभय सिंह जाट ने अद्भुत पराक्रम दिखाया। नवाजे नाम के एक गूजर वीर ने पेट के बल चल कर शत्रु की बारूद में आग लगा दी। गुरु गोविंद सिंह ने हरियाणा की पंचायत के इस सहयोग के लिए साधुवाद भेजा। भागी के युद्ध के बाद अगले युद्ध में भी गुरु गोविंद सिंह ने हरियाणा पंचायत की सेना की सहायता ली थी ।

औरंगजेब की शाही सेनाओं से दूसरा युद्ध नादौन में हुआ था। बादशाही सेना में बयालीस हजार सैनिक थे। शाहजादा बहादुरशाह मुअज्जम तथा मिर्जा बेग उनके सिपहसालार थे। गुरु गोविंद सिंह के पास 9000 सेना अपनी थी और 8000 सैनिक हरियाणा की पंचायत ने भेजे थे। इस प्रकार ये कुल सत्रह हजार थे।

मुसलमानों के बराबर की शक्ति न होने के कारण छापामार अर्थात् गुरिल्ला लड़ाई की गई और गुरु जी ने सेना को पीछे हटने का आदेश दिया। फिर भी शाही सेना में झपट्टे मारते रहे और दिन में पाँच-दस कोश पर दूर जंगल में जा छिपते थे। दौलतराम जाट मल्ल ने शत्रु के रक्षकों को मार कर बारूद में आग लगा दी थी। इस प्रकार झपट्टे मारते हुए अपनी सेना सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दी। दौलतराम जाट को आज भी उत्तर भारत में श्रद्धा के साथ याद किया जाता है।

सन् 1701 ईं में सरहिन्द के नवाब ने गुरु गोविंद सिंह की सेना पर आक्रमण कर दिया। भयंकर लड़ाई हुई। गुरु जी के दो पुत्र और कई बड़े सरदार मारे गए, सर्वखाप पंचायत के भी 6 योद्धा मारे गए जिनमें दो जाट मल्ल, एक गूजर मल्ल, एक रवा, एक सैनी और एक ब्राह्मण मल्ल थे। ये छः योद्धा होने के साथ-साथ प्रचारक भी थे। जब लड़ते-लड़ते थोड़ी सेना बच रही, तो वे भेष बदल कर दूसरी जगह चले गए।

इस चौथी लड़ाई में भी गुरु जी की मुट्ठी भर सेना ने बड़ी वीरता दिखाई। 1704 में 6 दिसंबर को गुरु गोविंद सिंह और वजीर खान की अगुआई में मुगलों की सेना के बीच चमकौर (या चकमौर साहिब) की लड़ाई हुई थी। इस युद्ध में मुगलों की विशाल सेना के कारण सिखों को काफी नुकसान उठाना पड़ा। कई लोगों को अपनी जान गँवानी पड़ी। इसके बावजूद मुगल सेनापति वजीर खान गोविंद सिंह को पकड़ने में नाकाम रहा। गुरु गोविंद सिंह ने इस युद्ध का वर्णन जफरनामा में किया है। उन्होंने बताया है कि जब वे सारसा नदी को पार कर चमकौर पहुँचे तो किस तरह मुगलों ने उन पर हमला किया। इसमें भी हरियाणा की सर्वखाप पंचायत के पन्द्रह मल्लों का पराक्रम प्रशंसनीय रहा। तत्कालीन लेखक ने कुछ घटनाओं में सर्वखाप पंचायत के योद्धाओं की वीरता का वर्णन इस प्रकार किया है : हरियाणा के ब्रह्मसिंह जाट ने डेढ़ पहर तक लगातार अखण्ड तलवार बजाई। अन्त में उसके पेट में शत्रु का एक भाला लगा। परन्तु इसने अपनी आंतें अन्दर करके बाँध लीं और इकसठ शत्रु सैनिकों को मार वीरगति प्राप्त की। दूसरे पंचायती वीर सैनिक गजराज की कनपटी पर तलवार लगी। उसने कनपटी पर कपड़ा बाँधा और सामने के शत्रुओं को मार कर अन्तिम सांस ली। हरियाणा के तीसरे वीर अजयसिंह की पसली में भाला लगा। उसने भाला बाहर निकाला ही नहीं और शत्रु के बावन सैनिकों को मौत के घाट उतार कर वीरगति पाई। गुरुजी ने हरियाणा के पंचायती वीरों की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की। इस संदेश में गुरु गोविंद सिंह ने हरयाणा के पंचायती क्षेत्र के गाँवों के ढाँचे, बस्तियों और खेती-बाड़ी की सराहना की है।

यह बात उस समय की है जब गुरु गोविंद सिंह जी मुगलों से संघर्ष

कर रहे थे। युद्ध में उनके सभी शिष्य अपने-अपने तरीके से सहयोग कर रहे थे। शाम को युद्ध समाप्त हो जाने के बाद गुरु गोविंद सिंह जी के सभी सेनानी उनके साथ बैठकर उनसे उपदेश ग्रहण करते और आगे की रणनीति पर विचार-विमर्श करते थे। हर सेनानी को गुरु जी ने निश्चित जिम्मेदारी सौंप रखी थी, ताकि वे अपना ध्यान युद्ध पर लगा सकें।

एक दिन उन्होंने अपने एक शिष्य धन्ना को युद्ध में सैनिकों को पानी पिलाने का काम सौंपा। वह अपने कंधे पर पानी से भरा मशक लटकाकर सैनिकों को पानी पिलाने के काम में तन-मन से जुट गया।

युद्ध करते हुए जब काफी समय बीत गया, तो एक दिन किसी सैनिक ने गुरु गोविंद सिंह जी से शिकायत की कि धन्ना घायल सिखों के साथ दुश्मन के भी घायल सैनिकों को पानी पिलाता है। जब उसे मना करते हैं, तो वह हमारी बात को स्वीकार नहीं करता और अपने काम में लगा रहता है। गुरु जी ने धन्ना को अपने पास बुलाया और पूछा, ''क्यों धन्ना, क्या यह सच है कि तुम घायल सिख सैनिकों के साथ हमारे सबसे बड़े शत्रु मुगलों के सैनिकों को भी पानी पिलाते हो?''

धन्ना ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, ''हाँ, गुरु महाराज, यह पूरी तरह सच है कि मैं शत्रु के सैनिकों को भी पानी पिलाता हूँ क्योंकि युद्ध भूमि में पहुँचने पर मुझे शत्रु और मित्र में कोई अंतर नहीं दिखाई देता। फिर मैं आपकी दी हुई शिक्षा के अनुसार सब में एक ही परमात्मा को देखता हूँ। इसलिए मुझे जो भी घायल पड़ा दिखाई देता है, वह चाहे सिख हो या मुगल, मैं उन सभी को समान रूप से पानी पिलाता हूँ।''

गुरु जी ने धन्ना का उत्तर सुनकर उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, ''तूने मेरी दी हुई शिक्षा को सही अर्थों में आत्मसात किया है और उसे सार्थक सिद्ध किया है। तू मेरा सच्चा शिष्य है।''

कालांतर में गुरु गोविंद सिंह को एक शिष्य और मिले और वे थे बंदा वैरागी, जिनका जीवन चरित्र हमने इसी पुस्तक में अलग से लिखा है। उन्होंने गुरु जी की आज्ञा से गुरु पुत्रों के बलिदान का बदला लिया और पंजाब में एक के बाद अनेक जीत हासिल की।

अक्टूबर सन् 1706 में गुरु गोविंद सिंह जी दक्षिण में गए, जहाँ पर

आपको औरंगजेब की मृत्यु का पता लगा। औरंगजेब ने मरते समय एक शिकायत पत्र लिखा था। हैरानी की बात है कि जो सब कुछ लुटा चुका था, (गुरुजी) वो फतहनामा लिख रहे थे एवं जिसके पास सब कुछ था वह शिकस्त नामा लिख रहा है। इसका कारण था सच्चाई। गुरुजी ने युद्ध सदैव अत्याचार के विरुद्ध किए थे, न कि अपने निजी लाभ के लिए। औरंगजेब ने सिखों पर इतने अत्याचार किए, जिनके कारण मुगलों को कभी क्षमा नहीं किया जा सकता।

सिखी में पाँच के अंक का गहरा आध्यात्मिक महत्व है। पाँच के इस विचार की बुनियाद पड़ी 1699 में आनंदपुर साहिब में बैसाखी के दिन, जब दशम पातशाह गुरु गोविंद सिंह ने अस्सी हजार लोगों के विशाल समूह में से पाँच प्यारों की पहचान कर उन्हें अमृत-पान करवाया और उनकी झोली में पाँच ईश्वरीय वाणियाँ और पाँच ककार डाल दिए।

बाद में, इस क्रम में पाँच ऐतिहासिक तख्त भी जुड़ गए। सबसे पहले जानते हैं पाँच प्यारों की महत्ता। हालाँकि इनका विवरण हम पहले भी दे चुके हैं। ये पाँच प्यारे चारों दिशाओं से आए थे। भाई धर्मचंद हस्तिनापुर, उत्तर प्रदेश के थे, तो भाई हिम्मत चंद जगन्नाथपुरी, उड़ीसा के। इसी प्रकार भाई मोहकम चंद द्वारका, गुजरात से आए थे, जबकि भाई साहिब चंद बीदर, कर्नाटक से और भाई दया राम लाहौर से ताल्लुक रखते थे। पाँचों की बोली, पहनावा, खानपान और संस्कृति एक दूसरे से पूरी तरह से भिन्न थी। उत्तर में लाहौर, सुदूर दक्षिण में बीदर, पश्चिम में द्वारका और पूर्व में जगन्नाथपुरी की भौगोलिक स्थितियों और संस्कृतियों को देखें, तो यह एक अनूठा संगम था। इस तरह जाति-संप्रदाय के नाम पर बँटे समाज के समन्वय की मिसाल बने पाँच प्यारे। गौरतलब है कि इनमें चार प्यारे तो तथाकथित छोटी जातियों : जाट, भिश्ती, नाई और रंगसाज से ताल्लुक रखते थे। सिर्फ एक ही प्यारे का संबंध खत्री यानी कथित तौर पर ऊँची जाति से था। शमशीर और खांडे की पैनी धार से गुरुदेव ने सामाजिक और धार्मिक दासता की बेड़ियाँ एक झटके में काट दीं। एक ही पात्र से अमृत पिलाकर गुरुदेव ने पाँचों को एक कर दिया। जाति और कुल के आधार पर दुनिया जिन्हें नीच कहकर प्रताड़ित करती

आई थी, उन्हें डंके की चोट पर गुरु ने सरदार बनाने का ऐलान कर दिया। पाँच प्यारों के प्रति दशम पातशाह की श्रद्धा के कई प्रमाण मिलते हैं। चमकोर के युद्ध में सिर्फ पाँच को छोड़कर बाकी सभी सिख सैनिकों के शहीद हो जाने पर गुरुदेव ने खुद रणक्षेत्र में उतरने का फैसला किया। पंथ को दोबारा संगठित करने के व्यापक हित में पाँच प्यारों ने पहले तो उन्हें गढ़ी से चले जाने का अनुरोध किया। लेकिन गुरुदेव को अपने निर्णय पर अडिग देखकर पाँच प्यारों ने आपसी मंत्रणा के बाद उन्हें गढ़ी छोड़ने का हुक्म दिया। इस हुक्म के आगे शीश झुकाते हुए गुरुदेव गढ़ी से बाहर निकले। सिख केवल शक्ति का ही पुजारी न होकर रह जाए, इसके लिए आध्यात्मिक ज्ञान और औदात्य की ओर ले जाने वाली पाँच वाणियाँ जपुजी, जाप, सवैये, सोदर रहिरास और कीरतन सोहिला हर सिख के दैनिक जीवन का अनिवार्य अंग तय कर दी गईं। इनमें से प्रथम तीन वाणियों का पाठ सुबह, सोदर रहिरास का पाठ संध्या के समय और कीर्तन सोहिला का पाठ सोने से पूर्व करने का विधान है।

सिखी में दशम पातशाह द्वारा निर्धारित कंघा, कछ, केश, कड़ा और कृपाण नामक पाँच ककारों का अपना खास महत्व है। केश परमात्मा की देन और गुरु की मोहर हैं। कंघा केशों की प्रतिदिन सफाई के लिए निर्धारित किया गया। कच्छा शरीर के अंगों को ढकने और सात्विक जीवन जीने के लिए है। कड़ा दाएँ हाथ में पहनने का विधान किया गया, जो धारक को सदा अच्छे कार्य करने की प्रेरणा और बुरे कार्यों से बचने की चेतावनी देता है। कृपाण आत्मरक्षा के साथ-साथ दुर्बल तथा पीड़ित की रक्षा के लिए है।

अब बात करें पाँच तख्तों की। सिखी के पाँच तख्तों में से सर्वोच्च है अकाल तख्त, जिसका निर्माण छठे गुरु श्री गुरु हरिगोविंद ने किया। राजसी सत्ता के प्रतीक इस तख्त पर गुरुदेव एक शहंशाह की तरह बैठते और लोगों के विवादों का निपटारा करते। बाकी चार तख्त : केसगढ़, दमदमा साहिब, पटना साहिब और सचखंड श्री हजूर साहिब का संबंध गुरु गोविंद सिंह से है।

गुरु गोविंद सिंह महान विद्वान भी थे, यही कारण है कि वे विद्वानों

का बड़ा ही आदर करते थे। उन्होंने 1675 से 1680 तक 'उस्ताद पीर मोहम्मद' से उर्दू तथा फारसी की शिक्षा प्राप्त की। 1680 से 1690 के दरम्यान संस्कृति में लिए प्राचीन धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन कर उनका अनुवाद करवाया। देश के 52 विद्वानों की सभा गठित की जिनमें 'भाई नन्द लाल' सर्वश्रेष्ठ थे।

गुरु गोविंद सिंह ने आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता का संदेश दिया था। खालसा पंथ में वे सिख थे, जिन्होंने किसी युद्ध कला का कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं लिया था।

सिखों में समाज एवं धर्म के लिए स्वयं को बलिदान करने का जज्बा था। गुरु गोविंद सिंह का एक और उदाहरण उनके व्यक्तित्व को अनूठा साबित करता है : पंच प्यारा बनाकर उन्हें गुरु का दर्जा देकर स्वयं उनके शिष्य बन जाते हैं और कहते हैं :

खालसा मेरो रूप है खास,
खालसा में हो करो निवास।

जहाँ शिवाजी राजशक्ति के शानदार प्रतीक हैं, वहीं गुरु गोविंद सिंह एक संत और सिपाही के रूप में दिखाई देते हैं, क्योंकि गुरु गोविंद सिंह को न तो सत्ता चाहिए और न ही सत्ता सुख। शान्ति एवं समाज कल्याण उनका ध्येय था।

अपने माता-पिता, पुत्रों और हजारों सिखों के प्राणों की आहुति देने के बाद भी वह औरंगजेब को फारसी में लिखे अपने पत्र जफरनामा में लिखते हैं कि औरंगजेब तुझे प्रभु को पहचानना चाहिए तथा प्रजा को दुःखी नहीं करना चाहिए। तूने कुरान की कसम खाकर कहा था कि मैं सुलह रखूँगा, लड़ाई नहीं करूँगा, यह कसम तुम्हारे सिर पर भार है। तू अब उसे पूरा कर। गुरु नानक की दसवीं जोत गुरु गोविंद सिंह अपने जीवन का सारा श्रेय प्रभु को देते हुए कहते हैं :

मैं हूँ परम पुरखको दासा,
देखन आयोजगत तमाशा।

गुरु गोविंद सिंह सारे जीवन संघर्षरत रहे, यह कोई सामान्य बात नहीं है। यह उनके महान कर्मयोगी होने का प्रमाण है। उन्होंने खालसा के

सृजन का मार्ग देश की अस्मिता, भारतीय विरासत और जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए, समाज को नए सिरे से तैयार करने के लिए अपनाया था। वे सभी प्राणियों को आध्यात्मिक स्तर पर परमात्मा का ही रूप मानते थे।

अकाल स्तुति में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जैसे एक अग्नि से करोड़ों प्रकाश ज्वालाएँ उत्पन्न होती हैं, लेकिन सब अग्नि रूप हैं, उसी प्रकार सब जीवों की भी स्थिति है। उन्होंने हमेशा मानव कल्याण की ही चिंता की है और लोगों के उत्थान और जन कल्याण के लिए ही अपने सारे परिवार का बलिदान दे दिया। देश को ऐसे वीर पर गर्व और गौरव है।

अवतार या पैगंबर की अवधारणा युगों-युगों से चली आ रही है। हरेक धर्म-मजहब इस अवधारणा में विश्वास करता है। जब-जब धर्म का नाश होता है, तब-तब सत्य एवं न्याय का विघटन भी होता है तथा अत्याचार, अन्याय, हिंसा और आतंक के कारण मानवता खतरे में होती है। धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि ईश्वर भी नहीं चाहता। यही कारण है कि ऐसे समय भगवान दुष्टों का नाश एवं सत्य, न्याय और धर्म की रक्षा करने के लिए इस भूतल पर अवतरित होते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने यह बात गीता में कही है और यही बात गुरु गोविंदसिंहजी ने इस प्रकार व्यक्त की है :

जब-जब होत अरिस्ट अपारा।
तब-तब देह धरत अवतारा।

दशम गुरु गोविंदसिंहजी स्वयं एक ऐसे ही महापुरुष थे, जो उस युग की आतंकवादी शक्तियों का नाश करने तथा धर्म एवं न्याय की प्रतिष्ठा के लिए भारत में अवतरित हुए। इसी उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था :

''मुझे परमेश्वर ने दुष्टों का नाश करने और धर्म की स्थापना करने के लिए भेजा है।''

गुरु गोविंदसिंहजी क्रांतिकारी युग-पुरुष थे। वे एक स्वतंत्र अध्यात्म चिन्तक, भारतीय परंपराओं के संवर्द्धक, निष्ठावान धर्म-प्रवर्तक, सामाजिक समता और सामाजिक न्याय के संस्थापक, मानवतावादी लोक नायक और एक शूरवीर राष्ट्र नायक थे। वे सत्य, न्याय, सदाचार, निर्भीकता, दृढ़ता, त्याग एवं साहस की प्रतिमूर्ति थे।

गुरु गोविंद सिंह मूलतः धर्मगुरु थे, लेकिन सत्य और न्याय की रक्षा के लिए तथा धर्म की स्थापना के लिए उन्हें शस्त्र धारण करने पड़े। औरंगजेब को लिखे गए अपने जफरनामा में उन्होंने इसे स्पष्ट किया है। उन्होंने लिखा था :

चूंकार अज हमा हीलते दर गुजशत,
हलाले अस्त बुरदन ब समशीर ऐ दस्त।

अर्थात् जब सत्य और न्याय की रक्षा के लिए अन्य सभी साधन विफल हो जाएँ, तो तलवार को धारण करना सर्वथा उचित है। उनकी यह वाणी सिख इतिहास की अमर निधि है, जो आज भी हमें प्रेरणा देती है।

गुरु गोविंदसिंहजी ने भारतीय अध्यात्म परंपरा को नया आयाम दिया और उसमें साहस का समावेश करके अपने धर्म, अपनी जाति, अपने देश, अपनी स्वतंत्रता और अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए खड्ग को धारण करने का आह्वान किया।

गुरु गोविंद सिंह ने धर्म, संस्कृति व राष्ट्र की आन-बान और शान के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। गुरु गोविंद सिंह जैसी वीरता और बलिदान इतिहास में कम ही देखने को मिलता है। आज गुरु गोविंद सिंह सिखों के ही नहीं वरन सारे भारत वर्ष के गुरु के रुप में असरणीय हैं। हिन्दू तो उन्हें अवतार की श्रेणी में रखते हैं, क्योंकि यदि उनका अवतरण न होता तो आज दुनिया में हिन्दु ढुंठने से भी नहीं मिलते। वे तो वास्तव में शास्त्रकार ही थे। सब गुरुओं ने थोड़े बहुत पद, भजन आदि बनाए हैं, पर ये महाराज काव्य के अच्छे ज्ञाता थे। सिखों में शास्त्रज्ञान का अभाव इन्हें बहुत खटका था और इन्होंने बहुत से सिखों को व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि के अध्ययन के लिए काशी भेजा था।

ये हिंदू भावों और आर्य संस्कृति की रक्षा के लिए बराबर युद्ध करते रहे। तिलक और जनेऊ की रक्षा में इनकी तलवार सदा खुली रहती थी। यद्यपि सिख संप्रदाय की निर्गुण उपासना है, पर सगुण स्वरूप के प्रति इन्होंने पूरी आस्था प्रकट की है और देव कथाओं की चर्चा बड़े भक्तिभाव से की है। यह बात प्रसिद्ध है कि ये शक्ति के आराधक थे। इन्होंने हिन्दी में कई अच्छे और साहित्यिक ग्रंथों की रचना की है, जिनमें से कुछ के नाम

ये हैं : सुनीतिप्रकाश, सर्वलोहप्रकाश, प्रेमसुमार्ग, बुद्धि सागर और चंडीचरित्र। चंडीचरित्र की रचना पद्धति बड़ी ही ओजस्विनी है। ये प्रौढ़ साहित्यिक ब्रजभाषा लिखते थे। चंडीचरित्र की दुर्गासप्तशती की कथा बड़ी सुंदर कविता में कही गई है :

निर्जर निरूप हौ, कि सुंदर सरूप हौ,
कि भूपन के भूप हौ, कि दानी महादान हौ?
प्रान के बचौया, दूध-पूत के देवैया,
रोग-सोग के मिटैया, किधौं मानी महामानहौ?
विद्या के विचार हौ, कि अद्वैत अवतार हौ,
कि सुद्ध कृता की मूर्ति हौ कि सिद्ध ता की सान हौ?
जोबन के जाल हौ, कि कालहू के काल हौ,
कि सत्रुन के साल हौ कि मित्रन के प्रान हौ?

विभिन्न गुरुओं, भक्तों एवं सन्तों की वाणियों का गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलन किया। भाई मणि सिंह जी गुरु साहिब के एक दीवान (मंत्री) थे। भाई मणिसिंह ने गुरु गोविंद सिंह की रचनाओं को एक जिल्द (दशमग्रंथ) में प्रस्तुत किया था। गुरु गोविंद सिंह ने अपना अंतिम समय निकट जानकर अपने सभी सिखों को एकत्रित किया और उन्हें मर्यादित तथा शुभ आचरण करने, देश से प्रेम करने और सदा दीन-दुखियों की सहायता करने की सीख दी। इसके बाद यह भी कहा कि अब उनके बाद कोई देहधारी गुरु नहीं होगा और गुरुग्रन्थ साहिब ही आगे गुरु के रूप में उनका मार्गदर्शन करेंगे।

आज मानवता स्वार्थ, संदेह, संघर्ष, हिंसा, आतंक, अन्याय और अत्याचार की जिन चुनौतियों से जूझ रही है, उनमें गुरु गोविंद सिंह का जीवन-दर्शन हमारा मार्गदर्शन कर सकता है।

भारत के गौरवमयी इतिहास में दो पत्र विश्वविख्यात हुए। पहला पत्र छत्रपति शिवाजी द्वारा राजा जयसिंह को लिखा गया तथा दूसरा पत्र गुरु गोविंद सिंह द्वारा अत्याचारी तथा क्रूर मुगल शासक औरंगजेब को लिखा गया, जिसे जफरनामा अर्थात 'विजय पत्र' कहते हैं। निःसंदेह गुरु गोविंद सिंह का यह पत्र आध्यात्मिकता, कूटनीति तथा शौर्य की अद्‌भुत

त्रिवेणी है। गुरु गोविंद सिंह जहाँ विश्व की बलिदानी परम्परा में अद्वितीय थे, वहीं वे स्वयं एक महान लेखक, मौलिक चिंतक तथा कई भाषाओं के ज्ञाता भी थे। उन्होंने स्वयं कई ग्रंथों की रचना की। वे विद्वानों के संरक्षक थे। उनके दरबार में कवियों तथा लेखकों की उपस्थिति रहती थी, इसीलिए उन्हें संत सिपाही भी कहा जाता था। वे भक्ति तथा शक्ति के अद्वितीय प्रतीक थे।

अपने पिता गुरु तेग बहादुर और अपने चारों पुत्रों के बलिदान के पश्चात 1706 ई. में खिदराना की लड़ाई के पश्चात गुरु गोविंद सिंह ने भाई दया सिंह को एक पत्र (जफरनामा) देकर मुगल सम्राट औरंगजेब के पास भेजा। उन दिनों औरंगजेब दक्षिण भारत के अहमदनगर में अपने जीवन की अंतिम सांसें गिन रहा था। भाई दया सिंह दिल्ली, आगरा होते हुए लम्बा मार्ग तय करके अहमदनगर पहुँचे। गुरु गोविंद सिंह के इस पत्र से औरंगजेब को उत्तर भारत, विशेषकर पंजाब की वास्तविक स्थिति का पता चला। वह समझ गया कि पंजाब के मुगल सूबेदार के गलत समाचारों से वह भ्रमित हुआ था, साथ ही उसे गुरु गोविंद सिंह की वीरता तथा प्रतिष्ठा का भी अनुभव हुआ। मुगल शासक औरंगजेब ने जबरदार और मुहम्मद यार मनसबदार को एक शाही फरमान देकर दिल्ली भेजा, जिसमें गुरु गोविंद सिंह को किसी भी प्रकार का कष्ट न देने तथा सम्मानपूर्वक लाने का आदेश था। परंतु गुरु गोविंद सिंह को काफी समय तक यह ज्ञात नहीं हुआ कि भाई दया सिंह अहमदनगर में औरंगजेब को जफरनामा देने में सफल हुए या नहीं। अतः वे स्वयं ही अहमदनगर की ओर चल पड़े। अक्तूबर, 1706 ई. में उन्होंने दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने मारवाड़ के मार्ग से दक्षिण जाने का विचार किया। मार्ग में राजस्थान के अनेक राजाओं ने उनका स्वागत किया। बापौर नामक स्थान पर उनकी भाई दया सिंह से भेंट हुई, जो वापस पंजाब लौट रहे थे। गुरु गोविंद सिंह को सभी समाचारों की जानकारी हुई। यात्रा के बीच में ही 20 फरवरी, 1707 को उन्हें अहमदनगर में औरंगजेब की मौत का समाचार मिला, अतः उनकी औरंगजेब से भेंट न हो सकी। 42 वर्षीय एक आध्यात्मिक तथा वीरत्व के धनी महापुरुष की 90 वर्षीय मतान्ध तथा

बर्बर औरंगजेब से भेंट होती तो क्या होता, कहना कठिन है। एक विद्वान ने लिखा है कि विश्वास, अविश्वास से मिलने चला था, किंतु उसके पहुँचने से पूर्व ही अविश्वास दम तोड़ चुका था।''

जफरनामा का शाब्दिक अर्थ है 'जीत की चिट्ठी'। गुरु गोविंद सिंह ने इसे मूलतः फारसी में लिखा है। इसमें मामूली परिवर्तन भी हुए हैं। अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद किए गए हैं। हिन्दी में इसका अनुवाद बालकृष्ण मुंजतर (कुरुक्षेत्र, 1990) तथा जनजीवन जोत सिंह आनंद (देहरादून, 2006) ने किया। महेन्द्र सिंह ने गुरुमुखी में तथा सुरेन्द्र जीत सिंह ने अंग्रेजी में इसका अनुवाद किया है। कुछ समय पूर्व नवतेज सिंह सरन ने भी इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस पत्र में फारसी में कुल 111 काव्यमय पद (शे'र) हैं। जफरनामा में गुरु गोविंद सिंह ने वीरता तथा शौर्य से पूर्ण अपनी लड़ाइयों तथा क्रियाकलापों का रोमांचकारी वर्णन किया है। इस काव्यमय पत्र में एक-एक लड़ाई का वर्णन किसी में भी नवजीवन का संचार करने के लिए पर्याप्त है।

इसमें खालसा पंथ की स्थापना, आनंदपुर साहिब छोड़ना, फतेहगढ़ की घटना, चालीस सिखों की शहीदी, दो गुरु पुत्रों का दीवार में चुनवाया जाना तथा चमकौर के संघर्ष का वर्णन है। इसमें मराठों तथा राजपूतों द्वारा औरंगजेब की करारी हार का वृत्तांत भी शामिल किया गया है। साथ ही गुरु गोविंद सिंह ने औरंगजेब को यह चेतावनी भी दी है कि उन्होंने पंजाब में उसकी (औरंगजेब की) पराजय की पूरी व्यवस्था कर ली है।

गुरु गोविंद सिंह के जफरनामा में वर्णित मंतव्य को स्पष्ट करने के लिए उनके कुछ प्रमुख पदों का यहां भावार्थ देना उपयुक्त होगा। गुरु गोविंद सिंह ने जफरनामा का प्रारंभ ईश्वर के स्मरण से किया है। उन्होंने अपने बारे में लिखा है कि 'मैंने खुदा की कसम खाई है, जो तलवार, तीर-कमान, बरछी और कटार का खुदा है और युद्धस्थल में तूफान जैसे तेज दौड़ने वाले घोड़ों का खुदा है।'

उन्होंने औरंगजेब को सम्बोधित करते हुए लिखा, 'उसका (ईश्वर का) नाम लेकर, जिसने तुम्हें बादशाहत दी और मुझे धर्म की रक्षा की दौलत दी है, मुझे वह शक्ति दी है कि मैं धर्म की रक्षा करूँ और सच्चाई

का झँडा ऊँचा हो।' गुरु गोविंद सिंह ने इस पत्र में औरंगजेब को धूर्त, फरेबी और मक्कार बताया। साथ ही उसकी इबादत को ढोंग कहा तथा उसे अपने पिता एवं भाइयों का हत्यारा भी बताया।

गुरु गोविंद सिंह ने अपने स्वाभिमान तथा वीरभाव का परिचय देते हुए लिखा, 'मैं ऐसी आग तेरे पाँव के नीचे रखूँगा कि पंजाब में उसे बुझाने तथा तुझे पीने को पानी तक नहीं मिलेगा।'

गुरु गोविंद सिंह ने औरंगजेब को चुनौती देते हुए लिखा, 'मैं इस युद्ध के मैदान में अकेला आऊँगा। तुम दो घुड़सवारों को अपने साथ लेकर आना।' फिर लिखा, 'क्या हुआ (परवाह नहीं) अगर मेरे चार बच्चे (अजीत सिंह, जुझार सिंह, फतेह सिंह, जोरावर सिंह) मारे गए, पर कुँडली मारे डंसने वाला नाग अभी बाकी है।'

गुरु गोविंद सिंह ने औरंगजेब को इतिहास से सीख लेने की सलाह देते हुए लिखा, 'सिकंदर और शेरशाह कहाँ हैं? आज तैमूर कहाँ है, बाबर कहाँ है, हुमायूं कहाँ है, अकबर कहाँ है?'

उन्होंने पुनः औरंगजेब को ललकारते हुए लिखा, 'अगर (तू) कमजोरों पर जुल्म करता है, उन्हें सताता है, तो कसम है कि एक दिन आरे से चिरवा दूँगा।' इसके साथ ही गुरु गोविंद सिंह ने युद्ध तथा शांति के बारे में अपनी नीति को स्पष्ट करते हुए लिखा, 'जब सभी प्रयास किए गए हों, न्याय का मार्ग अवरुद्ध हो, तब तलवार उठाना सही है तथा युद्ध करना उचित है।'

और अंत के पद में ईश्वर के प्रति पूर्ण आस्था व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा, 'शत्रु भले हमसे हजार तरह से शत्रुता करे, पर जिनका विश्वास ईश्वर पर है, उनका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।'

वस्तुतः गुरु गोविंद सिंह का जफरनामा केवल एक पत्र नहीं बल्कि एक वीर का काव्य है, जो भारतीय जनमानस की भावनाओं का द्योतक है। अतीत से वर्तमान तक न जाने कितने ही देशभक्तों ने उनके इस पत्र से प्रेरणा ली है। गुरु गोविंद सिंह के व्यक्तित्व तथा कृतित्व की झलक उनके जफरनामा से प्रकट होती है। उनका यह पत्र संधि नहीं, युद्ध का आह्वान है। साथ ही शांति, धर्मरक्षा, आस्था तथा आत्मविश्वास का

परिचायक है। उनका यह महान पत्र पीड़ित, हताश, निराश तथा चेतनाशून्य समाज में नवजीवन तथा गौरवानुभूति का संचार करने वाला है। यह पत्र अत्याचारी औरंगजेब के कुकृत्यों पर नैतिक तथा आध्यात्मिक विजय का परिचायक है।

यहां हम एक प्रसंग का और वर्णन करना चाहते हैं कि एक बार गुरु गोविंद सिंह और औरंगजेब लड़ते हुए आमने सामने आ गए पर औरंगजेब के हाथ से हथियार गिर गया।

और हिंदू धर्म युद्ध की नीति में निहत्थे पर वार नहीं करते तो गुरु गोविंद सिंह ने उसको अपने भाले से नहीं मारा। हालाँकि गुरु गोविंद सिंह जी के बेटों की हत्या करवाने वाला औरंगजेब उनके सामने था, पर धर्म युद्ध का पालन करने के लिए उन्होंने उसे मारा नहीं। कहते हैं कि इससे औरंगजेब को बहुत ग्लानि हुई और गुरु गोविंद सिंह को अकेले दिल्ली बुलाया और इससे पहले गुरु गोविंद सिंह दिल्ली पहुँचते औरंगजेब मर चुका था।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली में गद्दी के लिए जद्दोजहद शुरू हुई। तब गुरु गोविंद सिंह ने औरंगजेब के दूसरे पुत्र, बहादुर शाह का साथ दिया। गद्दी पर बैठने के बाद उसने गुरु गोविंद सिंह को ससम्मान दिल्ली बुलवाया। बहादुर शाह से गुरु गोविंद सिंह की दोस्ती की बात सुनकर वजीर खां बहुत चिंतित हुआ। उसे डर था कि गुरु गोविंद सिंह बादशाह से उसकी शिकायत न कर दें। इसलिए उसने गुल खाँ नामक एक पठान को लालच देकर गुरु के पास भेजा, ताकि वह धोखे से गुरु गोविंद सिंह को मार डाले। एक दिन जब गुरु गोविंद सिंह अपने शिविर में दोपहर के समय विश्राम कर रहे थे, तब गुल खां ने अचानक उन पर छुरे से वार करना चाहा। गुरुजी ने उसी समय अपनी तलवार से उसे मार डाला। इस संघर्ष में गुरुजी को भी कई चोटें लगीं। लेकिन चिकत्सकों की मदद से धीरे-धीरे घाव भरने लगे और वह सिख संगत को फिर उपदेश देने लगे। एक दिन जब गुरुजी धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहे थे, तब कमान खींचते समय उनके घाव फिर हरे हो गए। वे घाव दोबारा भरे नहीं जा सके।

एक दिन उन्होंने सिख संगत को बुलाकर कहा, ‘‘अब मेरा अंतिम

समय आ गया है। मेरे मरने के साथ ही सिख सम्प्रदाय में गुरु परंपरा समाप्त हो जाएगी। भविष्य में सम्पूर्ण खालसा ही गुरु होगा। आप लोग 'ग्रन्थ साहिब' को ही अपना गुरु मानें।'' और फिर उसके बाद 7 अक्टूबर, 1708 को गुरु गोविंद सिंह का देहांत हो गया। गुरु गोविंदजी के बारे में लाला दौलतराय, जो कि कट्टर आर्य समाजी थे, लिखते हैं, ''मैं चाहता तो स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, परमहंस आदि के बारे में काफी कुछ लिख सकता था, परंतु मैं उनके बारे में नहीं लिख सकता जो कि पूर्ण पुरुष नहीं हैं। मुझे पूर्ण पुरुष के सभी गुण गुरु गोविंदसिंह में मिलते हैं।'' अतः लाला दौलतराय ने गुरु गोविंदसिंहजी के बारे में पूर्ण पुरुष नामक एक अच्छी पुस्तक लिखी है। इसी प्रकार मुहम्मद अब्दुल लतीफ भी लिखता है कि जब मैं गुरु गोविंदसिंहजी के व्यक्तित्व के बारे में सोचता हूँ तो मुझे समझ में नहीं आता कि उनके किस पहलू का वर्णन करूँ। वे कभी मुझे महाधिराज नजर आते हैं, कभी महादानी, कभी फकीर नजर आते हैं, कभी वे गुरु नजर आते हैं।

सिखों के दसवें गुरु 'गुरु गोविद सिंह जी' की पवित्र कलगी 160 सालों बाद लंदन से भारत लाई गई है। गुरु गोविंद सिंह जी जिन्हें 'कलगीधर पातशाह' भी कहा जाता है की कलगी 1850 में लार्ड डलहौजी धोखे से अपने साथ ये कहकर ले गया था कि इस कलगी को ब्रिटेन के सरकारी खजाने में महफूज रखा जाएगा, लेकिन ऐसा हुआ नहीं।

इस पवित्र कलगी को हासिल करने के लिए भाई कंवलजीत सिंह बोपारा और पंजाब पुलिस के डीआईजी हरप्रीत सिंह सिद्धू ने पहले श्री अकाल तख्त साहिब से इसके लिए मंजूरी ली और फिर जरूरी दस्तावेज हासिल किए और अपने अथक प्रयासों के बाद कलगी हासिल करने में कामयाब हुए। गुरु गोविंद सिंह जी की कलगी जैसे ही अमृतसर हवाईअड्डे पर पहुँची, पूरा वातावरण आस्था और श्रद्धा से भावाविभोर हो उठा। कलगी को लेने के लिए अकाल तख्त के जत्थेदार, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी (एसजीपीसी) के अधिकारी, प्रशासनिक अधिकारी और बड़ी संख्या में श्रद्धालु मौजूद थे।

दरअसल, गुरु गोविंद जी की ये कलगी चमकौर साहिब के युद्ध के

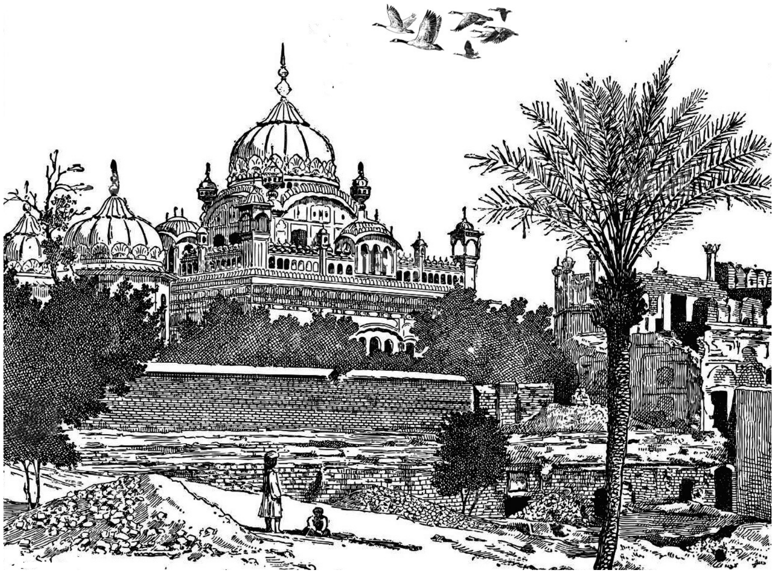

दौरान मुगलों के हाथ लग गई थी। महाराजा रणजीत सिंह ने जब लाहौर के किले पर चढ़ाई की, तो वहाँ से उन्हें गुरु साहिब की पवित्र कलगी मिली। महाराजा रणजीत सिंह के देहांत के बाद यह पवित्र कलगी 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के लार्ड डल्हौजी के हाथ लग गई और उसने इसे इंग्लैंड भेज दिया।

गुरु गोविंद सिंह जी की पवित्र कलगी श्री अकाल तख़्त साहिब पर सुशोभित कर दी गई है, लेकिन इसके स्थायी जगह के लिए बाद में फैसला लिया जाएगा।

अजीत सिंह

चमकौर के किले में पहुँचने के कुछ ही समय बाद मुखबिरों ने यह सूचना मुगलों को दे दी कि गुरु गोविंद सिंह सिर्फ 40 सिखों के साथ यहाँ रुके हुए हैं, तो मुगलों ने किले पर हमला कर दिया। इस युद्ध में गुरु गोविंद सिंह जी के शिष्यों ने मुगलों का मुकाबला बहुत वीरता से किया।

इस जंग में कई सिंह शहीद हो गए। केवल चालीस सिंह व गुरु जी ने चकमौर की गढ़ी में पहुँच कर मोर्चे संभाल लिए। 22 दिसंबर 1704 को हुए इस भारी युद्ध में सिख केवल 40 थे, लेकिन शाही सेना की तादाद लाखों में थी। सारा दिन युद्ध हुआ।

सिखों को एक-एक करके शहीद होते देख बड़े साहिबजादे बाबा अजीत सिंह से रहा न गया, वो गुरुजी के साथ अटारी में बैठे दुश्मनों पर तीरों की बारिश कर रहे थे, पर अब उन्होंने चमकौर के किले से बाहर जाकर दुश्मनों से दो हाथ करने की इच्छा व्यक्त की। दुनिया के इतिहास में यह पहली और बेमिसाल घटना है कि पिता ने अपने बेटे को अपने हाथ से शस्त्र सजाकर युद्ध भूमि में शहीद होने के लिए भेजा हो। गुरुजी ने पाँच सिखों को भी अजीत सिंह के साथ भेजा।

रणभूमि में जाते ही साहिबजादे अजीत सिंह ने तीर चलाकर दुश्मनों को खदेड़ना शुरू कर दिया, जालिम घबराकर पीछे हटने लगे, पर जब साहिबजादा जी के तीर खत्म हो गए तो दुश्मन फिर लौटे और उन्हें चारों ओर से घेर लिया। साहिबजादा अजीत सिंह ने म्यान से तलवार निकाल ली और जोश व बहादुरी से जालिमों पर टूट पड़े। उन्होंने लाशों के ढेर लगा दिए, पर एक दुश्मनों के दल ने उन्हें घेर लिया और उन पर वार करना शुरू कर दिए। और लड़ते-लड़ते साहिबजादा जी के कृपाण के टुकड़े हो गए। तब उन्होंने अपनी म्यान से ही दुश्मनों का सामना किया। इस

तरह जोश और बहादुरी के साथ लड़ते हुए वे खेत रहे तो पंद्रह वर्ष के बाबा जुझार सिंह ने अपने बड़े भाई को सूरमे की तरह शहीद होते देख कर पिता से विनती की कि उन्हें भी भाई की तरह युद्धभूमि में जाकर दुश्मनों से जूझने की आज्ञा दी जाए।

साहिब श्री गुरु गोविंद सिंह जी ने प्रसन्नता के साथ बेटे जुझार सिंह को आज्ञा दी और बड़े साहिबजादे की तरह अपने हाथों से हथियार सजाकर युद्धभूमि की ओर रवाना किया।

साहिबजादा जुझार सिंह शेर की तरह गरजते हुए युद्धभूमि में जा पहुँचे और पूरे जोश के साथ दुश्मनों से दो-दो हाथ करने लगे। उनकी बहादुरी, जोश और फूर्ति को देखकर दुश्मनों के बड़े-बड़े योद्धा भी दंग रह गए और घबराकर इधर-उधर भागने लगे। उन्होंने योजना बनाई कि इस योद्धा को किसी भी तरह जीवित पकड़ा जाए। जो भी साहिबजादे को पकड़ने के लिए आगे बढ़ा उनकी तलवार से कटकर टुकड़े-टुकड़े हो गए। अंत में दुश्मनों की एक ताकतवर टुकड़ी ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया और अकेला पाकर सारे एकसाथ उन पर टूट पड़े। साहिबजादे ने दुगुने बल से दुश्मनों का सफाया किया। और आखिर में जख्मी होकर जमीन पर गिर पड़े। इस तरह गुरु जी के बड़े साहिबजादों ने वीरता और साहस से लड़ते हुए सिर्फ सत्रह और पंद्रह वर्ष की आयु में शहीदी प्राप्त कर दुनिया के इतिहास में शूरवीरता और बहादुरी की अद्वितीय मिसाल कायम की।

फतेह सिंह

गुरु गोविंद सिंह के दो बड़े बेटों का बलिदान हो चुका था। जिस दिन उनका बलिदान हुआ, उसी रात के समय पाँच सिखों ने गुरु गोबिंद सिंह जी से विनती की कि आप गढ़ी से चले जाएँ, क्योंकि आपकी सिखों व हिंदू जनता को अभी बहुत जरूरत है। गुरु जी पहले तो मान नहीं रहे थे, लेकिन पाँच प्यारों के दबाव में गुरु जी रात के समय ताड़ी मार कर गढ़ी से चले गए।

छोटे साहिबजादे व माता गुजरी सरसा नदी की लड़ाई के समय गुरु जी से बिछड़ गए। माता गुजरी जी और गुरुजी के दोनों सुपुत्रों को अपने यहाँ बीस वर्ष से रसोईयां का कार्य करने वाले ब्राह्मण हिन्दू गंगू के घर रहना पड़ा।

माता गुजरी जी के पास गहनें और सोने के सिक्के थे। गंगू का मन लालच से भर आया। उसने वह सबकुछ चुराने और उसे पाने की सोची। फिर उसके मन में मुगलों द्वारा पकड़वाकर शाही इनाम भी प्राप्त करना था। गंगू मोरिण्डा नगर गया और उसने शहर कोतवाल को सब कह सुनाया। सरहिन्द के नवाब वजीर खान प्रसन्नता से उछल पड़ा था। इस प्रकार गुरु जी का रसोईया गंगू ब्राह्मण लालच में आ गया और उसने साहिबजादे व माताजी को सूबा सरहिंद के हाथों पकड़वा दिया। सूबे ने उन्हें मुसलमान बनाने के लिए कई यत्न किए पर साहिबजादे नहीं माने। जेल में माता गुजरी

जी ने अपने दोनों पुत्रों को ज्ञान की बातें बताई। आने वाली विपदा के सामने धर्म की लड़ाई कैसे लड़नी है, इसकी शिक्षा दीं।

उन्होंने कहा, ''बलिदान होना तो वीरों का भूषण होता है। देश और धर्म की रक्षा के लिए हरेक भारतीय को बलिदान देने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए।''

''यह बात हमें क्यों बताई जा रही है।'' गुरुपुत्रों ने एक साथ कहा था, ''माई हमें पता है कि हमें तो बलिदान देना ही है। आप बस आशीर्वाद दें कि हम अगले जन्म में भी भारत देश में जन्म लेकर इसकी सेवा करें।''

''मुझे यही उम्मीद थी तुम दोनों से।'' कह तो दिया, लेकिन माई की आँखों में रातभर नींद ही भला कहाँ आई थी। उसके तो हृदय पर तब बिजली सी कौंध गई थी, जब सुबह नवाब ने दोनों साहिबजादों को पेश होने का आदेश दिया। काजी, मो-अल्लम की मौजूदगी थी। शरीया कानून का पालन होना था। उन्होंने अन्दर आने के लिए एक छोटा सा द्वार बनाया था, ताकि आने वाला झुककर अन्दर आए। परन्तु दोनों साहिबजादों ने पहले पांव दार से पार किए। फिर शीश उठाकर दरबार में प्रवेश करते हुए उद्घोष करने लगे, ''वाहिगुरुजी का खालसा वाहिगुरुजी की फतेह।''

नवाब वजीर खान ने कहा, ''ओ, छोटे बच्चों! तुम्हारे बड़े भाई पिता के साथ शहीद हो गए हैं। सौभाग्य से तुम मेरे दरबार में जिन्दा आ पाए हो। जल्दी करो और इस्लाम कबूल कर लो। मुस्लिम बच्चों के रूप में तुम्हारा जीवन राजकुमारों सा होगा। सारे जीवन ऐश करोगे।''

वीर गुरु पुत्रों ने स्पष्ट इन्कार ही नहीं किया, बल्कि नवाब की खिल्ली भी उड़ाई। उन्होंने कहा, ''सिखी हमें जान से भी प्यारी है। यह माया-सी दुनिया हमें धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर नहीं कर सकती। हम गुरु गोविंद सिंह जैसे शेर के पुत्र हैं। जो तेरा भ्रम जल्दी ही दूर कर देंगे। हमारे दादा श्री गुरु तेग बहादुर जी ने हिन्दू पीड़ितों की धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए बलिदान दिया था। तब तुम क्या धर्म परिवर्तन करवा पाए थे? जब गुरु अर्जुन देव जी ने मुगल जहाँगीर के विरुद्ध संघर्ष में बलिदान दिया, तब वह क्या धर्म परिवर्तन करवा पाया था। हमने इस लासानी शहादत

के इतिहास को जारी रखना है।''

''बहुत बोलते हो अभी अक्ल ठिकाने आ जा जाएगी।''

6 और 8 वर्ष के बालकों के ऐसे उत्तर सुनकर नवाब दंग रह गया। नवाब वजीर खान के मंत्री अली हुसैन ने कहा, ''नवाब साहिब, ये सपोले हैं, ये सांप नहीं बनने चाहिए। साँप बन गए तो इस राज को डसेंगे। इनका जिन्दा रहना ठीक नहीं।''

''हाँ सपोलों का सिर कुचल देना ही अच्छा रहेगा।'' नवाब साहिब भी कह उठे थे।

लेकिन फिर भी तीन दिनों की जद्दोजहद के बाद काजी ने शरीया कानून की रोशनी में बाबा जोरावर सिंह जी और बाबा फतेह सिंह जी को दीवार में चुनवा देने का हुक्म जारी किया।

इन बच्चों को जब दीवार में चिनवाया जा रहा था, तो बड़े भाई की आँखों में अचानक ही आंसू आ गए। छोटे भाई फतेह सिंह ने पूछा, ''भाई, तुम्हारी आँखों में आँसू शोभा नहीं देते, क्या तुम बलिदान देने से डर रहे हो।''

''नहीं रे पगले'' बड़े भाई ने छोटे से कहा था, ''मेरी आँखों में तो

आँसू इसलिए आ रहे हैं कि मैं इस दुनिया में पहले आया था, लेकिन इस देश के लिए मरने के कारण इस दुनिया से तुम पहले जा रहे हो, जबकि तुम छोटे हो। यह सौभाग्य तुम्हें मिल रहा है।''

''हाँ भाई यह पूर्व निर्धारित ही था।''

''हाँ भाई यह तो पूर्व निर्धारित ही था।''

''वह कैसे?'' बड़े भाई ने पूछ ही लिया था।

''वह इसलिए कि'' छोटे भाई फतेह सिंह ने कहना शुरू किया, ''क्योंकि मेरे जन्म पर अधिक मोती दान किए गए थे। मैं सबका लाड़ला था।''

''लेकिन लाड़ला होने या मोती दान करने से बलिदान का क्या संबंध है मेरे भाई!''

''है भाई संबंध है।'' फतेह सिंह ने आगे कहा, ''लाड़ला वही होता है, जो सबकी चिंता करे और मोती दान इसलिए ही किए जाते हैं कि बालक आगे चलकर राष्ट्र हित के लिए समर्पित रहे, क्योंकि मेरे पैदा होने पर अधिक मोती दान हुए थे, इसलिए राष्ट्र पर बलिदान होने का सौभाग्य मुझे पहले मिल रहा है।''

''सही कहते हो भाई, तुम चलो हम भी तुम्हारे पीछे-पीछे ही स्वर्ग की दहलीज पर दस्तक देंगे।''

''यही तो अंतर है आपमें और में मेरे में।'' फतेह सिंह ने कहा, ''आप देश पर बलिदान होकर स्वर्ग की कामना करते हैं, लेकिन मैं बलिदान होकर दोबारा जन्म लेकर पुनः ही नहीं वरन् बारम्बार राष्ट्र की सेवा के लिए तैयार रहने की कामना करता हूँ।'' फतेह सिंह इतना कहते हुए गर्व से मुस्करा दिया था। छोटे भाई के सिर से दीवार पहले चिन गई थी और फिर बड़े भाई को भी वह सौभाग्य कुछ ही देर में मिल ही गया था। देश के लिए मर-मिटने का सौभाग्य किसी-किसी को ही मिलता है।

इस प्रकार गुरु गोविंद सिंह जी के दोनों छोटे पुत्र साहिबजादा जोरावर सिंह और फतेह सिंह सरहिन्द की दीवारों में चुनावा कर शहीद कर दिए गए। माता गुजरी जी को सरहिन्द के किले के बुर्ज से गिराकर शहीद किया गया।

बन्दा बहादुर

बन्दा सिंह बहादुर या बन्दा बैरागी पहले ऐसे सिख जरनल हुए, जिन्होंने मुगलों के अजेय होने के भ्रम को तोड़ा और छोटे साहबजादों की शहादत का बदला लिया और गुरु गोविन्द सिंह द्वारा संकल्पित प्रभुसत्ता सम्पन्न लोक राज्य की राजधानी लोहगढ़ की नीव रखी। यही नहीं, उन्होंने गुरु गोविन्द सिंह के नाम से सिक्का और मोहर जारी करके, निम्न वर्ग के लोगों की उच्च पद दिलाया और हल वाहक किसान-मजदूरों को जमीन का मालिक बनाया।

बाबा बन्दा सिंह बहादुर का जन्म कश्मीर स्थित पुंछ जिले के राजौरी क्षेत्र में 1670 ई. तदनुसार विक्रम संवत् 1727, कार्तिक शुक्ल 13 को हुआ था। वह राजपूतों के भारद्वाज गोत्र से सम्बद्ध था और उसका वास्तविक नाम लक्ष्मणदेव था। 15 वर्ष की उम्र में वह जानकीप्रसाद नाम के एक बैरागी का शिष्य हो गया और उसका नाम माधोदास पड़ा। तदन्तर उसने एक अन्य बाबा रामदास बैरागी का शिष्यत्व ग्रहण किया और कुछ समय तक पंचवटी (नासिक) में रहा। वहाँ एक औघड़नाथ से योग की शिक्षा प्राप्त कर वह पूर्व की ओर दक्षिण के नान्देड क्षेत्र को चला गया जहाँ गोदावरी के तट पर उसने एक आश्रम की स्थापना की।

मातृभूमि की बलिवेदी पर सर्वस्व भेंट कर अभी गुरु गोविंद सिंह उज्जैन में आए ही थे कि अचानक उनकी भेंट एक तीर्थयात्री से हो गई। वह यात्री कोई साधारण यात्री नहीं था, वरन दाऊद पंथी गुरु था। उसकी सेवा में बीसियों शिष्य थे। नाम था उसका गुरु नारायण दास। इस समय वह रामेश्वर की यात्रा करके वापस लौटा था। वह अपने शिष्यों को वहाँ के किसी साधु के बारे में बता रहा था, तो गुरु गोविंद सिंह भी उससे कुछ पूछ बैठे कि उसने वहाँ क्या चमत्कार देखे? इस पर गुरु नारायण दास

बोला, ''मैंने बड़ी लम्बी तीर्थयात्रा की है। वहाँ पर शेष तो सब कुछ जड़ ही था, जिसे मिट्टी और पत्थर से अधिक संज्ञा नहीं दी जा सकती, लेकिन नांदेड में अवश्य एक चमत्कारी व्यक्ति के दर्शन किए।''

''अच्छा।'' गुरु गोविंद सिंह ने उत्सुकतावश प्रश्न किया, ''कौन था वह व्यक्ति, क्या चमत्कार है उसके अंदर?''

''क्या नहीं है उसमें।'' गुरु नारायण दास बोला, ''वह एक मठ का महन्त है, शरीर उसका कुन्दन की भांति चमकता है। जिन्न, भूत उसके वश में हैं। जिसके लिए जो कुछ उसकी जबान से निकल जाता है, पत्थर की रेखा बन जाता है। बस सारी यात्रा में मैंने यही पुरुष देखा, जिसके दर्शन से मैं धन्य हो गया।''

''क्यों बाबा?'' गुरु गोविंद सिंह ने नारायण दास से पूछा, ''उस चमत्कारी साधु का नाम क्या है, तथा उसके दर्शन कैसे हो सकते हैं?''

''नाम है उसका वैरागी माधो दास!'' गुरु नारायण बोला, ''नांदेड' में उसकी इतनी ख्याति है कि जिससे पता पूछोगे, वह स्वयं मठ तक पहुँचा देगा। वह ही व्यक्ति ऐसा है, जो आपके लक्ष्य को परवान चढ़ा सकता है।''

गुरु गोविंद सिंह ने निश्चय किया कि वे वैरागी माधो दास से अवश्य भेंट करेंगे तथा उसे राष्ट्रधर्म व कर्म योग की ओर मोड़ने का यत्न करेंगे। न जाने किस अज्ञात शक्ति की प्रेरणा से वे उस ओर ऐसे खिंचे चले गए जैसे लोहा चुम्बक की ओर खिंच जाता है। प्रकृति का नियम है, दिल से दिल की राहत होती है। वही बात यहाँ भी चरितार्थ हुई है।

पंजाब में गुरु गोविंद सिंह जो बलिदान देकर आए थे। उसकी पूरी कहानी वैरागी के कानों में पड़ चुकी थी। जिस दिन वैरागी ने गुरु गोविंद सिंह के उन वीर पुत्रों की कहानी सुनी जो दीवारों में चिन दिए गए थे, उस दिन उसका मन किसी काम में नहीं लगा। पूजा-पाठ भी उसने किया, अवश्य, किन्तु उसकी भुजा रह-रह कर फड़क रही थी। उसके मन के किसी कोने में क्षात्र धर्म जाग उठा था। सहसा उसे उसके एक शिष्य ने आकर सूचना दी कि गुरु गोविंद सिंह पंजाब से आए हुए हैं और वैरागी से मिलना चाहते हैं। गुरु गोविंद सिंह का नाम सुनते ही वैरागी का शरीर

रोमांचित हो उठा। वह स्वयं उस वीर के दर्शनों के लिए बेचैन हो उठा जो इतनी आहुतियाँ देकर आया था। वैरागी जल्दी से पैरों में खड़ाऊएँ डाल कर उनके दर्शनों के लिए इस प्रकार दौड़ पड़ा जैसे कोई प्यासा व्यक्ति तालाब की ओर दौड़ पड़ता है। कई बार उसके मस्तिष्क में गुरु गोविंद सिंह के दर्शनों की प्यास लगी थी। वैरागी को स्वयं ही अपने पास दौड़कर आते देख गुरु गोविंद सिंह के हृदय में आशा की रेखा उभर आई। दो वीर आपस में मिले, तो ऐसा लगा जैसे न जाने किस युग के बिछड़े हुए साथी आपस में मिले थे। दोनों के नेत्र आपस में टकराए तो ऐसा लगा जैसे हवा रुक गई हो, आपस में चिंगारियाँ सी फूट पड़ी हों। दोनों के वक्ष आपस में मिले तो ऐसा लगा जैसे दो हिमालय मिल कर एक हो गए हों।

गुरु गोविंद सिंह ने महसूस किया कि वैरागी की धमनियों में गर्म लोहू का सागर विद्यमान था। उसके मुख मण्डल पर दृढ़ निश्चय की आभा थी, मस्तक पर तेज की रेखाएँ थीं तथा हड्डियों में बज्र सा बल था। वैरागी का जैसा चित्र उन्होंने मस्तिष्क में बनाया था, वैरागी ठीक उसी का प्रतिरूप निकला।

गुरु गोविंद सिंह को इस बात का विश्वास हो गया था कि उन्हें जिस महापुरुष की खोज थी, वह उन्हें मिल गया था। जिस वीर सेनानी की उन्हें तलाश थी वह इस समय अप्रत्याशित रूप में उनके सम्मुख खड़ा था। साथ ही साथ उन्होंने यह भी महसूस किया कि वैरागी उस समय तक वैराग्य की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था।

''वैरागी तुम महान हो।'' गुरु गोविंद सिंह बोले, ''तुमने कठिन तपस्या से वैराग्य की चरम सीमा प्राप्त कर ली है। तुम अनुपम ब्रह्मचारी हो।''

''गुरुवर! यह तो आप जैसे संतों का ही प्रताप है।''

''नहीं यह आपकी तपस्या का फल है।'' गुरु गोविंद सिंह बोले, ''तुम्हारे भीतर एक और प्रतिभा भी मैं देख रहा हूँ, उसके लिए भी तुम अभिनन्दनीय हो।''

''अर्थात्!''

''मैं देख रहा हूँ, तुम्हारे रक्त में वीरत्व लहलहा रहा है। तुम्हारे

मस्तक पर क्षात्र का तेज दमक रहा है। तुम्हारे वक्ष में हिमालय की दृढ़ता उभरी हुई है। और यह सब व्यर्थ है।''

''व्यर्थ है...मतलब?''

''जब तक तुम्हारा यह शरीर अपने देश, जाति और धर्म की रक्षा के लिए बलिदान नहीं होगा, तब तक तुम्हारी तपस्या व्यर्थ ही है।''

''आज्ञा करें गुरुदेव।''

''औरंगजेब ने चारों तरफ हाहाकार मचा रखा है। हिन्दुओं का उसने जीना दूभर कर दिया है। ऐसे नीच को इस संसार में जीने का अधिकार नहीं और उसे दंड तुम्हारे जैसे वीर ही दे सकते हैं।''

''गुरुदेव, लेकिन मैं संसार को छोड़ चुका हूं, मेरा मार्ग संन्यास का है।'' वैरागी बोला, ''सांसारिक सुख-दुःख से प्रभावित होना पुनः मोह-जाल में फँसने के बराबर है, जिसे लाँघ कर मैं इस मार्ग पर अग्रसर हुआ हूँ।''

''तुम सच्चे वैरागी हो, मैं मानता हूँ।'' गुरु गोविंद सिंह बोले, ''लेकिन यदि हर समर्थ और वीर व्यक्ति यही ठान ले तो देश की रक्षा कौन करेगा?''

''आप ठीक कहते हैं।'' वैरागी बोला, ''लेकिन क्या मेरे लिए यह उपयुक्त होगा कि मैं इस मार्ग को छोड़ कर पुनः सांसारिक मोह में बँध जाऊँ?''

''मोह में बँधने की बात मैं नहीं कहता। मैं तो केवल इतना कहता हूँ कि तपस्या आत्मबल का साधन होती है, उसका सही उपयोग कर्म मार्ग में है निवृत्ति में नहीं।'' गुरु गोविंद सिंह बोले ''अत्याचारियों से देश-धर्म की रक्षा करने के लिए शस्त्र उठाना ही कर्मयोग है।''

गुरु गोविंद सिंह की तलवार उस समय लकड़ी की चौकी पर रखी हुई थी। वैरागी ने झपट कर वह तलवार उठा ली। उसके शिष्य यह देख चकित रह गए, ''मैं इस तलवार की सौगन्ध लेता हूँ गुरुवर।'' वैरागी बोला, ''जब तक मैं शत्रुओं से प्रतिशोध नहीं ले लूँगा, जब तक उनको माँ के वक्ष से खदेड़ नहीं दूँगा, तब तक चैन से नहीं बैठूँगा। मैं अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक धर्म रक्षा में बहा दूँगा। मुझे आदेश दे दीजिए तथा मेरा मार्गदर्शन कीजिए।''

"विजयी भव वैरागी।"

"वैरागी नहीं, आपका बन्दा, यानी बन्दा वैरागी।"

"वैरागी जी।" पास बैठा एक साधु उससे बोला, "आप संन्यास ले चुके हैं। तपस्या के द्वारा आपने वैरागी पद प्राप्त कर लिया है। शास्त्रों में इससे बड़ा और कोई भी पद नहीं है। ऐसी स्थिति में आपको इससे मुख नहीं मोड़ना चाहिए।"

"आपका आरोप सही नहीं बाबा।" वैरागी उस साधु से बोला, "मैं वैराग्य से मुख नहीं मोड़ रहा, वरन उसका सही उपयोग करने जा रहा हूं।'"

"वैरागी जी।" वह साधु पुनः बोला, "क्या इस निर्णय से आप वैरागी जैसे उच्च पद से निम्न स्तर पर गिर नहीं जाएँगे?"

"नहीं बिल्कुल नहीं।" वैरागी ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, "मुझे पद का कोई लोभ-लालच नहीं है। मैंने वैराग्य पश्चाताप करने के लिए लिया था, वह मैं कर चुका हूँ। तपस्या के द्वारा मैंने आत्मबल बढ़ाया है, कोई पद प्राप्त नहीं किया और अब उस आत्मबल के बल पर मैं शक्ति की उपासना करूँगा, धर्म की रक्षा करूँगा।"

इस समय वैरागी के पास उसके सभी शिष्य एकत्र हो गए थे। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से भक्त वहाँ एकत्र हो गए थे। मठ में साधु-सन्त आकर आश्रय लेते थे। इस समय भी बहुत से तीर्थ यात्रा करते हुए वहाँ आए हुए थे।

उनको भी जब यह पता लगा कि मठ का ख्याति प्राप्त संत वैरागी माधोदास पुनः क्षात्र धर्म में प्रवृत्त होने जा रहा है, तो वे सब भी उसके पास आकर बैठ गए। सभी के लिए यह बात महान आश्चर्य की थी। किसी ने भी आज तक किसी पहुँचे हुए किसी ख्याति प्राप्त वैरागी को इस प्रकार देश धर्म की रक्षा के लिए वैराग्य छोड़ कर तथा घोर तपस्या द्वारा अर्जित ख्याति एवं आत्मबल की प्रतिष्ठा को लांघ कर इस प्रकार निर्णय करते नहीं देखा था।

बंदा वैरागी ने प्रस्थान की सभी तैयारियाँ कर लीं। वैरागी के लिए समस्त वीर परिधान गुरु गोविंद सिंह की ओर से आ गए। वही उसने

गुरु-प्रसाद के रूप में धारण किए। अब उस की कटि में तलवार और कन्धे पर धनुष बाण सुसज्जित हो गया। वीर वेष में वह एक प्रबल तथा अद्वितीय सेनानी प्रतीत हो रहा था। गुरु गोविंद सिंह ने उसे विजयी होने का आशीर्वाद दिया। गुरु के सैकड़ों सिख वीर वेष धारण किए वैरागी के साथ हो लिए। सैकड़ों साधु और वैरागी के शिष्य अपनी-अपनी कमर में तलवार बाँधे तथा हाथों में ढाल थामे भी वहाँ आ पहुँचे थे। इस समय वैरागी की आयु 36 वर्ष की थी। तेज उसके अंग-प्रत्यंग से झिलमिला रहा था। अपनी छोटी सी सेना को लेकर वैरागी पंजाब की ओर चल दिया। वैरागी तो वैरागी था, उसे किसी चीज का लोभ-लालच नहीं था। उसका उद्देश्य तो बस भारत माता के कष्टों का निवारण करना ही था। चलते-चलते जब वैरागी की टोली भरतपुर पहुँची, तो भरतपुर के कुछ पंजाबी व्यापारी इनसे आकर मिले। उन लोगों ने महसूस किया कि वैरागी के पास धन नहीं है, इस कारण उसे भारी कठिनाई हो रही है। व्यापारियों ने प्रयत्न करके एक बड़ी रकम एकत्र की तथा वह वैरागी को भेंट कर दी। इस धन को उसने अपने सैनिकों में बाँटा और सेना को मजबूती प्रदान की। दूसरे दिन प्रातः ही वीर बन्दा वैरागी ने अपने समस्त साथियों को एक स्थान पर एकत्र किया। वैरागी चाहता था कि इन लोगों को पंजाब पहुंचाने से पूर्व ठीक से तैयार कर लिया जाए।

वह बोला, "साथियों! हम लोग गुरु गोविंद सिंह जैसे महापुरुष के आदेश पर पंजाब चल रहे हैं। हमें भारत माता को आजाद कराना है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि धर्म की रक्षा में उन्होंने अपने अबोध बालकों तक को भेंट चढ़ा दिया। यदि हम लोग छोटी-छोटी कठिनाइयों से प्रभावित हुए अथवा स्वार्थों में पड़े तो उनका अधूरा कार्य कैसे पूरा होगा?"

सम्वत् 1764 था। श्रावण के महीने में वैरागी अपनी टोली के साथ खण्डा पहुँचा और फिर वहाँ से करसला नगरोटा होते हुए टोहाना जा पहुँचा। यहाँ पर भी उसे अनेक लोग ऐसे मिले जो उसकी टोली में सम्मिलित हो गए। हिसार पहुँचते-पहुँचते वीर वैरागी के पास एक छोटी-सी सेना तैयार हो गई। इसके बाद यहाँ सिखों व सर्वखाप जाट मल्लों के जत्थे के जत्थे वीर वैरागी की सेना में सम्मिलित होने लगे। पंजाब

के गाँव-गाँव में बन्दा वैरागी के नाम पर लोक गीत बन गए। समस्त पंजाब में उत्साह का वातावरण फैलता चला गया। इस समय वैरागी भिवानी में था। उसके पास अच्छी-खासी सेना खड़ी हो गई थी। अब कार्य आरम्भ करने का समय था कि सेना संगठन तभी सफल होता है, जब धन की कमी न हो। सहायता के रूप में लोगों से धन उसे अब कभी भी प्राप्त होने की आशा नहीं थी, जिससे वह सेना का खर्च उचित रूप से चला सके। गम्भीरता से विचार करने के बाद उसने उन विदेशी आक्रांताओं को लूटने का निश्चय किया, जो भारत के शासक बन बैठे थे। लूटमार से दो लाभ थे। एक तो शाही खजानों को लूटने से उनकी शक्ति शिथिल पड़ती थी, दूसरे सेना के लोग आराम से गुजर-बसर कर सकते थे। उस समय भिवानी के सरकारी खजाने में काफी रुपया था, अतः उसने वहीं से कार्य आरम्भ करना उचित समझा। रात्रि की संगत में वैरागी की विचित्र घोषणा सुन सिख उत्साह से भर गए।

''साथियों! कल प्रातःकाल होते ही हम लोगों को भिवानी के सरकारी खजाने को लूटना है। सब लोग अपने शस्त्रास्त्र लेकर एकत्र हो जाएँ।''

''बाबा बन्दा वैरागी की जय।'' के जोरदार नारे के साथ इस घोषणा का हृदय से स्वागत हुआ। दूसरे दिन वीर वैरागी अपने साथियों को ले भिवानी के सरकारी खजाने पर टूट पड़ा। कुछ ही देर में खजाने पर उसका अधिकार हो गया। खजाने में धन के अतिरिक्त उसे शस्त्रास्त्र का भण्डार भी मिला। वैरागी की वाणी में जादू का असर था। उसकी एक आवाज पर मुट्ठी भर लोग खजाने के प्रहरियों पर टूट पड़े थे। कुछ ही देर में सारा धन लूट कर वैरागी के चरणों में डाल दिया था। यही समय था जब वैरागी लोगों पर अपना प्रभाव जमा सकता था। उसने खजाने से लूटे हुए सारे समान पर एक उचकती सी दृष्टि डाली, फिर अपने सिखों की ओर देखा।

''वीर सेनानियो।'' वैरागी गम्भीर वाणी में बोला, ''चार व्यक्ति आगे आ जाओ।''

आगे की पंक्ति से चार व्यक्ति आगे आ गए। वे वैरागी का आदेश सुनने के लिए आतुर थे। शेष सभी लोग भी उत्सुकता से उसकी ओर देख

रहे थे।

''लूटा हुआ सारा धन, सब लोगों में बराबर बाँट दो।'' वैरागी ने उन चारों को आदेश दिया, ''अपना हिस्सा भी अलग रखते जाना। यह धन हमारा ही है। इन लुटेरों ने हमारा ही देश लूटा है और इन्हें अब हम लूट रहे हैं।''

आदेश का पालन किया गया। सारे का सारा धन सिख सेना में बाँट दिया गया तथा शस्त्रास्त्र वहीं जमा कर दिए गए।

भिवानी के सरकारी खजाने पर अधिकार तथा लूट का माल सभी में बाँट देने वाली घटना पंजाब-भर में फैल गई। औरंगजेब के कानों तक भी यह घटना पहुँची तो वह भी चिंतित हो उठा, ''यह वैरागी अचानक ही कौन पैदा हो गया।''

''यह गुरु गोविंद सिंह का शिष्य है,'' किसी ने उसे बताया, ''वैरागी ने नगर-नगर, गाँव-गाँव, घर-घर अलख जगाना आरम्भ कर दिया है। लोग उसकी सेना में सम्मिलित होने के लिए टूट पड़े हैं। शिवाजी की रणनीति के बारे में वह पहले ही सुन चुका है। उसी रणनीति के अनुसार उसने भी इधर-उधर छापे मार-मार कर लूट मार करने की नीति अपनाई है।''

''अब हम यह दिन भी देखेंगे कि हमारी सल्तनत में हमारे ही सामने चींटियों के भी पर निकलने लगे।'' औरंगजेब ने कहा, ''नवाब को उसका दमन करने के लिए कहो। हम हर हाल में उसका दमन चाहते हैं। हम नहीं चाहते कि कोई हमसे बढ़कर भी लुटेरा पैदा हो।''

नबाब के पास संदेश भेज दिया गया। एक व्यंगपूर्ण अट्टहास करता हुआ नवाब बोला, ''सुन रहे हो सिखों! तुम्हारा एक गुरु और आ गया है। एक गुरु की दुर्गति तो तुम लोग स्वयं देख चुके हो कि वह इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा है। अब इसकी भी ऐसी खबर लेनी पड़ेगी कि इसकी दुर्गति को देख आगे से कोई भी सिख सर न उठा सके।''

सिख इस समय नवाब के दरबार में थे। उन्हें उसकी ऐसी बात तीर की तरह लगी, लेकिन वहाँ कुछ भी बोलने अथवा नवाब का विरोध करने का अर्थ था मौत। अतः वे खून के घूँट पी कर रह गए। अपने गुरु का इतना अपमान उन लोगों ने पहले कभी नहीं सुना था। इस अपमान को

वे लोग खामोशी से सहन तो कर गए, लेकिन उनकी आत्मा तड़प उठी।

वैरागी सर्व प्रथम आक्रमण उस स्थान पर करना चाहता था, जहाँ पर भावना उत्साह का काम करे। सिखों से उसे इस बात का पता चला कि सामाना नगर के रहने वाले अली हुसैन ने गुरु गोविंद सिंह को इतना बड़ा धोखा दिया कि उन्हें उसी के कारण आनन्दपुर छोड़ना पड़ा था। इसके बाद अली हुसैन ने भी सरहिन्द के नवाब से कहा था कि साँपों के बच्चे साँप ही होते हैं, उनका सर कुचल देना चाहिए।

इसी बात पर गुरु गोविंद सिंह के बच्चों को बन्दी बनाकर दीवार में चिन देने का आदेश दिया गया था। यही नहीं जलालुद्दीन नामक वह व्यक्ति भी इसी नगर का था जो गुरु तेग बहादुर का घातक था। इस नगर में नवाब के धनी मुसाहिद रहते थे। यहां के नागरिक बड़े क्रूर प्रवृत्ति के थे तथा हिन्दुओं को जब तब लूट लिया करते थे। इस नगर के रहने वालों के विरुद्ध यह भी आरोप थे कि वे आस-पास के हिन्दू गांवों पर आक्रमण करके धन तथा पशु चुरा ले जाते थे अथवा लूट ले जाते थे। सहसा एक घटना घट गई। सामाना-वासियों ने एक रात उसके पास वाले हिन्दू गाँव पर आक्रमण किया और लूट पाट करके ले गए। यही नहीं वहाँ के कुओं में गाय काट कर उसका मांस डाल गए। गाँव वासियों में त्राहि-त्राहि मच गई। कई लोग यहाँ से भागे-भागे आए और उन्होंने वीर वैरागी को गाँव में हुई घटना का समाचार दिया। उन लोगों की पीड़ा देख वैरागी के नेत्रों में रक्त उतर आया। उसकी भुजाएँ फड़क उठी। धर्मान्ध लोगों द्वारा हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचार को देख उसकी आत्मा बिलबिला उठी। उसका हृदय चीत्कार कर उठा। उसने म्यान में से तलवार खींच ली।

''मैं सामाना की ईंट से ईंट बजा दूँगा।'' वह चीख-सा पड़ा और दूसरे दिन—उसने अपनी पूरी शक्ति के साथ सामाना की ओर कूच कर दिया। वैरागी के समस्त साथी जोश-खरोश के साथ आगे बढ़ते चले गए। जब सामाना नगर थोड़ी दूर रह गया, तो वैरागी सभी लोगों के मध्य आ खड़ा हुआ।

''बहादुरों! अब समय आ गया है कि हम लोग महान गुरु तेग बहादुर की नृशंस हत्या का बदला लें और गुरु गोविंद सिंह के अबोध

बच्चों को सांप के बच्चे कहने वाले अपराधी की भूमि को रौंद कर रख दें।''

''गुरु तेग बहादुर की जय, गुरु गोविंद सिंह की जय, वीर बन्दा वैरागी की जय।'' सारे के सारे लोग इतनी जोर से बोल उठे कि आकाश गूँज उठा।

''सामाना नगर की ईंट से ईंट बजाओ।'' वैरागी उत्साहपूर्वक बोला, ''सारे नगर को लूट लो। जो सैनिक जितना माल लूट लेगा, वह सारा उसी को दे दिया जाएगा। आगे बढ़ो और सामाना पर धावा बोल दो।''

''जो बोले सो निहाल—सतश्री अकाल।'' का नारा गूँज उठा।

साथ ही वैरागी अपने साथियों सहित सामाना नगर पर टूट पड़ा। वैरागी की सेना ऐसी जोश में थी कि उसका सामना कोई न कर सका। सारे सामाना नगर में भगदड़ मच गई। वैरागी की सेना ने नगर के चप्पे-चप्पे को लूट लिया। सरकारी तथा सभी लोगों के भवनों को धराशायी कर दिया। जिस किसी ने शस्त्र उठाए उसे तुरन्त मौत के घाट उतार दिया गया।

नगर निवासी भयभीत होकर जंगलों में भाग गए। नवाबों की दावत खाने वालों को जंगली बेरों से पेट भरना पड़ा। जो लोग मखमली गद्देदार बिस्तरों में ऐश-इशरत करते थे, उन लोगों को जंगल में फैली रेत पर पत्थर के तकिए लगाकर गुजर करनी पड़ी। इस प्रकार निरन्तर तीन दिन तक सामाना नगर को लूटा जाता रहा। नगर ने कब्रिस्तान का रूप ले लिया। अब वैरागी ने लगातार आक्रमण करते रहने की नीति अपनाई। वह जानता था कि वह जितनी अधिक लूटमार करेगा, उसके सैनिक उतने ही अधिक सन्तुष्ट रहेंगे और उसकी सेना का आकार भी उतना ही बढ़ता चला जाएगा। अतः उसने आक्रमण करने की एक पूरी योजना बनाकर अपनी सेना को कूच करने का आदेश दे दिया।

सर्वप्रथम वैरागी की सेना ने अम्बाला पर आक्रमण किया। उसकी सेना वहाँ से सरकारी खजाने को लूट कर सैफाबाद, संवारा तथा दामना आदि को लूटती हुई कैथल की ओर बढ़ गई। यहाँ तक आते-आते मार्ग में अनेक मुसलमानी नगर पड़े। उन सबको पूर्णतः लूटती तथा नष्ट करती

हुई यह सेना कुंजपुर नामक स्थान तक आ गई।

कुंजपुर आते ही वैरागी को याद आया कि इसी नगर के काजियों ने गुरु गोविंद सिंह के मासूम बच्चों को दीवार में चिन देने की व्यवस्था की थी। सिख सैनिकों में भी प्रतिशोध की ज्वाला धधक उठी। वैरागी का आदेश पाते ही सिख सैनिकों ने कुंजपुर पर ऐसा भयंकर आक्रमण किया कि सारे नगर को पूर्णतः उजाड़ कर रख दिया। दरिंदे बंदा बहादुर की वीरता देख गश खाकर पीछे को गिर पड़े।

कुंजपुर निवासी मुसलमान थे। वे सभी लगभग अर्द्ध सैनिक थे, वहाँ का शासक सरहिन्द के नवाब का खास सम्बन्धी था। उसने लोगों को ललकारा तो वे हथियार ले ले कर बाहर निकल आए। वैरागी की सेना का सामना करने के लिए उन लोगों के पास शस्त्रों की कमी नहीं थी लेकिन वैरागी की सेना भूखे शेरों की भाँति झपट पड़ी थी। कुंजपुर के लोग सिख सेना का मुकाबला नहीं कर सके और जिसका जिधर को मुँह उठा वह उधर ही जान बचा कर भाग लिया। वैरागी को इस बात का पता था कि सरहिन्द का नवाब वहाँ के शासक का सम्बन्धी है, इसलिए कुंजपुर

की सेना की सहायता करते उसे देर न लगेगी। वह सैनिकों के मध्य आकर चीखा, "लूट लो एक-एक मकान को। घरों में आग लगा दो, जो कुछ दिखाई दे उसे नष्ट कर दो। कुंजपुर को कब्रिस्तान बना दो।" वैरागी की वाणी में इतना जोश था कि उसका आदेश पाते ही सिख सैनिकों ने कुंजपुर को पूरी तौर से लूट लिया। जो सामने आया उसे मौत के घाट उतार दिया। जो कुछ लूटने से बचा उसे नष्ट कर दिया।

जब तक नवाब की सेना कुंजपुर पहुँची, तब तक वैरागी की सेना उसे पूर्णतः नष्ट कर के आगे बढ़ चुकी थी। सारा कुंजपुर कब्रिस्तान सा दिखाई दे रहा था। चारों ओर लाशों पर मँडराते गिद्ध ही गिद्ध दिखाई दे रहे थे।

इधर नवाब की सेना कब्रिस्तान में दिए जला रही थी उधर वीर बन्दा वैरागी की उत्साही सेना एक पठान गाँव को लूट रही थी। इस गाँव में केवल पठान ही पठानों का पड़ाव था। गाँव के सभी पठान लुटेरे थे, जो हिन्दू गाँवों में लूटमार किया करते थे। यही इनका व्यवसाय था। सरहिन्द के नवाब की ओर से इन को लूटने की अनुमति भी प्राप्त थी, लेकिन ये लूटते हिन्दुओं को ही थे। वैरागी की सेना ने इन लोगों को ऐसा लूटा कि पिछला सारा माल निकलवा लिया। पठानों ने भी बड़ा मुकाबला किया, लेकिन वे बहुत बड़ी संख्या में सिखों के हाथों मारे गए। सारे का सारा गाँव कुंजपुर की तरह उजाड़ दिया गया। नवाब सरहिन्द को जब यह पता चला कि वैरागी की सेना ने कुंजपुर को लूट लिया है, तो वह क्रोध से आग-बबूला हो गया। उसने तुरन्त एक बड़ी सेना को यह आदेश देकर कुंजपुर रवाना कर दिया कि वैरागी की सेना को पूर्णतः नष्ट-भ्रष्ट करके वैरागी को जीवित या मृत लाकर उसके चरणों में डाल दिया जाए। नवाब की सेना उतनी ही घमण्ड में चूर थी, जितना नवाब स्वयं था। सेना ने कुंजपुर की ओर कूच कर दिया। यह सेना भी बहुत बड़ी थी। यह सेना जिस समय कुंजपुर पहुँची, तो सैनिक यह देखकर दंग रह गए कि वहाँ कुंजपुर के स्थान पर कब्रिस्तान बन गया था। सेना तुरन्त उस ओर बढ़ चली, जिधर वैरागी की सेना गई थी। एक बार तो वैरागी के मस्तिष्क में आया कि लूट-मार कर ही ली है, आगे बढ़ जाएँ लेकिन फिर यह सोचकर विचार बदल दिया कि एक मुठभेड़ कर ही ली जाए, सिख सैनिकों के

हौसले बुलन्द हैं।

''सिख सैनिकों! अब एक बड़ी मुठभेड़ के लिए तैयार हो जाओ।'' वैरागी बोला, ''नवाब सरहिन्द की सेना आ रही है। उस पर ऐसे तीर बरसाओ की नवाब की सेना कबूतरों की तरह लोट-पोट होती दिखाई देने लगे।''

वैरागी की सेना मुठभेड़ के लिए तैयार हो गई। जब दोनों सेनाएँ आमने-सामने पड़ीं तो नवाब की सेना 'अल्लाहो अकबर' का नारा लगाकर वैरागी की सेना पर टूट पड़ी। सिखों ने भी 'सत श्री अकाल' का नारा बुलन्द कर उस पर आक्रमण कर दिया। वैरागी की निशानेबाजी का यही उपयुक्त समय था। उसने अपने धनुष से जो वाण बरसाने आरम्भ किए, तो नवाब की सेना बिंधती चली गई। वैरागी की इतनी जबर्दस्त निशानेबाजी को देख सिखों के हौसले और भी बढ़ गए। उन्होंने भी निशाने ले लेकर नवाब की सेना पर वाणों की वर्षा करना आरम्भ कर दी। नवाब की सेना को यह मुठभेड़ बड़ी महँगी पड़ी।

नवाब की सेना के बड़े-बड़े सेनानी बड़ी संख्या में धराशायी हो गए। इस सेना का सेनापति एक पठान था। वैरागी का एक तीर उसके वक्ष में लगा तो वह 'हाय अल्लाह' करके भूमि पर गिर पड़ा। उसका गिरना था कि नवाब की सेना के पैर उखड़ गए। सैनिक इस बुरी तरह भागे जैसे उन्होंने भूत-प्रेत देख लिए हों। वैरागी के आदेश पर सिख सेना ने इनका पीछा किया। इस पर वे और भी भयभीत हो गए। सैकड़ों सैनिक तो भगदड़ में ही कुचल कर मर गए। जो शेष बचे वे अपने सारे हथियार छोड़ कर भागे। वैरागी की सेना ने इनका अधिक पीछा नहीं किया। नवाब की सेना के साथ वैरागी की यह पहली मुठभेड़ थी। इसमें वैरागी को बहुत से हथियार प्राप्त हो गए, जो उसने सैनिकों में बाँट दिए। नवाब की सेना पर जो बाणों की बौछार हुई थी, उसमें कोई भाग्यशाली सैनिक ही बच पाया होगा, जिसके किसी अंग पर चोट न आई हो, अन्यथा हरेक को कहीं न कहीं तीर अवश्य लगा था। वैरागी एक के बाद एक जंग जीतता चला गया और पंजाब के काफी बड़े हिस्से पर उसने अधिकार जमा लिया। वैरागी का साहस देखकर हिन्दुओं को ऐसा लगने लगा था कि हिन्दुओं

की रक्षा हेतु ही उसका अवतार हुआ है। वे लोग वैरागी को राम-कृष्ण की भांति अवतार मानने लगे। हिन्दुओं की युवा पीढ़ी ने जब यह देखा कि वैरागी की सेना ने लोह गढ़ की स्थापना कर ली है तो इधर-उधर के क्षेत्रों से दल के दल युवकों के आते गए और वैरागी की सेना में भर्ती होते गए।

दिल्ली के शाही दरबार में भी जो खबरें भेजी गई, उनमें भी यही कहा गया कि वैरागी ने भूत-प्रेत, जिन्नादि अधिकार में किए हुए हैं, उन्हीं की गुप्त सहायता से वह बड़ी-बड़ी सेनाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है। लेकिन सत्य यह था कि वैरागी इतना बढ़िया तीरन्दाज था कि उसका तीर कभी भी चूका ही नहीं था। वैरागी की वीरता सुनकर औरंगजेब आग बबूला हो उठा। इधर वैरागी की बढ़ती हुई ताकत ने औरंगजेब को बेहद चिन्तित कर दिया। उधर दक्षिण के राज्यों में जो बगावत हो रही थी, उसके लिए भी उसे वहाँ सेना भेजनी पड़ी। बीजापुर और गोलकुण्डा की रियासतों के साथ युद्ध करने में उसका बड़ा समय व्यर्थ गया। इतनी बात जरूर है कि इनको पराजित कर देने के बाद उसके राज्य की सीमा पूरे भारत पर हो गई। लेकिन औरंगजेब चाहकर भी वैरागी का बाल भी बाँका न कर सका। और बंदा गुरु को दक्षिणा देता चला गया।

मई, 1710 में उसने सरहिंद को जीत लिया और सतलुज नदी के दक्षिण में सिक्ख राज्य की स्थापना की। उसने खालसा के नाम से शासन भी किया और गुरुओं के नाम के सिक्के चलवाए।

बन्दा सिंह के नेतृत्व में, सिक्खों के इस नवीन राज्य में व्यक्ति-व्यक्ति में भेदभाव न रहा और निम्न वर्ग का व्यक्ति शासन में उच्च पद का अधिकारी बना। परन्तु उसका राज्य थोड़े दिनों तक ही रहा। बादशाह बहादुरशाह (प्रथम) उर्फ शाह आलम ने स्वयं चढ़ाई कर इसे परास्त किया और 10 दिसम्बर, 1710 ई. को सिक्खों के कत्लेआम का आदेश दिया।

बन्दा सिंह ने अपने राज्य के एक बड़े भाग पर फिर से अधिकार कर लिया और इसे उत्तर-पूर्व तथा पहाड़ी क्षेत्रों की ओर लाहौर और अमृतसर की सीमा तक विस्तृत किया। 1715 ई. के प्रारम्भ में बादशाह फर्रुखसियर की शाही फौज ने अब्दुल समद खाँ के नेतृत्व में उसे गुरुदासपुर जिले के धारीवाल क्षेत्र के निकट गुरुदास नंगल गाँव में कई मास तक घेरे रखा।

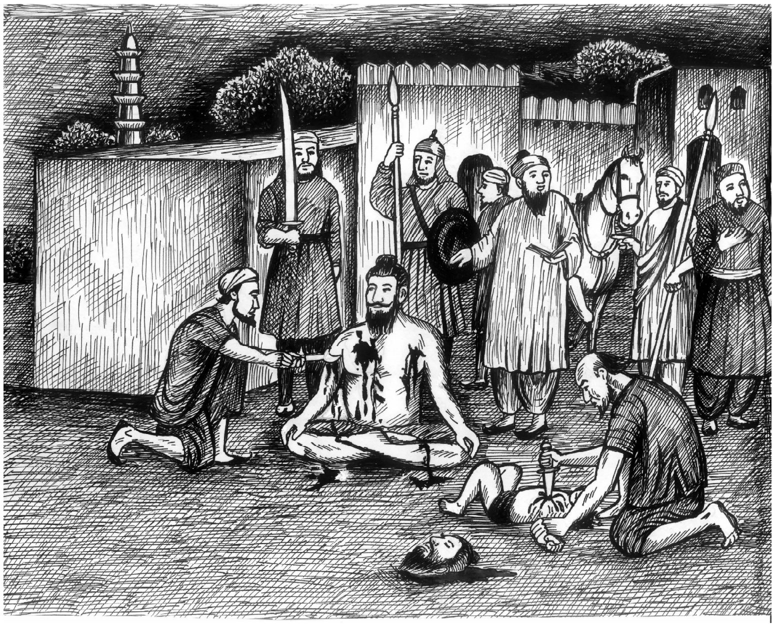

खाद्य सामग्री के अभाव के कारण उसने 7 दिसम्बर को आत्मसमर्पण कर दिया। फरवरी 1716 को 794 सिक्खों के साथ वह दिल्ली लाया गया जहाँ 5 मार्च से 13 मार्च तक प्रति दिन 100 की संख्या में सिक्खों को फाँसी दी गई। 16 जून को बादशाह फर्रुखसियर के आदेश से बन्दा सिंह तथा उसके मुख्य सैन्य-अधिकारियों के शरीर काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए।

गोकुल जाट

औरंगजेब ने शासन संभालते ही अकबर के समय से प्रचलित नीति में परिवर्तन किया। उदारता और सहिष्णुता के स्थान पर उसने मजहबी कट्टरता को अपनाया और वह मुगल साम्राज्य को एक कट्टर इस्लामी सल्तनत बनाने की पूरी कोशिश करने लगा। औरंगजेब ने अपनी नई नीति को कार्यान्वित करने के लिए प्रशासन के पदों से उन कर्मचारियों को हटा दिया, जिनमें थोड़ी भी धार्मिक उदारता थी या जिन्हें हिन्दुओं से सहानुभूति थी। जिन राजाओं की वीरता और स्वामिभक्ति के कारण मुगल साम्राज्य इतना विस्तृत और समृद्धिशाली बना था, उन्हें वह सदा संदेह की दृष्टि से देखा करता था। जिस समय वह सम्राट बना था, उस समय शासन और सेना में कितने ही बड़े.बड़े पदों पर राजपूत राजा नियुक्त थे। वह उनसे घृणा करता था और उनका अहित करने का कुचक्र रचता रहता था, अपनी हिन्दू विरोधी नीति की सफलता में उसे जिन राजाओं की ओर से बाधा जान पड़ती थी, उनमें आमेर नरेश मिर्जा राजा जयसिंह और जोधपुर के राजा यशवंतसिंह प्रमुख थे।

उन दोनों का मुगल सम्राटों से पारिवारिक संबंध होने के कारण राज्य में बड़ा प्रभाव था। इसलिए औरंगजेब को प्रत्यक्ष रूप से उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही करने का साहस नहीं होता था, किंतु वह उनका अहित करने की नित्य नई चालें चलता रहता था। औरंगजेब की ओर से मथुरा का फौजदार अब्दुलनवी नामक एक कट्टर मुसलमान था। सन 1669 में गोकुल सिंह जाट के नेतृत्व में जाटों ने विद्रोह कर दिया और आजादी की जंग लड़ने की ठानी। महावन परगना के सिहोरा गाँव में उसकी विद्रोहियों से मुठभेड़ हुई, जिसमें अब्दुलनवी मारा गया और मुगल सेना बुरी तरह हार गई। औरंगजेब ने उन्हें दबाने के लिए कई बार सेना भेजी, किंतु उसे

सफलता नहीं मिली। गोकुल सिंह जाट ने राष्ट्रीय स्तर पर सेना बनाने के लिए हथियार तैयार करने का एक कारखाना भी स्थापित कर लिया था, इससे चिंतित होकर अंत में औरंगजेब ने स्वयं मोर्चे पर जाने का निर्णय लिया। दिसंबर 1669 के अन्तिम सप्ताह में तिलपत से 20 मील दूर, गोकुलसिंह ने शाही सेनाओं का सामना किया। जाटों ने मुगल सेना पर एक दृढ़ निश्चय और भयंकर क्रोध से आक्रमण किया। सुबह से शाम तक युद्ध होता रहा, कोई निर्णय नहीं हो सका। दूसरे दिन फिर घमासान छिड़ गया। जाट अलौकिक वीरता के साथ युद्ध कर रहे थे। मुगल सेना, तोपखाने और जिरहबख्तर से सुसज्जित घुड़सवार सेनाओं के होते हुए भी गोकुलसिंह पर विजय प्राप्त न कर सके। भारत के इतिहास में ऐसे युद्ध कम हुए हैं जहाँ कई प्रकार से बाधित और कमजोर पक्ष, इतने शांत निश्चय और अडिग धैर्य के साथ लड़ा हो। हल्दी घाटी के युद्ध का निर्णय कुछ ही घंटों में हो गया था। पानीपत के तीनों युद्ध एक-एक दिन में ही समाप्त हो गए थे, परन्तु वीरवर गोकुलसिंह का युद्ध तीसरे दिन भी चला। तीसरे दिन, फिर भयंकर संग्राम हुआ। इसके बारे में एक इतिहासकार का कहना है कि जाटों का आक्रमण इतना प्रबल था कि शाही सेना के पैर

उखड़ ही गए थे, परन्तु तभी हसन अली खाँ के नेतृत्व में एक नई ताजादम मुगल सेना आ गई। इस सेना ने गोकुलसिंह की विजय को पराजय में बदल दिया। बादशाह आलमगीर की इज्जत बच गई। जाटों के पैर तो उखड़ गए फिर भी अपने घरों को नहीं भागे। उनका गंतव्य बनी तिलपत की गढ़ी जो युद्ध क्षेत्र से बीस मील दूर थी। तीसरे दिन से यहाँ भी भीषण युद्ध छिड़ गया और तीन दिन तक चलता रहा। भारी तोपों के बीच तिलपत की गढ़ी भी इसके आगे टिक नहीं सकी और उसका पतन हो गया।

तिलपत के पतन के बाद गोकुलसिंह और उनके ताऊ उदयसिंह को सपरिवार बंदी बना लिया गया। उनके सात हजार साथी भी बंदी हुए। इन सबको आगरा लाया गया। औरंगजेब पहले ही आ चुका था और लाल किले के दीवाने आम में आश्वस्त होकर, विराजमान था। सभी बंदियों को उसके सामने पेश किया गया। दरबार में काफी लोग उपस्थित थे।

औरंगजेब ने कहा, ''जान की खैर चाहते हो तो इस्लाम कबूल कर लो। रसूल के बताए रास्ते पर चलो, बोलो क्या कहते हो इस्लाम या मौत?''

“ईश्वर एक है और हम उसी के रास्ते पर चल रहे हैं,” गोकुल जाट ने कहा, “हमें धर्म समझाने की आवश्यकता नहीं है।”।

“तो फिर इस्लाम ग्रहण क्यों नहीं करते, खुदा तो एक ही है।”

औरंगजेब ने धर्म परिवर्तन करने की पेशकश करते हुए कहा।

“क्यों?” क्या इसलाम का खुदा असली खुदा है, हमारा नहीं?”

“हाँ, हमारा खुदा ही सच्चा ईश्वर है,“क्योंकि इस्लाम सच्चा धर्म है। खुदा ने मोहम्मद को साफ कहा है कि हे मोहम्मद! जो ज्ञान तुमको दिया गया है, तुम दूसरों तक पहुँचा दो। हम यह काम कर रहे हैं और इस पाक कार्य में आपको भी हाथ बंटाकर शबाब बटोरना चाहिए।”

“वेदों का नाम सुना है आपने?”

“हाँ सुना है।”

“हम तो वेदों को मानते हैं और वेदों का ज्ञान सबसे सर्वोत्तम माना गया है। जिस तरह आप मानते हैं कि कुरान अल्लाह की वाणी है, उसी प्रकार हम भी मानते हैं कि वेद ईश्वर की वाणी है और सृष्टि के आरंभ में ही ईश्वर ने हम आर्यो से कहा दिया था कि “मैं (ईश्वर) इस वेदवाणी को सबको कल्याण के लिए प्रदान कर रहा हूँ। मनुष्य मात्र को इसका अनुकरण करना चाहिए, ताकि मेरा पुत्र मुझे प्यारा हो जाए!”

“इस्लाम ही ईश्वर का सच्चा मजहब है। नबी ईश्वर ही सच्चे देवदूत थे, “नबी सच्चे देवदूत थे, इसका क्या प्रमाण है?”

“क्योंकि वे दिव्य पुरुष थे, तभी तो नबी ने चाँद के दो टुकड़े कर दिए थे।”

“अरे भाई यह बात तो विज्ञान के विरूद्ध है। यह प्रसंग वेद में भी है, लेकिन वहाँ तो लिखा है कि नभ में चाँद सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है।”

“जिस धरती और पहाड़ों में आप रहते हैं, वे सब खुदा ने ही बनाए हैं।”

“क्यों बनाए हैं?”

“कुरान में इनके बनाने के कारण के विषय में अल्लाह ने कहा है कि “और हमने किए बीच पृथ्वी पर पहाड़, ऐसा न हो कि हिल जावे।”

‘‘हम आपकी इस बात से सहमत नहीं, क्योंकि हमारे वेदों में लिखा है कि पर्वतों का निर्माण भूगर्भिक हलचलों के कारण होता है। और वैसे भी पृथ्वी स्थिर थोड़े ही है यह तो सूर्य के चारों ओर गतिशील है।’’

‘‘आप कयामत के दिन स्वीकार तो करेंगे ही।’’

‘‘जरा हमें बताने का कष्ट करोगे कि उस दिन क्या होगा?’’

‘‘कुरान कहता है कि इकट्ठा किया जाएगा सूर्य और चाँद, और आसमान के साथ बदली के और उतारे जाएंगे फरिश्ते। पहाड़ चलाए जाएंगे और आसमान की खाल उतारी जाएगी।’’

‘‘शहंशाह ये विज्ञान के विरुद्ध बातें हमारी समझ से परे हैं। सूर्य तो आग का गोला है। हमारे वेदों में स्पष्ट कहा गया है कि चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर आकाश में पक्षी के समान दौड़ रहा है। पक्षी दो डैने से दौड़ता है, और चंद्रमा भी शुक्ल व कृष्ण दो पक्षों से दौड़ता है।’’

‘‘तो क्या आप कुरान की बातें सही नहीं मानेंगे?’’

‘‘हम तो मानते हैं कि सत्य बातें ही सत्य, सर्वज्ञ ईश्वर का ज्ञान हो सकता है। ईश्वरीय ज्ञान कभी भी बुद्धि, विज्ञान और प्राकृतिक नियमों के विरूद्ध नहीं हो सकता।’’

‘‘तो क्या कुरान ईश्वरीय ज्ञान नहीं है?’’

‘‘हमने नहीं कहा। हमें तो अरबी आती नहीं, लेकिन आपने जो व्याख्या हमें सुनायी हमने उस पर कुछ शंकाएं व्यक्त की हैं, जिनका आप उत्तर नहीं दे सके। फिर आप कैसे यह आशा रख सकते हैं कि हम वेद धर्म छोड़कर इस्लाम कबूल कर लेंगे।’’

‘‘तो आप इस्लाम कबूल नहीं करेंगे?’’

‘‘आप तलवार छोड़कर साधु-संतों को शास्त्रार्थ में हरा देंगे, तो भारत का हर हिन्दू मुसलमान बन सकता है। यहाँ के लोग साधु संतों पर विश्वास करते हैं, क्योंकि हमारे धार्मिक ग्रंथों के अन्वेषक वही हैं।’’

‘‘हम व्यर्थ के तर्क-वितर्क में नहीं पड़ते, बस कुरान में जो लिखा है, वही सत्य है।’’

‘‘हमारे यहाँ तो सबको अपने-अपने विश्वास के अनुसार धार्मिक सिद्धांत मानने की स्वतंत्रता है। आप जैसा मानते हैं, वैसे ही आपको भी

भारत में अपने सिद्धांतों के प्रसार करने की आजादी है। लेकिन तलवार के बल पर नहीं, केवल संत बनकर आप ऐसा करने के अधिकारी होंगे।''

''हम तलवार के बल पर भी तुमसे इस्लाम कबूल करवा सकते हैं।''

''असंभव!''

''ऐसे बहुत से लोगों ने किया है और कर रहे हैं और करेंगे भी, तब तक जब तक कि यह सारी दुनिया मुसलमान नहीं बन जाती।''

''प्रकृति परिवर्तनशील है शहंशाह।''

यह तो आप भी जानते हैं कि ''कभी हिन्दू धर्म उन्नति के शिखर पर था, आज इस्लाम है, लेकिन फिर एक दिन हिन्दू धर्म ही उन्नति के शिखर पर पहुँचेगा, क्योंकि हमारा धर्म तो एक चक्र की तरह गतिशील है। इसका शीर्ष कभी नीचे तो यह कभी शीर्ष पर स्वतः ही चला जाता है और फिर उस दिन हम उन सब लोगों को पुनः हिन्दू बना लेंगे, जिन्हें तुम लोगों ने जबर्दस्ती भ्रष्ट किया है।''

''हिन्दूओं में तो ऐसा कोई नियम कायदा नहीं है। तुममें तो जाति से जो एक बार निकल जाता है, उसे फिर कभी प्रवेश नहीं दिया जाता।''

''क्यों नहीं दिया जाता?''

''आज से पहले तो ऐसा कभी हुआ नहीं!''

''सरस्वतत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेशमुपाययौ।

म्लेच्छान् संस्कृत्य चाभाष्य तद दशसहस्रकान्।।

भारत में शुद्धिकरण की परम्परा तो प्राचीन काल से रही है। देवी सरस्वती की आज्ञा से कण्व ऋषि मिस्र देश में गए और उन्होंने वहाँ हजारों गौमाँसभक्षियों को शुद्ध करके आर्य बनाया, जिसके बाद उन लोगों ने गौहत्या बंद की और उसे माता का दर्जा दिया। और ऐसे ही कई अन्य ऐतिहासिक प्रमाण भी उपलब्ध हैं।''

''अब समय बदल गया है, अब यदि कोई एक बार मुसलमान बन जाएगा, तो दोबारा कभी हिन्दू नहीं बन सकता।''

''क्यों नहीं बन सकता?''

उन्होंने पास बैठे पंडित कालूराम की ओर संकेत किया, तो पंडित ने औरंगजेब की ओर से कहा,

''घोरी मोहमदो गौरी पृथ्वीराजं गृहीतवान्।

युद्धे विजितवान् पृथ्वीं कारागारे स क्षिप्तवान्।।...

ते हि बहिःष्कृतैरायै पराधीनास्तु नाभवन्।।

घोरी पहले हिन्दू था और उसे बहिष्कृत कर दिया गया। वही बाद में मुहम्मद गौरी बनकर आया और आर्यावर्त में यवन साम्राज्य की आधारशिला रख दी। इसलिए इससे सबक लेते हुए आपको भी मुसलमान बन जाना चाहिए।''

''पंडित हिन्दू होकर एक म्लेच्छ की वकालत?''

''वकालत नहीं,'' पंडित ने कहा, ''मैं तो अशुद्ध हो ही चुका हूं, अब मेरे पास कोई रास्ता नहीं मुसलमान बनकर रहने के लिए।''

''क्यों नहीं है, शुद्धिकरण का रास्ता है ना।''

''हमारे शास्त्रों में शुद्धिकरण का प्रावधान नहीं है।''

''क्यों नहीं है, वेदों में स्पष्ट लिखा है :

हे विद्वानों! नीचे गिरे हुए मनुष्यों को आप पुनः उन्नत करते हो। हे देवो! अपराध पापादि करने वालों को आप उत्तम जीवन प्रदान करते हैं।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।

उतागश्च क्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः।।

जल से शरीर, सत्य बोलने से मन, विद्या और तप से आत्मा शुद्ध हो जाती है। वह क्या है, जो शुद्ध नहीं होता? स्मृति का तो वचन है कि

देश भंगे प्रबासे च व्याधिषु व्यसनेश्बपि।

रक्षेदवे स्वेदेहदि पश्चाद्धर्म समाचरेत्।।

अर्थात् देश में उपद्रव होने पर, विदेश में, रोग में और घोर आपत्ति के समय जिस प्रकार भी हो सके सर्वप्रथम अपने शरीर, स्त्री-बच्चों, धन-दौलत की रक्षा करें। आपत्ति काल में शौचाशौच का विशेष विचार न करके सबकी शुद्धि करनी चाहिए, पीछे समयानुकूल होने पर धर्म का सभी अच्छी प्रकार से आचरण करते हैं।'' फिर वे आगे बोले, ''और कोई प्रमाण चाहिए?''

''अब और कोई प्रमाण नहीं चाहिए, मैं समझ गया?''

''क्या समझ गए,'' औरंगजेब ने आँखें दिखाते हुए पंडित को घूरा।

‘‘अनपढ़ जाट पढ़े जैसा और पढ़ा लिखा जाट खुदा जैसा,’’ पंडित कालूराम ने कहा, ‘‘गोकुल जाट पढ़ा-लिखा जाट है।’’

‘‘तो इसे खुदा बना दिया,’’ कहते हुए औरंगजेब ने एक कटार कालूराम की ओर फेंकी जो उसके पेट में जा घुसी और उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

‘‘यही हश्र तुम्हारा होगा और उसके बाद तुम्हारे स्त्रियों और बेटियों को हम अपने हरम में रखकर उन्हें अपनी संपत्ति बना लेंगे।’’

‘‘हमारी बहुत सी संताने गाँव गुहांड में हैं, वे अपनी माताओं को आजाद करा लेंगी।’’

‘‘करा कर क्या करेंगी, क्योंकि हमारे तो छूने मात्र से ही तुम लोग समझते हो कि वे नापाक हो गई हैं। उन्हें कैसे शरण मिलेगी, पुनः हिन्दू धर्म में?’’

‘‘गृहीता या बलान्म्लेच्छैः पंचवः सप्तवासमा।
दशादि विंशति यावत्तस्य शुद्धिर्विधीयते।।

हमारी स्मृति में इस प्रकार साफ लिखा है। यदि किसी आर्य कन्या को कोई म्लेच्छ उठा ले जावे और उससे विवाह रचाले, तो क्या हम ऐसी कन्या को भी दोबारा अपने धर्म में ले सकते हैं?’’

‘‘और जब उनकी कोख में हमारे रक्त के अंश खेलेंगे, तो उनका क्या करोगे, ऐसे बहुत उदाहरण देख चुका हूँ, ऐसी औरतों को जो मुस्लिम के घर रह आई हो, तुम लोग अपने गाँव तक में घुसने नहीं देते।’’

‘‘बालाद्दासी कृत ये च मलेच्छचांडाल दस्युभिः।
अशुभं कारितं कर्म गवादि प्राणिहिंसनम्।।
उच्छिष्टमार्जवं चैव तथा तस्यैव भोजनम्।
खरोष्ट्र विड् वराहणामामिषस्य च भक्षणम्।।
तत्स्त्रीणां तथा संगस्ताभिश्च सह भोजनम्।
मासोषिते द्विंजातौ तु प्राजापत्यं विशोधनम।।

अर्थात् आर्य शास्त्रों का कथन है कि बलपूर्वक हमारी जिन देवियों को दासी बना लिया गया, हमारे जिन बँधुओं को दुष्टों के अत्याचारों से तंग आकर, विवश होकर गौहत्या आदि कर्म भी करने पड़े हों, इच्छा न

होते हुए भी मजबूर होकर जिन्होंने म्लेच्छों के साथ खान-पान किया हो, मुस्लिम औरतों के साथ हमारे जिन भाइयों ने विवाह तक पढ़ा हो, शंख स्मृति का वचन है कि वे सब गायत्री मंत्र से शुद्ध हो जाते हैं।''

''हमारे हरम में रहने के बाद हिन्दू स्त्री कभी शुद्ध नहीं हो सकती? सच तो यह है कि वह पाक हो जाती है।''

''स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च न दूष्यन्ति कदातन्।
रजसा शुद्धयते नारी नदी वेगेन शुद्धयति।।

हमारे आर्ष शास्त्रों का वचन है कि यदि कोई स्त्री अपहृत अवस्था में अनिच्छापूर्वक या किसी अन्य कारण से जैसे विपत्तिकाल में विवशतापूर्वक पर पुरुष से सहवास करती है, तो उस स्त्री को किसी बाह्य शुद्धि की जरूरत नहीं होती। ऋतुकाल होने पर वह बलात्कार के दोष से स्वतः मुक्त होकर पवित्र बन जाती है।''

इस प्रकार वाद-विवाद करके औरंगजेब गोकुल जाट को पराजित न कर सका, भले ही युद्धभूमि में उसे घेरकर बंदी बना लिया गया हो, लेकिन शास्त्रबल पर उसे पराजित करना असंभव था। औरंगजेब कुरान का विद्वान था, लेकिन भारतीय ग्रंथों के ज्ञान से वह अब तक अपरिचित ही था, लेकिन आज उसे गोकुल जाट ने आर्य ग्रंथों का ऐसा ज्ञान करा दिया था कि वह दाँतों तले अंगुली दबाने को विवश हो गया।

गोकुल जाट का शास्त्रज्ञान देखकर अन्य बंदी जाट भी उत्साहित हो उठे और देश व धर्म पर बलिदान के लिए अपने आपको गौरवान्वित महसूस करने लगे।

अधिसंख्य जाटों ने कहा, ''बादशाह, अगर तेरे खुदा और रसूल का का रास्ता ऐसा ही है, जैसे पर तू चल रहा है, तो हमें तेरे रास्ते पर नहीं चलना।''

अगले दिन गोकुलसिंह और उदयसिंह को आगरा कोतवाली पर लाया गया। उसी तरह बँधे हाथ, गले से पैर तक लोहे में जकड़ा शरीर। गोकुलसिंह की सुडौल भुजा पर जल्लाद का पहला कुल्हाड़ा चला, तो हजारों का जनसमूह हाहाकार कर उठा। कुल्हाड़ी से छिटकी हुई उनकी दायीं भुजा चबूतरे पर गिरकर फड़कने लगी, परन्तु उस वीर का मुख ही

नहीं शरीर भी निष्कंप था। उसने एक निगाह फुव्वारा बन गए कंधे पर डाली और फिर जल्लादों को देखने लगा कि दूसरा वार करें, परन्तु जल्लाद जल्दी में नहीं थे। उन्हें ऐसे ही निर्देश थे। दूसरे कुल्हाड़े पर हजारों लोग आर्तनाद कर उठे। उनमें हिंदू और मुसलमान सभी थे। अनेकों ने आँखें बंद करली, अनेक रोते हुए भाग निकले। कोतवाली के चारों ओर मानो प्रलय हो रही थी, एक को दूसरे का होश नहीं था। वातावरण में एक ही ध्वनि थी - हे राम!...हे रहीम !! इधर आगरा में गोकुलसिंह का सिर गिरा, उधर मथुरा में केशवरायजी का मन्दिर !

महाराणा प्रताप, महाराणा राज सिंह, छत्रपति शिवाजी, हसन खाँ मेवाती, गुरु गोविन्द सिंह, महावीर गोकुल तथा भरतपुर के जाट शासकों के अलावा ऐसे और अधिक नाम नहीं गिनाए जा सकते, जिन्होंने मुगल सत्ता को खुलकर ललकारा हो। वीर गोकुल का नाम इसलिए प्रमुखता से लिया जाता है कि दिल्ली की नाक के नीचे उन्होंने हुँकार भरी थी और 20 हजार कृषक सैनिकों की फौज खड़ी कर दी थी, जो अवैतनिक, अप्रशिक्षित और घरेलू अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थी। वे केवल राष्ट्र की रक्षा हेतु प्राणार्पण करने आए थे।

बलवीर सिंह 'करुण' ने अपने समरवीर गोकुलाः किसान क्रान्ति का काव्य में गोकुल जाट की महानता का बड़ा ही अद्भुत वर्णन किया है।

आठ सर्गों का यह प्रबन्धकाव्य इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक का महत्त्वपूर्ण अवदान है। कवि ने मथुरा के किसान कुल में जन्मे गोकुल के संघर्ष की उपेक्षा की पीड़ा को सहा है। उस पीड़ा ने राष्ट्रीय सन्दर्भ में उपेक्षित को काव्यांजलि देने का प्रयास किया है। आदि कवि की करुणा का स्मरण करें फिर कवि 'करुण' की पीड़ा की प्रेरणा का महत्त्व स्पष्ट हो जाएगा। इसीलिए कवि ने प्रथम सर्ग में गोकुल के किसान व्यक्तित्व को मुगल बादशाह के समक्ष प्रस्तुत किया है। उच्चकुल के नायकत्व के निकष को गोकुल ने बदल दिया था। अतः किसान-मजदूर-दलित के उत्थान के युग में गोकुल की उपेक्षा कब तक होती! उसने तो किसान जीवन के अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए आमरण संघर्ष किया। विदेशी मुगल शासन द्वारा किसान दमन के विरोध का संकल्प किया। इसलिए कवि ने प्रथम

सर्ग में लिखा है-

पर गोकुल तो था भूमिपुत्र
धरती को माँ कहने वाला
अधनंगा तन, अधभरा पेट
हर शीत, घाम सहने वाला!

कवि ने महसूस किया है कि तिलपत का गोकुल शहंशाह औरंगजेब के लिए चिंता का कारण बन गया था। परन्तु अपनों ने क्या किया?

इतिहास रचे हैं जाटों ने
लेकिन कलमों ने मौन गहे

कवि ने दूसरे सर्ग में युग की विषम स्थितियों और भारतीय आशावाद को ऐतिहासिक और प्राकृतिक सन्दर्भ में अपनी काव्यकला द्वारा चित्रित कर दिया है। प्रकृति का समय चक्र आशा जगाता है

मावस की छाती पर चढ़कर
पूनम को आना पड़ता है
उषा को नभ में गैरिक ध्वज
नित ही फहराना पड़ता है।

भारतीय दृष्टि की मानवीय जिजीविषा तथा आशा के मनोहर रूप देखें

पलता रहता है एक बीज घनघोर प्रलय के बीच कहीं,
कोई मनु उसे सहेज सदा रचता आया है सृष्टि नई।

ब्रजमंडल में ही नायक गोकुल का जन्म हुआ। यही आशावाद का आधार बना। तीसरा सर्ग गोकुल के किसान जीवन की चित्रावली है-बिंबों एवं चित्रों में। किसान जीवन का ऐसा वर्णन-चित्रण अन्यत्र विरल है। कवि की अनुभूत किसानी अपनी संवेदना एवं श्रमोत्फुल्ल मस्ती के साथ प्रस्तुत हुई है। फलतः यह किसान जीवन का प्रबन्ध काव्य बन गया है। पर मुगल शासन में किसान अपना पेट भर नहीं पाता था। कराधान भयावह था। जजिया तो काफिर किसान के लिए भयानक दंडस्वरूप आरोपित था। अतः पीड़ा गहराती जाती थी। परन्तु कवि मुगल शासन के कठोरक्रूर शासन का मर्मान्तक वर्णन नहीं कर सका है। प्रत्यक्ष अत्याचार से

रोष-आक्रोश व विद्रोह का वर्णन स्वाभाविक रूप में चौथे सर्ग में किया है। यह सर्ग क्रांतिचेतना और संघर्ष के संकल्प का बन गया है।

धीरे-धीरे लगा जगाने स्वाभिमान की पानी,
कर से कर इन्कार बगावत कर देने की ठानी।

सच है कि मथुरा के किसान कान्हा और बलदाऊ के अंश न थे। वे अपने गौरव की यादकर सिंह के समान गरजने लगे। कवि की राष्ट्रीय चेतना केवल मथुरा और जाट किसान की बात नहीं करती। वह तो हिन्दुस्तान के लहू का स्मरण रखता है। तभी तो दिल्ली का तख्त सहम उठा। उधर बीस हजार किसान संगठित होकर तख्त के खिलाफ खड़े हो गए। कवि की लेखनी की प्रगतिशील दृष्टि देखें

वे सचमुच में थे जनसैनिक वे सचमुच में थे सर्वहार,
वे वानर सेना के प्रतीक गोकुला वीर रामावतार।

संस्कृति से जुड़कर जनचेतना जागृत होती है। मुगल अत्याचार के विरुद्ध गोकुल का जयकार होने लगा। संघर्ष आरम्भ हो गया। कवि ने आगे की तीन सर्गों में गोकुल और उसकी किसान क्रांति सेना के स्वातंत्र्य संग्राम का प्रामाणिक वर्णन किया है। राष्ट्रीय दृष्टि से मुगल हुकूमत के दमनकारी रूप, किसानों का आक्रोश और संकलित संघर्ष के शौर्य का वर्णन इस युद्ध की विशेषताएँ हैं। कवि ने सत्रहवीं सदी की किसान सेना के संग्राम को इक्कीसवीं सदी में दिखाकर एक नई राष्ट्रीय चेतना स्फूर्त कर दी है। यह उपेक्षित अध्याय धूल झाड़कर अपने तेजस्वी रूप को दिखाकर अनुप्रमाणित कर रहा है।

कवि करुण ने पाँचवें तथा छठे सर्ग में सादाबाद और तिलपत के भीषण संघर्ष को अपनी चिरपरिचित वर्णन शैली में तथा बिम्बपूर्ण शिल्प से प्रत्यक्ष कर दिया है। नायक गोकुल काव्य का व्यक्तित्व ही ऐसा है-

भूडोल बवंडर ने मिलजुल जिसका व्यक्तित्व बनाया हो,
बिजलियों-आँधियों ने मिलकर जिसको दिन-रात सजाया हो।

ऐसे शौर्यशीर्ष गोकुल ने मुगल छावनी सादाबाद पर अधिकार करके मुगलों को हतप्रभ कर दिया था। पर इतिहासकारों ने उपेक्षा कर दी। अतः कवि ने लिख दिया है

वे टुकड़खोर इतिहासकार वे सत्ता के बदनुमा दाग
भारत की संस्कृति के द्रोही निशिदिन गाते विषभरे राग,

ये इतिहासकार मुगलों के विदेशी अत्याचारी रूप पर मौन ही रहते हैं। पर कवि बलवीर सिंह ने गोकुल के शौर्य से घबराए औरंगजेब का सजीव चित्रण कर दिया है

पढ़कर उत्तर भीतर-भीतर औरंगजेब दहका धधका,
हर गिरा-गिरा में टीस उठी धमनी धमीन में दर्द बढ़ा।

उसका सिंहासन डोल उठा। साम्राज्य का भूगोल सिमटता गया। इसलिए खुद औरंगजेब सन् 1669 में बड़ी फौज लेकर आ धमका। गोकुल के केन्द्र तिलपत में भीषण संग्राम होने लगा। उस युद्ध का एक चित्र देखेंः

घनघोर तुमुल संग्राम छिड़ा गोलियाँ झमक झन्ना निकली,
तलवार चमक चम-चम लहरा लप-लप लेती फटका निकली।

युद्ध चलता रहा। मुगल फौज की ताकत बढ़ती गई। तिलपत पर दबाव बढ़ता रहा। अन्तिम क्षण तक गोकुल अपने चाचा उदय सिंह के साथ युद्ध करता रहा। पराजय नियति बन गई। कैद होकर औरंगजेब सामने लाया गया। उसने निर्भीक भाव से अत्याचारी शहंशाह के प्रति अपनी घोर घृणा व्यक्त कर दी। सप्तम सर्ग प्रमाण है। औरंगजेब इस तेजस्वी किसान नायक को देख दंग रह गया। उसने मौत की सजा सुना दी। विकल्प धर्मान्तरण रहा।

अन्तिम अष्टम सर्ग प्रबन्धकाव्य का उत्कर्ष है। कवि ने स्वातंत्र्य-संग्राम के कारण घोषित प्राणदंड की भूमिका के रूप में प्रकृति, प्रकृति की रहस्यचेतना तथा भारतीय चिंतन के अनुसार आत्मा की अमरता का आख्यान सुनाया है। कवि कहता है

तुम तो एक जन्म लेकर बस
एक बार मरते हो
और कयामत तक कब्रों में
इन्तजार करते हो
लेकिन हम तो सदा अमर हैं
आत्मा नहीं मरेगी

केवल अपने देह-वसन ये
बार-बार बदलेगी।

अतः गोकुल अपने धर्म का परित्याग नहीं करेगा। वे दोनों दंडित होकर अमर हो जाना चाहते हैं। इस विषम परिस्थिति-स्वातंत्र्य संग्राम, पराजय और प्राणदंड या धर्मपरिवर्तन में कवि का प्रश्न है, राष्ट्रीय चेतना का प्रश्न है-

निर्णय बड़ा कठिन था या दुर्भाग्य देश का,
या फिर सौभाग्यों का दिन था....

पर उदयसिंह और गोकुल की शहादत पर कवि की उदात्त भावना मुखरित हो गई है -

ये सब उज्ज्वल तारे बन कर
जा बैठे अम्बर पर....
सदियों से दृष्टियाँ गड़ाए
इस भू के कण-कण पर

स्मरण है कि सन् 1670 के संघर्ष एवं शहादत के बाद सतनामियों ने शहादत दी है। शिवाजी का संघर्ष 1674 में सफल हुआ था। परन्तु 1675 में गुरु तेग बहादुर ने कश्मीर के लिए बलिदान दिया। पर भरतपुर के सूरजमल ने स्वातंत्र्य ध्वज को फहरा दिया। शायद इसी संघर्ष-शृंखला का परिणाम रहा सन् 1947 का पन्द्रह अगस्त। बलवीर सिंह 'करुण' का यह प्रबंधकाव्य अपना औचित्य सिद्ध कर रहा है। यह प्रबन्धकाव्य हिन्दी काव्य की उपलब्धि है। कवि की लेखनी का अभिनन्दन है।

औरंगजेब ने ब्रज संस्कृति को आघात पहुँचाने के लिए ब्रज के नामों को परिवर्तित किया। मथुरा, वृन्दावन, पारसौली (गोवर्धन) को क्रमशः इस्लामाबाद, मेमिनाबाद और मुहम्मदपुर कहा गया था। वे सभी नाम अभी तक सरकारी कागजों में रहे आए हैं, जनता में कभी प्रचलित नहीं हुए।

ब्रज में आने वाले तीर्थ-यात्रियों पर भारी कर लगाया गया, मंदिर नष्ट किए जाने लगे, जजिया कर फिर से लगाया गया और हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। उस समय के कवियों की रचनाओं में भी औरंगजेब के

अत्याचारों का उल्लेख इस प्रकार है-

जब तें साह तख्त पर बैठे। तब तें हिन्दुन तें उर ऐंठे
महँगे कर तीरथन लगाए। देव-देवालै निदरि ढहाए
घर-घर बाँधि जेजिया लीन्हें। अपने मन भाये सब कीन्हे
देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे डूबे राव-राने सबी गये लब की

तोड़े गए मंदिरों की जगह पर मस्जिद और सराय बनाई गईं तथा मकतब और कसाईखाने कायम किए गए। हिन्दुओं के दिल को दुखाने के लिए गोवध करने की खुली छूट दे दी गई।

जब ब्रज में इतना अत्याचार होने लगा, तब यहाँ के धर्मप्राण भक्तजन अपनी देव-मूर्तियाँ और धार्मिक पोथियों को लेकर भागने का विचार करने लगे। किंतु कहाँ जाएँ, यह उनके लिए बड़ी समस्या थी। वे तीर्थ स्थानों में रह कर अपना धर्म-कर्म करना चाहते थे, किंतु यहाँ रहना उनके लिए असंभव हो गया था। महात्मा सूर किशोर ने उस समय के भक्तों की मनोस्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया है-

जहँ तीरथ तहँ जमन-बास, पुनि जीविका न लहियै।
असन-बसन जहँ मिलै, तहाँ सतसंगन पैयै।।
राह चोर-बटमार कुटिल, निरधन दुख देहीं ।
सहबासिन सन बैर, दूर कहुँ बसै सनेही
कहैं सूर किसोर मिलैं नहीं, जथा जोग चाही जहाँ।
कलिकाल ग्रसेउ अति प्रबल हिय, हाय राम ! रहियै कहाँ?

(मिथिला माहात्म्य, छन्द-1)

उस समय कुछ प्रभावशाली हिन्दू राज्यों की स्थिति औरंगजेब के मजहबी तानाशाही से मुक्त थी, अतः ब्रज के अनेक धर्माचार्य एवं भक्तजन अपने परिकर के साथ वहाँ जा कर बसने लगे। उस अभूतपूर्व धार्मिक निष्क्रमण के फलस्वरूप ब्रज में गोवर्धन और गोकुल जैसे समृद्धिशाली धर्मस्थान उजड़ गए, और वृन्दावन शोभाहीन हो गया था। औरंगजेब के शासन में ब्रज की जैसी बर्बादी हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

जो लोग मुसलमान नहीं होना चाहते थे, उनसे मुस्लिम शासन में जजिया नाम से कर वसूल किया जाता था। यह कर अकबर के शासन में हटा दिया गया था। तब से लेकर औरंगजेब के शासन के आरंभिक काल तक वह बंद रहा। जब मिर्जा राजा जयसिंह के बाद महाराज यशवंत सिंह का भी देहांत हो गया, तब औरंगजेब ने निरंकुश होकर सन 1679 में फिर से इस कर को लगाया। इस अपमानपूर्ण कर का हिन्दुओं द्वारा विरोध किया गया। मेवाड़ के वृद्ध राणा राजसिंह ने इसके विरोध में औरंगजेब को उपालंभ देते हुए एक पत्र लिखा था, जिसका उल्लेख टॉड कृत राजस्थान नामक ग्रंथ में हुआ है।

औरंगजेब के अत्याचारों से मथुरा की जनता अपने पैतृक आवासों को छोड़कर निकटवर्ती हिन्दू राजाओं के राज्यों में जाकर बसने लगी थी। जो रह गए थे, वे बड़ी कठिन परिस्थिति में अपने जीवन बिता रहे थे। उस समय में मथुरा का कोई महत्व नहीं था। उसकी धार्मिक के साथ ही साथ उसकी भौतिक समृद्धि भी समाप्त हो गई थी। प्रशासन की दृष्टि से उस समय में मथुरा से अधिक महावन, सहार और सादाबाद का महत्व था, वहाँ मुसलमानों की संख्या भी अपेक्षाकृत अधिक थी।

वीर हकीकतराय

यों तो सभी लोग इस नश्वर जगत में पैदा होते हैं, जीते हैं, और अन्त में मर जाते हैं, पर उन्हीं का जीना और मरना सार्थक मालूम होता है, जो देश, जाति और धर्म के लिए जीते और मरते हैं। वास्तव में ऐसे ही मनुष्य सच्चे वीर हैं और वे ही अमृत पीकर इस संसार में आते हैं, क्योंकि उनका अन्त हो जाने पर भी उनकी अमर कीर्ति, उनकी शहादत, जाति कभी नहीं भुलाती। वे अपना खून देकर जातीय वृक्ष की जड़ ऐसी सींच जाते हैं कि उसका कभी विनाश नहीं होता। वे स्वयं मरकर जाति को अमर कर जाते हैं। ऐसे ही वीरात्मा शहीदों में बालक हकीकत राय का भी नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

इस वीर बालक ने अपनी जान धर्म के लिए कुर्बान कर दी, पर धर्म हाथ से न जाने दिया। यह क्षत्रिय कुलभूषण सम्वत् विक्रमी 1790 में वागमल वंश में माता कौराल से जन्मा था। पश्चिमी पंजाब के एक नगर सियालकोट में भागमल नाम के एक व्यापारी रहते थे। उनका एक ही पुत्र था, जिनका नाम हकीकत राय था। हिन्दू धर्म की आस्थाओं पर उनका पूर्ण विश्वास था। देवी-देवताओं की पूजा उनके यहां परंपरा से चलती आ रही थी। देवी दुर्गा, जिसे भवानी भी कहते हैं, में उनकी विशेष आस्था थी। इस वीर बालक ने बाल्यकाल से ही धार्मिक शिक्षा खूब पाई थी। ग्यारह वर्ष की आयु में वह फारसी पढ़ने के लिए एक मौलवी के यहां गया।

जब जिस जाति का राज्य होता है, तब वह जाति अपने धार्मिक सिद्धान्तों को ही सर्वोत्तम समझती है। उस समय इस अभागे देश भारत में गोभक्षी मुसलमानों का शासन था, जो अपने इस्लाम मत को ही सबसे अच्छा और मुक्तिदाता समझते थे। निरीह शान्तिप्रिय हिन्दू लोग जबर्दस्ती

तलवार के बल से मुसलमान बनाए जाते थे और जो मुसलमान नहीं बनते थे, वे बड़ी ही निर्दयता के साथ मार डाले जाते थे। मुसलमान बनने वालों के लिए बड़े-बड़े प्रलोभन थे कि मरने के बाद बिहिश्त में हूर और गुलाम लोग आनन्दभोग के लिए मिलेंगे। इसके अतिरिक्त यह भी कि मुसलमान होने पर अच्छी-अच्छी सरकारी नौकरियां मिलेंगी। इन प्रलोभनों में भी जो हिन्दू नहीं फँसते, वे फिर मार डाले जाते थे।

हिन्दू संस्कृति का जब स्वर्ण युग बीत गया, तब इस्लाम अस्तित्व में आया था। अरब की ज़मीन पर इसका उदय हुआ। इस्लाम से पूर्व अरब में व्यवस्थित जीवन नहीं था। वहाँ के अधिकांश निवासी असभ्यता का जीवन जी रहे थे। कुछ कबीले के रूप में इधर-से-उधर घूमते-फिरते थे। कबीलों का एक दूसरे के ऊपर आक्रमण करना, उन्हें लूटना और उनकी जवान लड़कियों और औरतों को छीन लेना उनके लिए आम घटना मानी जाती थी। मूर्ति पूजा और शराब जैसी मादक वस्तुओं का सेवन भी उनकी परंपराओं में सम्मिलित थी। मुहम्मद साहब ने जैसा भी जितना भी उन्हें अच्छी जीवन शैली का ज्ञान दिया, उससे उनमें सुधार आया। यही सुधार इस्लाम धर्म कहलाया। लेकिन इस सुधार से उनमें एक भ्रम पैदा हो गया। उन्होंने समझा कि केवल वे ही मुहम्मद साहब के इस्लाम सभ्य बने हैं, बाकी विश्व अभी उसी तरह का असभ्य है, जैसे वे इस्लाम धर्म के आने से पहले थे। अपनी इस मान्यता के आधार पर उन्होंने यह मान लिया कि इस्लाम धर्म विश्व का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। उनका यह श्रेष्ठता का अहम ही इस्लाम को कट्टरता के मार्ग पर ले गया। जब उन्होंने देखा कि हिन्दू बहुदेववादी हैं, मूर्ति-पूजक हैं, तो उनकी यह धारणा बन गई कि हिन्दू धर्म इस्लाम धर्म से निकृष्ट है। इस्लाम का यही अहम् हकीकतराय की कथा को जन्म दे गया। जिस काल की गाथा लिखी जा रही है, वह मुसलमानों का राज्यकाल तो जरूर था, लेकिन संख्या की दृष्टि से हिन्दुओं का बहुमत था। लेकिन उस समय लोकतन्त्र तो था नहीं, अपितु राजतंत्र था और वह भी कर मुसलमानों का। मुसलमानों की क्रूरता के आगे हिन्दू इतने दयनीय हो गए थे कि पढ़ने-पढ़ाने का काम भी छूट चुका था। उस समय केवल ब्राह्मण ही पढ़ने-पढ़ाने का कम कर सकते थे, लेकिन वे मुसलमानों के भय

से अपनी परंपरागत शिक्षा की व्यवस्था समाप्त कर चुके थे। इस तरह से भारत की सामान्य जनता अनपढ़ हो चुकी थी। पंजाब में तो हिन्दुओं की शिक्षा की स्थिति सबसे बुरी थी। हिन्दू तो अपने हिसाब-किताब के बहीखाते हिन्दी मुन्डी (लुण्डी) लिपि में लिखने लगे थे। लेकिन यह एक अपूर्ण लिपि थी। इस लिपि में लिखा कुछ जाता था, लेकिन पढ़ने वाला उसे कुछ और पढ़ सकता था। उस लिपि में कुल बारह ही अक्षर होते थे।

हकीकत राय बहुत तीव्र बुद्धि का बालक था। उसके पिता उसे उच्च शिक्षा देना चाहते थे। लुण्डी केवल एक लिपि थी भाषा नहीं थी, अतः वह इस लिपि से सन्तुष्ट न थे। लेकिन उनके समक्ष एक समस्या बहुत जटिल थी। वहाँ आस-पास कोई हिन्दुओं का स्कूल नहीं था, जहाँ हकीकत राय को हिन्दी या संस्कृत पढ़ाई जा सकती थी। वहाँ केवल मुल्लाओं के मकतब थे, जहाँ मुसलमानों के छात्र अरबी, फारसी का अध्ययन किया करते थे। जब हकीकत राय की आयु ग्यारह वर्ष की हो गई तो उसके पिता ने उसे अरबी, फारसी पढ़ने एक मुल्ला के मकतब में भेज दिया। उसने वहाँ दो वर्ष तक अध्ययन किया। जब उसकी उम्र तेरह वर्ष की हो गई तो उसके माता-पिता ने उसका विवाह एक लक्ष्मी नाम की नौ वर्ष की कन्या के साथ कर दिया।

लक्ष्मी के माता-पिता अमृतसर के समीप बटाला नगर के निवासी थे। उस समय की परंपरा के अनुसार कम उम्र में ही विवाह हो जाते थे। भले ही लड़की कुछ जवान होने पर ही ससुराल भेजी जा सके। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि कम आयु में ही लड़की ससुराल भेज दी जाती थी, लेकिन कम आयु के कारण उसे पति के साथ नहीं रखा जाता था, यद्यपि वे जानते थे कि वे पति-पत्नी हैं। इसी परंपरा के अनुसार विवाह के उपरान्त हकीकत राय की पत्नी लक्ष्मी को सियालकोट ले आया गया।

हकीकत राय के विवाह के कुछ समय उपरान्त मुल्ला के मकतब में छात्रों में झगड़ा हो गया। झगड़े के दो पक्षों में से एक पक्ष अकेले हकीकत राय का था और दूसरा मुस्लिम छात्रों का। हकीकत राय पढ़ने में बहुत तेज थे। इस कारण मुस्लिम छात्र उनसे ईर्ष्या करते थे। वे उनकी पढ़ाई में बाधा भी डालते रहते थे। हकीकत राय उनकी इस प्रवृत्ति से बहुत दुखी

थे, लेकिन अकेला होने के कारण कुछ कह नहीं सकते थे। वह निडर तो थे, लेकिन संघर्ष से बचने का प्रयत्न करने में ही अपना हित समझते थे। एक दिन मुल्ला जी कुछ देर के लिए बाहर चले गए। बस, फिर क्या था! मुस्लिम छात्रों को हकीकत राय को तंग करने का अवसर मिल गया। उनमें से एक ने कहा, ''हकीकत राय, तुम हर समय क्यों पढ़ते हो।''

''क्या हर समय पढ़ना बुरा है?'' हकीकत राय ने विनम्र भाव से कहा

''हाँ, अति हर चीज़ की बुर होती है।''

''मुझे पढ़-लिख कर कुछ करना है, इसलिए मुझे पढ़ने में कुछ ज्यादा समय लगाना ही पड़ेगा।''

''इसका मतलब हमें कुछ नहीं करना है।''

''मैंने ऐसा कब कहा है। मैंने केवल अपने सम्बन्ध में बताया है। तुम चाहो तुम भी पढ़ लो, मैं कौन रोकने वाला हूँ।''

''लेकिन खेलना भी तो जरूरी है।''

''फिर खेलो, मुझे क्या आपत्ति है।''

''हम तो खेल ही लेंगे, लेकिन तुम क्यों नहीं खेलते?''

''मुझे खेलने में रुचि नहीं है।''

''किताब का कीड़ा ही बनने में है।''

''कुछ भी समझ लो, लेकिन मुझे पढ़ने दो।''

''हम तुझे पढ़ने नहीं देंगे। हम खेलेंगे और तू पढ़ेगा। इससे तू पढ़ाई में हमें पीछे छोड़ देगा। हम पीछे क्यों रहे। तुम्हें हमारे साथ खेलना पड़ेगा।''

''मुझे तंग मत करो। मैंने कह दिया न, मैं नहीं खेलूँगा।''

''और यदि हम तुझे बलपूर्वक खेल के मैदान में ले जाएँ।''

''मैं तुम्हारी शिकायत मुल्ला जी से कर दूँगा।''

''कभी ना करे!'' एक छात्र ने धमकाते हुए कहा।

''मुझे बंदर घुड़की दिखाते हो! क्या मैं इस घुड़की से डर जाऊँगा। यदि तुमने मुझे तंग किया तो मैं भवानी की कसम उठाकर कहता हूँ कि तुम्हारी शिकायत मुल्ला जी से कर दूँगा।

''उस हरामजादी को लाओ तो सही, उसे भी हम देख लेंगे कैसी है

तेरी भवानी।''

''भवानी हमारी आराध्या देवी है। उसे गाली दोगे तो अच्छा नहीं होगा।''

''क्या कर लेगा? लो फिर दे रहे हैं—वह हरामजादी है! हरामजादी है!! हरामजादी है!!!''

''फिर तो तुम्हारी फातिमा भी हरामजादी है।''

हकीकत राय ने उनके उकसाने में आकर फातिमा को गाली दे दी। बस, यही उस घटना का मूल कारण बन गया, जिससे बलिदान के इतिहास में हकीकत राय का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिख दिया।

लेकिन इस गाली से मुस्लिम छात्र उत्तेजित हो गए। वे गरज कर बोले, ''तो तूने हमारी फातिमा को गाली दे दी?''

''नहीं, यह गाली नहीं हैं, बल्कि तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है।''

''इसका परिणाम जानते हो?''

''जब तुम परिणाम की चिन्ता नहीं करते तो मैं क्यों करूँ।''

''तू हमारी बराबरी करता है? तू हिन्दू हैं, काफिर है और एक काफिर इस्लाम पर कीचड़ उछाले, यह बर्दाशत के काबिल नहीं है। तुझे उसका परिणाम भोगना पड़ेगा।''

बच्चों के इस संघर्ष ने बाद में चलकर क्या रूप लिया, इसकी गाथा आगे बताएंगे, पहले यह फातिमा कौन थी और क्या यह भवानी देवी के समकक्ष थी, पहले थोड़ा इस पर विचार कर लेते हैं। मुहम्मद, जिन्होंने बाद में स्वयं को पैगम्बर घोषित किया और इस्लाम धर्म का प्रर्वत्तक बना अपने यौवन काल में मक्का के किसी सौदागर की सेवा में नियुक्त हो गया था। वह सौदागर प्रौढ़ावस्था का व्यक्ति था, जबकि उसकी पत्नी खदीजा बीबी जवान थी। मुहम्मद ईमानदार व्यक्ति था और उसके कारण उस सौदागर को व्यापार में काफी लाभ हो रहा था। एकदिन उस सौदागर की मृत्यु हो गई। खदीजा बीबी पहले से ही मुहम्मद की ईमानदारी से प्रभावित थी, अतः उसने मुहम्मद से शादी रचा ली। यह उम्र के दृष्टिकोण से अनमेल विवाह था। खदीजा बीबी मुहम्मद से उम्र में दुगनी बड़ी थी।

मुहम्मद की खदीजा बीबी से कोई सन्तान नहीं थी, किन्तु उस पूर्व

पति से खदीजा की तीन सन्तानें थी—दो पुत्र और एक पुत्री। उसी पुत्री का नाम फातिमा था। वह भले ही मुहम्मद की सन्तान नहीं थी, लेकिन उनके संरक्षण में ही पल रही थी। इसी फातिमा को हकीकत राय ने गाली दी थी। उन मुस्लिम छात्रों ने हकीकत राय को गाली देने का दुष्परिणाम भोगने की चेतावनी तो दे ही डाली थी, उससे आगे बढ़कर मुल्ला जी के आने से पहले ही उसकी पिटाई भी कर दी थी। लेकिन वे पिटाई से भी सन्तुष्ट नहीं हुए थे, मुल्ला जी के आने पर उन्होंने हकीकत राय की शिकायत उनसे कर दी।

मुल्ला जी एक अध्यापक के नाते विनम्र स्वाभाव का व्यक्ति था, लेकिन डरपोक प्रवृत्ति का था। उसने मुस्लिम बच्चों की शिकायत सुनी और फिर हकीकत राय से भी बातें की। हकीकत राय ने वास्तविक घटना को मुल्ला जी के समक्ष रखा। मुल्ला जी ने इसे बच्चों का एक सामान्य झगड़ा मानते हुए मामला शान्त कर दिया। लेकिन मुल्ला जी के इस निर्णय से वे बच्चे सन्तुष्ट नहीं हुए। वे हर हालत में हकीकत राय को दंडित कराना चाहते थे। उन्होंने मुल्ला जी पर दबाव बनाया कि या तो वे हकीकत राय को दंडित करें, अन्यथा उनकी शिकायत नगर काजी से कर देंगे। मुल्ला जी बच्चों के इस व्यवहार से डर गए। उन्हें पता था कि नगर काजी एक कट्टर स्वभाव का व्यक्ति है और उसका न्याय पारदर्शी नहीं हैं। यदि बच्चे इस शिकायत को काजी के पास ले जाते हैं तो काजी हकीकत राय को कड़ा दंड़ दे सकता है। एक दूसरी संभावना पर भी मुल्ला जी ने विचार किया कि यदि ये छात्र काजी से शिकायत न भी करें और काजी को किसी अन्य माध्यम से पता चल जाए कि मुल्लाजी के समक्ष एक हिन्दू छात्र ने इस्लाम का अपमान किया है और उस छात्र को मुल्ला जी ने कोई दंड नहीं दिया है तो काजी उसे ही इस्लाम की निन्दा करने वाले एक हिन्दू को प्रोत्साहित करने का अपराधी सिद्ध कर देगा और उसके विरुद्ध फतवा दे देगा।

भारत के मुस्लिमों का शासन स्थापित होने के बाद यहाँ दोहरी शासन प्रणाली प्रचलित हो गई थी। पहले से ही इस्लामिक देशों में शासन में धर्म का पूर्ण हस्तक्षेप होता था। एक प्रकार से वहाँ धर्म और शासन

दोनों एक ही थे। नगर काजी भी उसी शासन का अंग होते थे, लेकिन वे केवल साम्प्रदायिक विषयों में मुस्लिम विधि-विधान के अनुसार अभियोगों की सुनवाई करते थे। साम्प्रदायिक अथवा मजहबी विवादों पर दिया जाने वाला निर्णय फतवा कहलाता था। मुल्ला जी इस फतवे से डर गए और छात्रों के हंगामा मचाने पर स्वयं ही इस विवाद को लेकर नगर काजी के पास पहुँच गए। उसके साथ वे सभी मुस्लिम छात्र थे, जिन्होंने हकीकत राय को दुर्गा भवानी की गाली दी थी। काजी के न्यायालय में तब तक हकीकत राय के माता-पिता और अन्य दर्शक भी पहुँच गए थे। काजी ने पहले मुस्लिम छात्रों से पूछा, ''तुम्हारी कक्षा में झगड़ा हुआ?''

छात्रों ने उत्तर दिया, ''हाँ, यह सत्य है।''

''झगड़े का कारण बता सकते हो?''

''कारण स्पष्ट है। हकीकत राय ने हजरत मुहम्मद की पुत्री फातिमा को हरामजादी कहकर अपमानित किया है।''

''क्यों हकीकत राय, तूने फातिमा के अपमान में कुछ कहा?''

''हाँ साहब, लेकिन मैंने इनके प्रश्नों का उत्तर दिया है। इन्होंने पहले हमारी आराध्या दुर्गा भवानी को हरामजादी की गाली दी थी। इसी की प्रतिक्रिया में मेरे मुख से फातिमा के लिए गलत शब्द निकल गया। लेकिन मेरे मन में फातिमा के प्रति बहुत सम्मान है।''

''हकीकत राय, क्या तू स्वीकार करता है कि तुझसे इस्लाम धर्म के प्रति अपराध हुआ?''

''मैंने जान-बूझकर इस्लाम का अपमान नहीं किया है। मैं इस्लाम का सम्मान करता हूँ। लेकिन अपने साथियों के उकसाए में आकर मुझसे ऐसा हो गया।''

नगर काजी ने हकीकत राय के माता-पिता की ओर देखते हुए कहा, ''तुम्हें इस सम्बन्ध में कुछ कहना है।''

''साहब, हकीकत राय की उम्र है ही कितनी? क्या इतनी उम्र में बच्चा किसी धर्म के अपमान या सम्मान के सम्बन्ध में कुछ कहने की स्थिति में हो सकता है। इसे अबोध बच्चे की शैतानी समझकर अधिक महत्त्व न दें।

''यह एक छोटे बच्चे की बाल सुलभ शैतानी है या नहीं यह तो मुल्ला जी को देखना था। लेकिन जब ये इस मुकदमे को मेरे पास ले ही आए तो इन्होंने इसे बाल सुलभ शैतानी न समझकर एक गंभीर अपराध माना है। अब मुझे इस पर अपना निर्णय देना ही होगा। मैं 'शरा' की पुस्तक में देखता हूँ कि यदि कोई गैर-मुसलमान इस्लाम का अपमान करता है तो उसके लिए क्या दंड है।''

काजी ने 'शरा' की पुस्तक निकाली और उसे शुरू से अन्त तक देख लिया, लेकिन उसमें गाली देने के अपराध में दिए जाने वाले दंड का कहीं विधान ही नहीं था। उसमें तो केवल यही लिखा था कि यदि कोई गैर-मुस्लमान इस्लाम का अपमान करता है तो उसे दोजख की आग में जलना पड़ता है। काजी ने इस केस में हकीकत राय का अपराध तो खोज लिया, क्योंकि उसने मुहम्मद साहब की पुत्री को गाली दी थी और मुहम्मद साहब इस्लाम के प्रवर्तक थे, अतः वह गाली इस्लाम का अपमान ही माना जाएगा। लेकिन इस अपराध का दंड जो दोजख की आग में लिखा है वह काजी की समझ में न आ सका।

काजी ने दंड के विधान की अस्पष्टता को देखते हुए नगर के अन्य आलिमों को अपनी सहायता के लिए आमंत्रित कर लिया। तब यह विचार किया जाने लगा कि 'शरा' के अनुसार गैर मुसलमान के क्या अधिकार है। काजियों ने अपनी शरा की किताब में देखा कि मूर्ति पूजकों के किसी देवता का मुस्लमानों द्वारा अपमान किए जाने का कहीं उल्लेख नहीं है। उन्होंने इसका सीधा अर्थ यह लगा लिया कि यदि कोई मुसलमान किसी हिन्दू देवता को गाली देता है, तो वह 'शरा' के अनुसार अपराध नहीं हो सकता। किन्तु इसके विपरीत 'शरा' में यह तो लिखा हुआ मिल ही गया था कि यदि कोई गैर-मुसलमान इस्लाम का अपमान करे तो वह दंडनीय अपराध है।

इस प्रकार 'शरा' के आधार पर विचार करने के उपरान्त इस केस में काजी द्वारा यह फतवा दिया गया कि एक मुसलमान का दुर्गा-भवानी को गाली देना अपराध नहीं है, परन्तु एक गैर-मुसलमान का हजरत मुहम्मद की लड़की को गाली देना घोर अपराध है। चूंकि हकीकत राय ने मुहम्मद

साहब की लड़की फातिमा को गाली दी है, तो अपराध किया है, अतः दंडित होने का अधिकारी है और उसका दंड है उसका दोजख की आग में जलना है।

यहाँ उलेमाओं ने दोजख की आग में जलने को स्पष्ट किया। इनका सर्व सम्मति से दोजख का अर्थ था तुरन्त कत्ल कर देना, क्योंकि कत्ल के बाद ही वह दोजख में जा सकता है, उस समय काजियों का यह न्याय मुसलमानों की दृष्टि में ही न्याय था क्योंकि वे इस्लाम को विश्व का सबसे श्रेष्ठ धर्म मानते थे और उसकी तुलना में हिन्दू धर्म को निकृष्ट इस दृष्टि से हिन्दू इस्लामिक शासन में दूसरे नम्बर के नागरिक थे। परन्तु हिन्दुओं की दृष्टि में यह अन्याय था। क्योंकि हकीकत राय ने स्वाभाविक रूप से गाली नहीं दी थी, अपितु गाली देने के लिए विवश किया गया था। उसकी आराध्या देवी को बिना कारण गाली देकर उसे क्रोधित किया गया था। उसका इस परिस्थिति में क्रोध करना और उनकी प्रतिक्रिया में फातिमा को गाली देना अपराध की श्रेणी में नहीं आता है।

इस न्याय में यह कितना बड़ा अन्याय था कि जिस अपराध के लिए हकीकत राय को दोषी ठहराया गया उसी अपराध के लिए मुसलमान छात्रों को दोष मुक्त कर दिया गया। लेकिन हिन्दू इस अन्याय के लिए आवाज नहीं उठा सकते थे, क्योंकि वे एक क्रूर जाति द्वारा शासित थे और निर्बल तथा असंगठित थे।

काजी के इस न्याय को तर्क संगत ठहराते हुए 'साहि इस्लाम' हदीस 122 में लिखा है कि पैगम्बर के पक्ष में किए गए कर्म इल्जाम से बरी होंगे। अर्थात् इस्लाम का नाम लेकर किया गया अन्याय भी न्याय कहलाएगा। हदीस की इस व्याख्या में दोष है या फिर हिन्दुत्व को नष्ट करने के लिए हदीस की यह गलत व्याख्या की गई है, इस बात को उठाने का साहस उस समय का हिन्दू नहीं कर सकता था।

काजी ने हकीकत राय के विवाद में फतवा देते हुए कह दिया कि 'शरा' के अनुसार हकीकत राय को मृत्यु-दंड दिया जाए और मुसलमान लड़कों के विपरीत कोई कार्यवाही नहीं की जाए, क्योंकि वे मुसलमान हैं और 'शरा' में मुसलमान पर किसी प्रकार के दोष का उल्लेख नहीं है। यह

न्याय एक अदालत का था, किन्तु इसके क्रियान्वयन का अधिकार नगर-हाकिम को था। काजी की अदालत से हकीकत राय को सियालकोट के हाकिम के सम्मुख उपस्थित किया गया।

धर्म किसी का क्रूर नहीं होता, लेकिन कुछ कट्टर धर्मान्ध व्यक्ति उसकी गलत व्याख्या करके उसे क्रूर बना देते हैं। ऐसा ही इस्लाम का हश्रर हुआ था, लेकिन धर्म कितना भी क्रूर हो जाए, उसके कुछ अनुयायी मानवीय मूल्यों को सम्मान देने का प्रयत्न करते हैं। नगर हाफिम ऐसी ही कारुणिक प्रकृति का व्यक्ति था। उसने काजी के न्याय को न्याय की प्रक्रियाओं का पालन करने वाला नहीं पाया। उसने अनुभव किया कि हकीकत राय के विरुद्ध अनुचित किया जा रहा है। उसने काजी से इस न्याय प्रक्रिया के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण माँगा। काजी ने इस न्याय को 'शरा' के नियमों के अनुसार सही सिद्ध कर दिया, लेकिन नगर हाकिम इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। नगर हाकिम का तर्क था कि भले ही इस न्याय में 'शरा' को आधार बनाया गया है। लेकिन उस बच्चे की आयु को नहीं देखा गया है। नगर हाकिम काजी के इस न्याय का क्रियान्वयन रोकना चाहता था, लेकिन उस पर 'शरा' के नियमों के पालन का दबाव बना दिया गया। नगर हाकिम ने उस पर कोई निर्णय न लेते हुए इस केस को मानवीय दृष्टिकोण से सुलझाने का प्रयत्न किया। उसने काजी से इस न्याय का कोई दूसरा विकल्प सुझाने को कहा। काजी ने तर्क दिया कि यदि हकीकत राय इस्लाम स्वीकार करले तो वह इस सजा से बच सकता है, क्योंकि उस अवस्था में यह अपराध क्षमा योग्य हो जाएगा।

काजी का यह निर्णय भी 'शरा' के अनुसार ही था। 'शरा' में उल्लेख है कि गैर मुसलमान के लिए जो दंडनीय है, वह मुसलमानों के लिए नहीं है। इस प्रकार से यदि हकीकत राय मुसलमान बन जाए, तो वह इस्लाम का ही अंग हो जाएगा तब इसका अपराध दंडनीय नहीं होगा।

नगर हाकिम काजी के इस विकल्प से भी संतुष्ट नहीं था। वह ऐसा विकल्प चाहता था, जिसमें हकीकत राय को मृत्यु दंड न देकर कुछ दिनों की सजा का प्रावधान हो, लेकिन काजी के पास कोई ऐसा दंड नहीं था। फिर भी नगर हाकिम ने इस जघन्य कृत्य से स्वयं को अलग करते हुए

इस विवाद को सूबे के हाकिम के पास भेज दिया।

इस पर हकीकत राय को बन्दी बनाकर लाहौर लाया गया। हाकिम ने सियाल कोट नगर के काजी तथा वीर हकीकत राय के माता-पिता को भी सूबा अधिकारी के न्यायालय में उपस्थित होने का आदेश कर दिया।

लाहौर का हाकिम भी मानवीय मूल्यों को महत्त्व देने वाला व्यक्ति था। वह मुसलमान जरूर था, परन्तु धार्मिक कट्टरता से मुक्त था। लाहौर हाकिम ने न्याय प्रक्रिया प्रारंभ करते हुए काजी से हकीकत राय के अपराध पर प्रकाश डालने को कहा। काजी ने उस घटना का वर्णन कर दिया और अपने न्याय को सही ठहराया। लेकिन हाकिम उसके न्याय से संतुष्ट न हो सका। उसने कहा कि यह तो माना जा सकता है कि न्याय 'शरा' के अन्तर्गत है, लेकिन 'शरा' में कहाँ लिखा है कि इस अपराध की सजा मृत्युदंड है।

काजी ने कहा, ''मान्यवर, 'शरा' में लिखा है कि अपराधी को दोजख की आग में जलना होगा।''

''लेकिन इससे प्राण दंड कहाँ सिद्ध होता है?''

''मृत्यु के बाद ही तो कोई अपराधी दोजख में जा सकता है।''

''नहीं, यह तुम्हारी निजी व्याख्या है, यह न्याय संगत नहीं मानी जा सकती।''

''मान्यवर, यदि कोई गैर-मुस्लिम इस्लाम पर कीचड़ उछाले तो वह काफिर सिद्ध नहीं हो जाता और काफिर के लिए क्या सजा है, यह सर्वविदित नहीं है?''

''लेकिन यह बच्चा है। न्याय प्रक्रिया में इस बात कर भी तो ध्यान

रखना चाहिए था। बच्चा दंडनीय हो सकता है, किन्तु उसका दंड मृत्यु हो, ऐसा 'शरा' से सिद्ध नहीं हो सकता। क्यों न इसकी सजा को कुछ कम कर दिया जाए।''

''मान्यवर कम ही नहीं, यह सजा से मुक्त भी हो सकता है, लेकिन इसे इस्लाम स्वीकार करना पड़ेगा। यह विधान 'शरा' के अन्तर्गत दिया गया है।''

''यह विकल्प उचित लगता है, क्यों न हकीकत राय से पूछ लिया जाए।''

''पूछना ही नहीं, इसे सहमत करना पड़ेगा। तभी यह मृत्यु दंड से मुक्त हो सकता है।''

हाकिम ने हकीकत राय की ओर मुखातिब होते हुए कहा, ''हकीकत राय, तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जाते?''

हकीकत राय ने कहा, ''मुझ पर जो अभियोग लगाया गया है, उसका सम्बन्ध मत परिवर्तन से नहीं है।''

''तुम्हारा तर्क सही है, लेकिन प्रश्न तुम्हारे जीवन बचाने का हैं और वह तभी बच सकता है यदि तुम इस्लाम स्वीकार कर लो।''

''प्राण मेरा जीवन नहीं है बल्कि हिन्दुत्व मेरा जीवन है। फिर आप मुझे कैसे बचा सकोगे? मान्यवर, मेरी आस्थाओं पर आक्रमण मत करो इस न्याय प्रक्रिया में कहीं दोष देखो, उसे ठीक करो, मैं स्वयं बच जाऊँगा।''

''ठीक है, एक सप्ताह बाद तुम्हारे मुकदमें की सुनवाई होगी। तब तक के लिए तुम्हें जमानत प्रदान की जाती है।

सूबे के हाकिम से काजी नाराज हो गया और उसे विश्वास हो गया कि अगली सुनवाई में वह हकीकत राय को दंड-मुक्त कर देगा, अतः उसने जुम्मे की नमाज के बाद यह विषय मस्जिद में एकत्रित हुए नमाजियों के समक्ष रख दिया। उसने लाहौर हाकिम पर यह आक्षेप लगा दिया कि वह 'शरा' के नियमों में छेड़-छाड़ करना चाहता है और इस्लाम पर आक्षेप करने वाले एक हिन्दू अपराधी पर रहम दिखाकर उसे सजा-मुक्त करना चाहता था।

सब नमाजियों ने एक स्वर से कहा कि लाहौर हाकिम को 'शरा' में छेड़-छाड़ करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि वह ऐसा करता है तो उसके विरुद्ध आवाज उठाई जाएगी। 'अगली तारीख पर सभी को न्यायालय में पहुँचकर क्यों न उस पर दबाव बनाया जाए,' यह निर्णय सर्व सम्मति से पारित कर दिया गया।

तारीख के दिन सभी मुसलमान न्यायालय में उपस्थित हो गए। भीड़ को देखकर न्यायधीश ने कहा, ''यहाँ सब किस लिए एकत्रित हुए हो?''

भीड़ के मुखिया ने कहा, ''हम यहाँ इंसाफ होना देखने आए हैं।''

''क्या यहाँ इंसाफ होने नहीं जा रहा है?''

''इसमें लोगों को संदेह हो गया है।''

''आप किस आधार पर यह बात कह रहे हैं?''

''नगर में लोगों को यह शक हो गया है कि सूबा हाकिम को हिन्दुओं द्वारा बहुत बड़ी धनराशि रिश्वत में दी गई हैं। इसलिए वह काजी की बात को न मानकर 'शरा' का मनचाहा दुरुपयोग करना चाहता है।''

सूबा हाकिम मुखिया की धमकी सुनकर डर गया। वह स्वयं भी दिल्ली के शहंशाह के अधीन था। वह जानता था कि यदि इसकी शिकायत दिल्ली भेज दी गई, तो वह रिश्वत के केस में फँस जाएगा, भले ही यह झूठा केस हो। इसका परिणाम यह होगा कि उसकी सूबेदारी तो जाएगी ही, प्राण-दंड तक भी दिया जा सकता है। लेकिन वह हकीकत राय को निर्दोष मानते हुए उसे राहत देना चाहता था, अतः उसने हकीकत राय को समझाया कि वह इस्लाम स्वीकार कर ले, परन्तु हकीकत राय ने इस्लाम स्वीकार करने से मना कर दिया।

लाहौर हाकिम की आत्मा उस पर दबाव बना रही थी कि वह मुसलमानों की भीड़ से न डरे और न्याय करे, लेकिन न्याय तो हकीकत को निर्दोष घोषित करके सजा-मुक्त करना था। वह ऐसा करके स्वयं को विपत्ति में भी नहीं धकेलना चाहता था। उसने न्याय प्रक्रिया से हटकर भी अपने निजी प्रयास से हकीकत राय पर इस्लाम स्वीकार करने के लिए पुनः दबाव बनाया। उसे आर्थिक लालच दिया गया। माता-पिता की प्रसन्नता की बात की गई। पत्नी के सुहाग के विषय में कहा गया, लम्बे जीवन की

सुख सुविधा की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया गया और ऊँची नौकरी सुरक्षित करने के लिए बाध्य किया गया, लेकिन उसने ऋषियों की इस संस्कृति के प्रति विश्वासघात करना स्वीकार नहीं किया।

अब लाहौर के सूबेदार के समक्ष और कोई रास्ता नहीं रह गया था। उसे अपनी आत्मा के विरुद्ध सियालकोट के काजी के फतवे द्वारा निर्धारित दंड को ही स्वीकार कर हकीकत राय को प्राण दंड की आज्ञा देनी पड़ी।

हकीकत राय ने अविचलित धैर्य से वह दण्ड-आज्ञा सुनी, पर उसके माथे पर शिकन तक नहीं पड़ी। उस समय उस वीर बालक की माता वहाँ रोती हुई पहुँची और उसे बहुत समझाया कि, ''हाय बेटा! क्या तुझे इसी दिन के लिए पैदा किया था, कि तू कत्ल किया जाए? अरे बेटा! तू माफी माँग ले और मुसलमान होकर ही जीवित रह जिससे मैं कभी-कभी तुझे देखकर अपनी आंखें तो ठंडी कर लूँगी।''

पर वह वीर बालक अमरत्व का बीज अपनी आत्मा में धारण किए हुए मृत्यु का प्याला पीने को तैयार था। उसने निर्भीकतापूर्वक कहा, ''अरी माता! मैं धर्मक्षेत्र में खड़ा हुआ। धर्म की उपासना ही सदा करता रहा हूँ। तूने ही मुझे प्राचीन पवित्र ऋषियों-मुनियों की गाथाएँ सुनाकर धर्म के लिए तैयार किया था। अब मैं उस पवित्र धर्म के मार्ग से कदापि विचलित न होऊँगा। मैं इस्लाम कदापि स्वीकार न करूँगा। धर्म के लिए एक प्राण क्या यदि ऐसे हजारों प्राण भी मुझे बलि चढ़ाने पड़ें, तो भी मैं खुशी से उसके लिए तैयार रहूँगा।''

इसके बाद मामला लाहौर के नवाब के सामने आया। नवाब ने हकीकत राय को बड़े-बड़े प्रलोभन दिए। हूर और गिलमा का दृश्य दिखाया, फिर तलवार का भय भी दिखाया, पर उस धीर-वीर-गंभीर बालक ने अपना व्रत न बदला। नवाब, काजी और मुल्ला सबने ही इस्लाम और कुरान के बड़े गुण-गान किये, पर वह बालक घृणा के साथ उनका उपहास करता रहा। माता ने बालक को बहुत समझाया, पर उस हठीले बालक ने एक न सुनी। वह मुसलमानों और मुल्लाओं को अपना गला दिखाता और कहता कि जल्दी इसे काट लो, जिसमें तुम्हारा दीन इस्लाम अधूरा न रह जाए।

माता के साथ बालक के सम्बंधी और हिन्दू लोग सभी रो रहे थे, पर वीर हकीकत राय प्रसन्नचित्त खड़ा होकर जल्लाद के वार की प्रतीक्षा कर रहा था। अन्त में वह दुःखदायी घड़ी भी आई, जब साक्षात् राक्षस की तरह भयानक जल्लाद अपनी तलवार उस बालक की कोमल गर्दन पर तौलने लगा। एक ही बार में उसका सिर कटकर गिर गया। सब तरफ त्राहि-त्राहि मच गई! उस निरपराध, अबोध बालक हकीकत राय को मारकर कट्टरवादियों ने अपने शासन का जनाजा तैयार करने में एक और कील ठोंकी।

"वाहे गुरु की फतह" कहता हुआ, बालक हकीकत राय अपने धर्म पर कुर्बान हो गया। मुसलमानों का अत्याचारी शासन भी अब न रहा, और न उनकी इस्लामी शरीअत अब किसी अदालत में मानी जाती है, पर धर्म के लिए बलिदान होने वाले हकीकत राय का नाम अब तक विद्यमान है, और जब तक इस पृथ्वी तल पर हिन्दू जाति जीवित है, तब तक उस राम-कृष्ण के प्यारे भक्त हकीकत राय का भी नाम अमर रहेगा।

बलिदान होने वाली वीरात्माएँ जितनी संयमी और दृढ़ निश्चयी होती हैं, उतनी ही वे शुद्ध और पवित्र भी होती हैं। संयम और दृढ़ निश्चय के बिना आत्मिक शुद्धता और निर्मल पवित्रता नहीं आ सकती। सच्ची साधना भी तभी हो सकती है, इसलिए विवेकी और ज्ञानी पुरुष आत्मा की शुद्धता के लिए सदा आग्रह करते हैं। वही शुद्ध आत्मा वाला पुरुष सफल बलिदान कर सकता है, जिसने कभी संयम किया हो। देश, जाति और धर्म की पूर्ण सफलता तभी सिद्ध होगी, जब सहस्रों लक्ष्य संयमी आत्माएं हँसते-हँसते बलिदान के लिए तैयार हों! शहादत का प्याला पीना सभी के भाग्य में बदा है, यदि सब संयमी और दृढ़ विचार वाले हों।

इस सजा के क्रियान्वयन में हकीकत राय को लाहौर नगर के बाहर

रावी के किनारे पर नगर से तीन मील दूर तलवार से कत्ल कर दिया गया।

हत्या के उपरान्त हकीकत राय का शव उनके परिजनों को सौंप दिया गया। उन्होंने वहीं रावी के तट पर उनका अन्तिम संस्कार कर दिया इस्लाम के अत्याचार पर एक हिन्दू बालक के बलिदान को चिरस्मरणीय बनाने के लिए रावी के तट पर उनकी समाधि बनाई गई। उसके बाद वहाँ लाहौर के हिन्दुओं ने मेला लगाना प्रारंभ किया। बसन्त पंचमी के दिन जब हकीकत राय की हत्या की गई थी, प्रतिवर्ष लाहौर के हिन्दू वहाँ एकत्रित होकर हिन्दू संस्कृति के इस महान उपासक के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते थे। वीर हकीकत राय ने अपने बलिदान से सिद्ध कर दिया था कि हिन्दू संस्कृति को न तलवार से काटा जा सकता था और न इस्लाम के अत्याचार से मिटाया जा सकता था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती आधुनिक भारत के चिन्तक तथा आर्य समाज के संस्थापक थे। उनके बचपन का नाम 'मूलशंकर' था। 'वेदों की ओर लौटो' यह उनका ही दिया हुआ प्रमुख नारा था। उन्होंने कर्म सिद्धान्त, पुनर्जन्म तथा सन्यास को अपने दर्शन के स्तम्भ बनाए। उन्होंने ही सबसे पहले 1876 में 'स्वराज्य' का नारा दिया। बाद में लोकमान्य तिलक ने इसे आगे बढ़ाया। प्रथम जनगणना के समय स्वामी जी ने आगरा से देश के सभी आर्यसमाजों को यह निर्देश भिजवाया कि सब सदस्य अपना धर्म 'सनातन धर्म' लिखवाएँ। ऐसे महान महर्षि को भी अपने जीवन का बलिदान देश और धर्म की रक्षा करते हुए देना पड़ा, यह देश का दुर्भाग्य ही था।

स्वामी दयानन्द को कुल मिलाकर सत्रह बार जान से मारने की चेष्टा की गई। एक बार जब वे अनूप शहर में पहुँचे तो वहां अपने प्रवचनों की अमृत वर्षा की। यहां उनके एक विरोधी ने पान में विष देकर मारने का षड्यंत्र रचा। दयानन्द ने न्योली क्रिया द्वारा विष निकाल दिया, लेकिन यह घटना पूरे शहर में जंगल की आग की तरह फैल गई। यहां के तहसीलदार सर सय्यद अहमद दयानन्द के परम भक्त बन गये थे, जब उन्हें इस घटना का पता चला तो, उन्होंने अपराधी को गिरफ्तार कर लिया और उसे स्वामी दयानन्द के सामने उपस्थित किया, ''भगवन! आपका अपराधी आपके सामने है, आप कहें तो इसे आपको मारने की चेष्टा में मृत्यु-दंड दिलवा दिया जाए या आजन्म कैद में डाल दिया जाए।''

''इसे छोड़ दो।'' दयानन्द बोले, ''मैं संसार को कैद कराने नहीं, कैद से मुक्त कराने आया हूं।''

महर्षि दयानन्द निर्भय होकर अपना काम करते रहे। उन्हें मृत्यु का भय तो था ही नहीं।

जोधपुर जाते हुए किसी ने महर्षि दयानन्द सरस्वती से कहा, ''स्वामीजी! यह गंवारों का देश है। लोग समझेंगे कुछ नहीं और मुफ्त में प्राण हर लेंगे।'' स्वामीजी ने उत्तर दिया, ''गंवारों को समझाना ही तो मेरा मुख्य काम है। तुम कहते हो, वे मार डालेंगे। यदि वे मुझे जीते हुए की एक-एक अंगुली को काट लें तो मेरा जीवन सफल होगा।''

स्वयं राजा ने स्वामीजी को राजमहल में बुलाया था। स्वामीजी वहां गए तो वह शिष्य बन गया और उनसे राजधर्म की शिक्षा लेने लगा। धीरे-धीरे उसका आचार भी सुधरने लगा। और वे राष्ट्रहित में सोचने लगे। स्वामीजी ने सुना कि राजा ने एक वेश्या नन्हीं जान रखी हुई है। एक दिन दरबार में वेश्या नन्हीं जान की पालकी दिख गई। स्वामीजी से न रहा गया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि, ''शेर के लिए कुतिया का संग बहुत बुरा है।''

राजा पर तो इस डांट-डपट का प्रभाव अच्छा पड़ा, वह वेश्या से विमुख हो गया, पर वेश्या झट स्वामीजी की बैरिन हो गई। उसने कई राज-मन्त्रियों को अपनी तरफ गांठा और एक शत्रु-मण्डली सी बना ली। उसकी सलाह हुई कि स्वामीजी को विष दिया जाए। स्वामीजी के रसोईये जगन्नाथ को 500 रुपया देकर उससे दूध में कांच और पारा मिला हुआ विष दिलवाया गया। स्वामीजी को विष चढ़ गया और वे रोगी हो गए। दुर्भाग्य यह था कि जो डॉक्टर औषधि देने को आया, वह भी उसी शत्रु-मण्डली से मिला हुआ था। स्वामीजी का हाल दिनों-दिन बिगड़ता चला गया। दिन में बीसियों दस्त आते थे। शरीर दुर्बल हो गया। फोड़ों से शरीर कुरूप हो गया। क्षण-क्षण में मूर्छा आने लगी। पेट से लेकर मुख तक शरीर के भीतर और बाहर सारे शरीर पर छाले हो

गए। न बोला जाता था, न सांस ही लिया जाता था; भयंकर दर्द का कुछ ठिकाना ही न था। चिकित्सक अचम्भे में थे, ये जी किस तरह रहे हैं। स्वामीजी महीना-भर से कुछ ऊपर इस हालत में रहे, पर हाय तक नहीं की। चुपचाप सब सह गए। जोधपुर से आबू आए तो पालकी पर, वहां से अजमेर गए तो पालकी पर। अजमेर में दीपावली के दिन हजामत कराई, शरीर साफ कराया। उस दिन एक क्षण स्वामी को अकेला देख रसोईया उनके चरणों में गिर पड़ा, ''प्रभु, क्षमा करें, मैंने ही विष दिया है।'' जगन्नाथ ने उनके सामने अपना अपराध माना और पांवों पर गिरकर प्रार्थना की, ''क्षमा कीजिए। मारा तो मैं जाऊंगा ही। यदि आप क्षमा कर दें, तो सन्तोष में मरूंगा।''

स्वामीजी ने उसे उठाकर अपने हाथों से पानी पिलाया और 500 रुपये देकर कहा, ''ले, नेपाल देश भाग जा। वहां तुझे कोई न पकड़ेगा। मेरा मरना निश्चित है। सो किसी को शंका न होगी।'' उठकर प्रार्थना की। कुछ देर वेदमंत्रों का पाठ करते रहे। अन्त में कहा, ''हे ईश्वर! तूने अच्छी लीला की। ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो'' और प्राण छोड़ दिए। उस समय महर्षि दयानन्द सरस्वती की आयु उनसठ वर्ष की थी।

पंडित लेखराम

संसार में अनेक संस्कृतियों ने जन्म लिया है। वे कुछ समय तक फली-फूली भी लेकिन उनमें से अधिकांश असमय में ही अपना अस्तित्व गवाँ बैठी। जब एक अन्य सशक्त संस्कृति ने उन पर आक्रमण किया तो वे इसके समक्ष टिक न सकी और पराजित होकर अन्त को प्राप्त हुई। लेकिन वैदिक संस्कृति, जो धीरे-धीरे हिन्दू संस्कृति कहलाने लगी, किसी भी क्रूर-से-क्रूर संस्कृति से पराजित नहीं हो सकी। उसकी ज्योति निरंतर उसी अजेय रूप में जलती आ रही है।

अब प्रश्न उठता है कि आखिर हिन्दू संस्कृति में ऐसी कौन-सी विशेष बात थी, जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी साहस के साथ क्रूर आक्रान्ता संस्कृतियों का सामना करती रही। उसकी सबसे बड़ी विशेषता थी बलिदान की भावना। उसके पास उसके अस्तित्व को बचाए रखने के लिए बलिदानियों की लम्बी श्रंखला रही है। जब-जब बाह्य आक्रान्ताओं ने उस पर आक्रमण किए, वीरों ने अपनी कुर्बानी देकर उसकी रक्षा की है। इस प्रकार यह संस्कृति की ज्योति शहीदों के रक्त से जलती आ रही है। जिस संस्कृति को सींचने के लिए वीरों के रक्त की नदियाँ बहती हों, उसे टेढ़ी नजरों से कौन देख सकता है। इस रूप में हिन्दू संस्कृति गंगा की भाँति युगों से बहती आ रही है और अनन्त काल तक बहती रहेगी, क्योंकि उसके सपूत पंडित लेखराम जैसे बलिदानी, युगों से जन्म लेते आ रहे हैं और युगों तक जन्म लेते रहेंगे। आओ! हम भी इस महान बलिदानी की कथा पढ़ें और अपने जीवन में उनके द्वारा स्थापित आदर्शों पर चलने के लिए प्रेरणा प्राप्त करें।

जिला जेहलम (जो अब पाकिस्तान में है) की तहसील चकवाल से आठ कोस पूर्व की ओर ऊँचे स्थान पर सैयद गाँव स्थित है। इस गाँव में

ही पं. लेखराम का जन्म हुआ। यह सवंत् 1915 विक्रमी के चैत्र ता. 8 का दिन था। उनके पिता का नाम महता तारासिंह था। तारा सिंह के पं. लेखराम के अलावा दो पुत्र और थे। उनके छोटे पुत्र श्यामसिंह बड़े पराक्रमी और स्वाभिमानी थे। उनके व्यक्तित्व का पं. लेखराम पर विशेष प्रभाव पड़ा। हिन्दुत्व का स्वाभिमान उस सम्पूर्ण परिवार की नसों में दौड़ रहा था। फिर पं. लेखराम उसके प्रभाव से कैसे अछूते रह सकते थे।

उस समय देश में शिक्षा की व्यवस्था ठीक नहीं थी। 5-6 वर्ष से कम आयु के बच्चे स्कूल में नहीं जा सकते थे। बालक लेखराम की आयु जब 6 वर्ष की हो गई, तो पिता ने उसे देहाती मदरसे में उर्दू और फारसी की शिक्षा दिलाने के लिए भेजा। उस समय वहाँ कोई हिन्दी माध्यम का स्कूल नहीं था। वैसे भी मुसलमानी राज्य के कारण वहाँ उर्दू और फारसी का चलन हो गया था। कोर्ट-कचहरी के सभी कार्य उर्दू और फारसी में होने लगे थे। अतः हिन्दू अभिभावक भी अपने बच्चों को इन्हीं भाषाओं का ज्ञान कराने में ही अपना हित समझने लगे थे। बालक लेखराम पढ़ने में बहुत तेज थे और अपनी योग्यता के बल पर उन्होंने पारितोषिक भी प्राप्त किए थे, परन्तु वह उस मदरसे में अधिक दिनों तक शिक्षा प्राप्त न कर सके। जब वह ग्यारह वर्ष के हुए तो अपने चाचा महता गण्डसिंह के पास पेशावर चले गए। उनके चाचा पुलिस विभाग में कार्यरत थे। उनके चाचा ने पढ़ाने के लिए एक मुसलमान अध्यापक रखा, लेकिन वह अध्यापक उन्हें पढ़ाता कम था और मुस्लिम संस्कारों में ढ़ालता अधिक था। लेकिन पंडित लेखराम उस अध्यापक का यह षडयंत्र भाप चुके थे। वह उनके षड्यंत्रों में तो फंसते क्या, उनके समक्ष ऐसे तर्क प्रस्तुत कर देते थे कि वह अध्यापक अवाक रह जाता था। अन्त में उस अध्यापक ने उन्हें पढ़ाना ही छोड़ दिया। तभी उनके चाचा पेशावर से कहीं और स्थानान्तरित कर दिए गए। इस प्रकार का सच के बीच में ही स्थानान्तरण उनकी पढ़ाई में बाधा बनने लगा, अतः वह वापिस सैयदपुर आ गए।

इस पूर्व संस्था में ही उनकी शिक्षा पुनः शुरू हुई, लेकिन एक बहुत बड़े परिवर्तन के साथ। उनका झुकाव अब ईश्वर-भक्ति की ओर हो चुका था। जब वह अपने चाचा के साथ थे, तो वहाँ उनका सम्पर्क उनके चाचा के साथी से हो गया था। वह पुलिसकर्मी पक्का ईश्वर-भक्त था और

पुलिस जैसी क्रूर नौकरी के उपरान्त भी वह ईश्वर के भजन गाया करता था। उसके व्यक्तित्व का किशोर लेखराम पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा और वे ईश्वर-भक्त बन गए। सत्रह वर्ष के बाद जब वह पुलिस की नौकरी में गए तो यह प्रभाव ज्यों का त्यों बना रहा। इसी अवधि में उन्हें गीता पढ़ने का शौक हो गया। गीता के प्रभाव से वह कृष्ण के पक्के भक्त बन गए और कृष्णलीला व रासलीलाओं में भाग लेने लगे। कृष्ण-भक्ति से सम्बन्धित अनेक विषयों पर वह अपने पुलिसकर्मियों, साथियों से शास्त्रार्थ करने लगे और शास्त्रार्थ का शौक इतना चढ़ा कि अपने अधिकारियों से भी शास्त्रार्थ करने से नहीं झिझकते थे।

अब वह पूर्णतया कृष्ण-भक्ति में लीन हो चुके थे। अपना जीवन कृष्णमय बनाने के लिए उन्होंने वृंदावन जाने का निश्चय कर लिया। जब उनकी माता को उनकी इस वैराग्य प्रवृत्ति का पता चला तो वे बहुत चिंतित हुई। उन्होंने पूरे परिवार की सहमति से उनके विवाह का निश्चय कर डाला। इस निर्णय में सबका यही तर्क था कि वह अपनी पत्नी की आसक्ति में वैराग्य को भूल जाएगा, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। उनकी एक कन्या से सगाई भी कर दी और उनके चाचा ने भी उनपर शादी का दबाव डाला, लेकिन वह टस-से-मस न हुए। हारकर उस कन्या का विवाह लेखराम के छोटे भाई तोताराम से कर दिया गया।

पं. लेखराम कृष्ण को ही भगवान का रूप मानकर समस्त सृष्टि का मूल मानते थे, लेकिन पंजाब के प्रसिद्ध सुधारक कन्हैयालाल अलखधारी की एक पुस्तक के अध्ययन ने उनकी आस्था बदल दी। उस पुस्तक से उन्हें ऋषि दयानन्द के विचारों का ज्ञान हुआ। उस समय समाचार-पत्रों में भी ऋषि दयानन्द के कार्यों की गाथा प्रकाशित हो रही थी। फिर क्या था! उन्होंने ऋषि-प्रणीत ग्रंथों को मँगाया और उनका अध्ययन किया। इन ग्रंथों के पढ़ने से वह ऋषि दयानन्द के अनुयायी हो गए और अपने को आर्य समाजी घोषित कर दिया।

अब उन्हें आर्य समाज के रूप में जीवन का एक नया पथ मिल चुका था और इस पथ पर उन्होंने निर्विघ्न दौड़ना शुरू कर दिया था। इस दौड़ के पहले पड़ाव के रूप में उन्होंने संवत-1937 में पेशावर में आर्य समाज की स्थापना कर दी और वहीं माईरंजी की धर्मशाला में रहना शुरू कर

दिया। पेशावर में आर्य समाज का प्रचारक था। मुस्लिमों का तो आर्य समाज से प्रभावित होने का प्रश्न ही नहीं था। लेकिन हिन्दू भी अधिकतर पौराणिक विचारों से ग्रस्त थे और धार्मिक आडम्बर उनके जीवन के अंग बने हुए थे। पं. लेखराम जिससे सम्पर्क करते उसे ही अपने तर्कों से सहमत कर लेते और उन्हें आर्य समाज का सदस्य बना लेते।

उन्होंने स्वामी दयानन्द के ग्रंथ भी पढ़े थे और उनके विचारों को साकार करने के लिए आर्य समाज का प्रचार भी वह कर रहे थे, लेकिन उनके अन्दर की एक लालसा अभी तक अधूरी बनी हुई थी। वह थी स्वामी दयानन्द के दर्शन करना। वह उनका फोटो समाचार पत्रों में देख तो लेते थे। परन्तु मन की सन्तुष्टि के लिए वह पर्याप्त न था। वह अपने सब संसाधनों से पता लगाने का प्रयत्न करते कि स्वामी दयानन्द कहाँ ठहरे हुए हैं, लेकिन सफलता न मिलती। आखिर एक दिन उन्हें पता चल ही गया कि स्वामी दयानन्द अजमेर में वाटिका में ठहरे हुए हैं। वह तुरन्त उनके दर्शन के लिए चल पड़े और सेठ फतेहमल की सेठ फतेहमल की वाटिका में उनके दर्शन किए। पं. लेखराम की कुछ शंकाएँ थी। स्वामीजी ने उनका निरकरण किया और कहा कि आर्य समाज का प्रचार तभी सार्थक होगा, यदि उनके सिद्धान्तों को अपने आचरण में उतार लिया जाए। उन्होंने पं. लेखराम को आशीर्वाद प्रदान किया और पच्चीस वर्ष से पूर्व विवाह न करने का परामर्श दिया।

पं. ऋषि के दर्शन के बाद आर्य समाज के प्रचार में पूर्ण उत्साह के साथ जुट गए, परन्तु अपेक्षित सफलता नहीं मिल पा रही थी। जगह-जगह पौराणिक की हठ धर्मिता उनके प्रयास को विफल बनाने की कोशिश करती, परन्तु वे निराश नहीं होते, बल्कि उससे भी अच्चे विकल्प की खोज में कुछ जोड़-तोड़ करने लगते। इसी जोड़-तोड़ में उनके मन में एक मासिक पत्र चलाने का विचार उत्पन्न हुआ। उनहोंने तुरन्त उसका क्रियान्वयन कर दिया और 'धर्मोपदेश' नामक मासिक पत्र चलाना आरम्भ कर दिया तथा इसके सम्पादक स्वयं बन गए। इस पत्र द्वारा उन्होंने सुसुप्त हिन्दू समाज को जाग्रत कर दिया और सभी लोग आर्य समाज के कार्यक्रमों में रुचि लेने लगे। धर्मोपदेश पत्र के बाद भी उनका व्याख्यान द्वारा प्रचार-कार्य

चलता ही रहा। उनका व्याख्यान इतना प्रभावशाली होता था कि उससे बहुत से लोगों पर स्थायी प्रभाव पड़ता था। एक बार उनका व्याख्यान महानिषेध पर चल रहा था। उसमें साधारण जनता के अलावा एक सेना का कप्तान भी सुनने के लिए आ गया। उन्होंने शराब द्वारा व्यक्ति की मानसिक, शारीरिक और आर्थिक क्षति का ऐसा विशद वर्णन किया कि उस कप्तान ने अपनी सेना में शराब पीना बिल्कुल बन्द कर दिया।

पुलिस की नौकरी, पत्र का सम्पादन और व्याख्यान की तैयारी में व्यस्त रहने के उपरान्त भी उनका लेखन व शास्त्रार्थ ज्यों का त्यों चलता रहा। नए सुपरिटेंडेंट के आने पर पं. का तबादला पेशावर से थाना सुआबी में कर दिया गया। यद्यपि सुआबी आने पर इनके पत्र के कार्य में कुछ समस्या आई, लेकिन उन्होंने हार न मानी। वहाँ रहकर भी पत्र के लिए लेख समय पर पहुँचाते रहे।

थाना सुआबी में जब एक बार पुलिस इन्स्पेक्टर निरीक्षण करने के लिए आया तो उसे पता चला कि लेखराम शास्त्रार्थ का महारथी है, अतः उन्होंने स्वतः ही लेखराम के साथ शास्त्रार्थ शुरू कर दिया, लेकिन लेखराम पराजय स्वीकार करने वाले कहाँ थे। उन्होंने इन्स्पेक्टर को ही शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया। इन्स्पेक्टर को यह सहन न हो सका। उसने लेखराम की पदोन्नति रोक दी। लेकिन लेखराम ऐसी घटनाओं से निराश होने वाले कहाँ थे।

आर्य समाज का प्रचार करते हुए उन्होंने एक दिन अनुभव किया कि नौकरी के कारण वह अपने प्रचार-कार्य को सहीं ढंग से नहीं कर पा रहे हैं और अपने व्याख्यानों में भी इतनी सावधानी बरतनी पड़ती है कि कहीं शासन-प्रशासन के विरुद्ध कोई बात मुख से न निकल जाए। उन्हें इस नौकरी में अभिव्यक्ति की दासता सी दिखाई दी, अतः उन्होंने 24 दिसम्बर 1884 ई. को पुलिस की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। अब वे स्वतंत्र थे, जो चाहे कह सकते थे, जहाँ चाहे जा सकते थे।

स्वामी दयानन्द के संज्ञान में यह बात आ चुकी थी कि पं. लेखराम आर्य समाज के लिए समर्पित व्यक्ति है और अपने पूरे प्रयास से आर्य समाज के प्रचार-प्रचार में दिन-रात एक किए हुए है, अतः उन्होंने पंडित

जी के पास दो पत्र प्रेषित किए। एक पत्र में गोरक्षा विषयक प्रार्थना-पत्र पर जनता के हस्ताक्षरों के लिए आदेशित किया गया था। दूसरा पत्र पंजाब में हिन्दी प्रचार के लिए शिक्षा आयोग को निवेदन पत्र भेजने के सम्बन्ध में था। पंडित जी के लिए यह कार्य उत्साहजनक था। उन्होंने पूर्ण निष्ठा से यह कार्य सीमित अवधि में ही कर दिखाया। वह निश्चय ही कर्म निष्ठ थे और रात्रि में भी आर्य समाज के कार्य में जुटे रहते थे। उनसे प्रेरणा लेकर अनेक युवक उनका सहयोग करने लगे थे, लेकिन उन्हें इस बात का दुख था कि हिन्दुओं के मन से कायरता नहीं निकल पर रही थी, क्योंकि आर्य समाज के प्रचार में जहाँ कोई बाधा आ जाती थी वे युवक पीछे हट जाते थे।

यह वह संवेदनशील समय था जब हिन्दुओं की कमजोरी को भाँपते हुए कुछ इस्लाम के कट्टरपंथी अनुयायी उनका धर्मान्तरण करने पर तुले हुए थे। उनका उद्देश्य समस्त भारत का स्लामीकरण करना था और अवसर मिलते ही वे चूकते भी नहीं थे। इसी प्रयास में मिर्जागुलाम अहमद कादियानी ने अपने को पैगम्बर घोषित कर दिया और बहुत से अन्य मतों के अनुयायियों को अपने जाल में फँसा लिया। इसी जाल में जम्बु के ठाकुरदास नामक हिन्दू को मुसलमान बनाने की प्रक्रिया के अन्तर्गत ले लिया और आर्य समाज जो ऐसे रूपान्तरण का विरोध करता आ रहा था, मिर्जा गुलाम अहमद ने अपनी रचना 'बुराहीन अहम दिया' में उस सिद्धान्तों पर ही आक्रमण कर दिया। कोई आर्य समाज पर इस प्रकार का आपत्तिजनक आक्षेप लगाए पं. लेखराम के लिए कैसे सहननीय हो सकता था। उन्होंने तुरन्त उसकी प्रतिक्रिया में लिखना आरम्भ कर दिया और उस आक्षेप को निर्मूल सिद्ध कर दिया। मिर्जा गुलाम अहमद ने जब यह मान लिया कि पं. लेखराम उनके धर्मान्तरण के कार्य में विध्न बनते जा रहे है, तो उसने अपना प्रयास और तीव्र कर दिया। धार्मिक पाखंडों का सहारा लेकर उसने नए-नए प्रपंच रचने शुरू कर दिए। उसने कादियाँ के एक हिन्दू विष्णुदास को बहकाया कि यदि एक वर्ष के अन्दर उसने इस्लाम स्वीकार नहीं किया तो मर जाएगा। विष्णुदास मृत्यु के भय से इस्लाम स्वीकार करने की स्थिति में आ गया। कुछ हिन्दुओं ने तार द्वारा इसकी सूचना पं. लेखराम को दी। पं. लेखराम के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न था। वह तुरन्त कादियाँ पहुँचे और विष्णुदास की शंकाओं का समाधान

कर उसे आर्य समाज का सभासद बनाया तथा साधारण जनता को मिर्जा गुलाम अहमद के षड्यंत्र से सचेत रहने को कहा।

मिर्जा गुलाम ने हिन्दुओं को प्रभावित करने के लिए एक पुस्तक 'सुरमा चश्य आरिया' के नाम से लिखी। पंडित लेखराम ने उसके उत्तर में पुस्तक 'नुस्ख खब्त अहमदिया' लिखी। मिर्जा गुलाम डाल-डाल थे तो पंडित लेखराम पात-पात। पंडित जी ने धर्मान्तरण में मिर्जा गुलाम को पूर्णतया विफल कर दिया।

मुस्लिम कट्टर पंथी ही नहीं, कुछ ईसाई पादरी भी हिन्दुओं को ईसाई मत में दीक्षित करने की योजना में जुटे हुए थे। वे दलित हिन्दुओं को सम्मान का जीवन देने के सब्ज बाग दिखा रहे थे। कुछ दरिद्र हिन्दुओं की आर्थिक सहायता कर रहे थे। जिससे कि ऐसे हिन्दू आसानी से ईसाई मत में दीक्षित हो जाएँ। इसी उद्देश्य के लिए पादरी खड़क सिंह ने छः व्याख्यान ईसाई मत के समर्थन में दिए, लेकिन पं. लेखराम चुप रहने वाले कहाँ थे। उन्होंने उन व्याख्यानों का खंडन छोटी-पुस्तकें प्रकाशित कराकर किया और ईसाई मिशनरीज की योजनाओं का भंडा-फोड़ कर दिया।

पंडित जी जहाँ एक ओर असाधारण विद्वान थे वहाँ दूसरी ओर वे एक वीर शहीद की भाँति निर्भीक और साहसी भी थे। ब्रहम समाज के नेता ने उनका नाम आर्यसमाज का अली रखा था। लाला मुंशीराम जी के निवास स्थान पर पंडित लेखराम जी उनसे मिलने उनके घर आए। लाला मुंशीराम जी उनदिनों आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान थे और पंडित लेखराम जी उस सभा के एक वैतनिक उपदेशक। आज आर्य समाज के अनेक अधिकारी आर्यसमाज के वास्तविक आजन्म सेवक को, जो असल में आर्यसमाज के प्राण हैं, केवल इसलिए सभा का वेतन भोगी सेवक समझते हैं क्यूंकि अपना सम्पूर्ण समय आर्यसमाज की सेवा में व्यय कर देने के कारण उनके लिए सभा से आजीविका मात्र वृति लेना आवश्यक होता है, परन्तु उन दिनों यह बात न थी। प्रतिनिधि सभा उन दिनों उपदेशकों का मान करना जानती थी। यहाँ तक कि सभा के अधिकारी प्रभावशाली प्रचारकों से चुपचाप डाँट खाने में भी अपनि मानहानि नहीं सनाझते थे। जब पंडित लेखराम जी माकन पर आये तब प्रधान जी उठे और पंडितजी

के उठने के बाद ही बैठे।

नमस्कार आदि के बाद प्रधान जी ने कहा ''सभा के कार्यालय से सूचना दी गई थी की इस सप्ताह आप मुल्तान नगर में प्रचार के लिये जावेंगे, परन्तु अब आपका प्रोग्राम बदल दिया हैं, अब आप वहाँ नहीं जाएँगे।'' जाएगा।''

पंडित जी ने पूछा, ''यह किसलिए?''

प्रधान जी ने उत्तर दिया, ''मुझे विश्वस्त सूत्र से विदित हुआ है कि वहाँ के मुसलमान आपके प्राण लेने का कुचक्र रच रहे हैं। यदि आपको अपने जीवन की चिंता नहीं तो मुझे तो उसकी चिंता करनी चाहिए न।

न मालूम क्यूँ पंडित जी को क्रोध आ गया। वे असाधारण जोश में आकर बोले, ''लाला जी, आप जैसे डरपोक यदि संस्था में बहुत अधिक बढ़ गए, तो आर्यसमाज का बेड़ा अवश्य डूब जाएगा। मैं मरने से नहीं डरता। अब तो मैं अवश्य ही वहीं जाऊँगा।''

प्रधान जी तब भी मुस्कुरा रहे थे। इस बार उन्होंने नियंत्रण से काम लेना चाहा। उन्होंने कहा, ''मैं सभा के प्रधान की हैसियत से आपका जाना आवश्यक समझता हूँ, इसलिए मैंने आपका प्रोग्राम बदल दिया है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि अब आप बताए हुए प्रोग्राम का ही अनुसरण करें।''

इस पर पंडित जी ने जरा नर्म आवाज में जवाब दिया, परन्तु उनकी जिद्द उसी तरह कायम थी। उन्होंने कहा, ''मुझे मालूम है कि आपको मुझसे बहुत मोह है, उस मोह में कायरता पूर्ण वकालत मिलकर आप मुझे न जाने के लिए बाधित करना चाहते हैं, परन्तु मैं यह स्पष्ट शब्दों में कह देता हूँ की अब तो जरूर वहीं जाऊँगा। यदि आप मुझे सभा की तरफ से नहीं भेजेगे तो मैं अवैतनिक अवकाश लेकर अपने किराए से वहाँ जाऊँगा।''

उन दिनों पंडित जी सभा से केवल 50 रुपये मासिक वेतन पाते थे। प्रधान जी भला उनकी इस निर्भीक घोषणा का क्या जवाब देते?

उन्होंने केवल इतना ही कहा, ''आप जहाँ चाहे जा सकते हैं अब मैं आपको किसी भी बात के लिए बाधित नहीं करूँगा। सचमुच हमारी सभा

का यह सौभाग्य हैं की आप जैसे वीर पुरुष की सेवा उसे प्राप्त है।''

एक बार अपने बलिदान से 3-4 वर्ष पूर्व पंडित लेखराम जी आर्य समाज लुधियाना में प्रचार के लिए पधारे। इस अवसर पर बाहर से आए हुए अन्य महाभुनाव भी पधारे थे। लुधियाना का यह पहला ही अवसर था की पंडित लेखराम जी ने इस्लाम के खंडन पर समाज द्वारा खुला व्याख्यान देने की घोषणा की थी। व्याख्यान से 15-20 मिनट पहले पंडित लेखराम जी के पेट में ऐसा सख्त दर्द उठा की उनको उत्सव मंडप छोड़ना पड़ा। उस समय कई डॉक्टर पंडित लेखराम जी की चिकित्सार्थ पहुँचे। उस समय उनको दर्द से इतना बेचैन देखकर इतना आश्चर्य होता था कि ऐसे धीर और वीर पुरुष दर्द से इतना व्याकुल क्यूँ हो रहे हैं। परन्तु पता चला की इस बेचैनी का कारण केवल पेट का दर्द ही नहीं था। परन्तु उन्हें यह ख्याल बेचैन किए हुए था की जो मुस्लमान व्याख्यान सुनने के लिए आये हुए हैं वह सब निराश होकर लौट जाएगे। उन्होंने डॉक्टरों से यही निवेदन किया कि उन्हें शीघ्र ही व्याख्यान देने के योग्य कर दे। और डॉक्टरों ने इंजेक्शन द्वारा इस योग्य कर दिया कि वह खड़े होकर व्याख्यान दे सके। उनका यह व्याख्यान आर्यसमाज के इतिहास में चिर स्थायी रहेगा। व्याख्यान क्या था शेर की गर्जना थी।

सन 1894 में करतारपुर, तब जालंधर के अंतर्गत आर्य समाज की स्थापना के समय पंडित लेखराम जी का व्याख्यान हो रहा था, तो पौराणिकों ने उन पर पत्थरों से वर्षा आरंभ कर दी। इस पर पंडित लेखराम जी ने कहा की मुझे यह पत्थर खाने में बड़ा आनंद आ रहा हैं। ऐसा भी समय आएगा जब मेरे मिशन के प्रचारकों पर लोग फूल बरसाएँगे।

पंडित जी का कथन 1921 में सही साबित हुआ जब सुदूर केरल में मोपला दंगों के समय आर्यसमाज द्वारा किए गए राहत और शुद्धि कार्य के कारण सम्पूर्ण हिन्दू समाज ने आर्य समाज का खुले दिल से स्वागत किया था।

पं विष्णुदत्तजी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि पंडित लेखराम जी कहा करते थे कि जब हिन्दू इतने दृढ़ हो जावेंगे कि वे मुसलमान पुरुष या स्त्री को अपना सहधर्मी बना सकेंगे तो वे सुरक्षित हो जावेंगे। वह

अमृतसर के दरबार साहिब का उदाहरण दिया करते थे कि वहाँ मुसलमान रबाबी कई पीढ़ियों से गुरुग्रन्थ साहिब के भजन गाते हैं किन्तु फिर भी मुसलमान हैं, इसके विपरीत स्थिति में हिन्दू यदि किसी मस्जिद में प्रतिदिन दीपक जलाता हो या कुरान का पाठ करता हो तो सम्भव नहीं कि वह एक पीढ़ी में भी अपने धर्म पर टिका रहे। हिन्दुओं को कट्टरता अपनाने के साथ-साथ विधर्मियों के ग्रन्थों की कमियों का भी अध्ययन करना चाहिए।

एक बार घासीपुर जिला मुजफ्फरनगर(उ प्र) के सब बड़े-बड़े चौधरियों ने मुसलमान बनने का निर्णय कर लिया। तिथि भी निश्चित हो गई। श्री पं लेखरामजी को किसी ने सूचना दे दी। पण्डित जी भागदौड़ करके येन-केन प्रकारेण उसी दिन ठीक समय घासीपुर पहुँचे। मौलवियों का जमघट लगा हुआ था। अधिक यात्राओं के कारण पंडितजी को हजामत का समय न मिला था जिससे उनकी दाड़ी बढ़ी हुई थी। हालाँकि वो हमेशा केवल मूँछ रखते थे। मौलवियों ने बड़ी दाढ़ी के कारण उनको भी मौलवी समझ अपने पास बिठाया और पूछा, "दाढ़ी तो हुई, ये मूंछे कैसे?"

पंडितजी हंसकर बोले, "दाढ़ी तो बकरों की होती है, मूँछे सिंह की होती है।"

मौलवियों के कान खड़े हो गए, तब तक पंडितजी ने मंच पर चढ़कर अपना नाम बताया और शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। और हमेशा की तरह पंडितजी के सामने कोई टिक न सका। उनके भाषण सुनकर घासीपुर के सब चौधरी वैदिकधर्मी बन गए।

पंजाब में जब मांस भक्षण के प्रश्न को लेकर एक विवाद बड़ी उग्रता से चल रहा था, पंडित लेखराम जी आगरा पधारे। पंडितजी चारपाई पर बैठे हुए आगरा कालेज के कुछ विद्यार्थियों से बात कर रहे थे, इतने में पं. घासीराम जो तब छात्र ही थे, उन्होंने लेखरामजी से कहा कि मांस खाने वाले कहते हैं कि वेदों में मांस खाने का विधान है।"

इतना सुनते ही पंडितजी ने गुस्से से भरकर कहा, "जो ऐसा कहते हैं वे झूठ बोलते हैं।"

घासीराम फिर बोले, "अच्छा पंडितजी अगर वे यह सिद्ध कर दें तो क्या आप मांस खाएगें?"

पंडितजी ने उत्तर दिया, ''प्रथम तो यह असम्भव है परन्तु यदि कोई किसी प्रकार से मांस भक्षण का औचित्य सिद्ध कर दे तो मैं मांस इसी समय बाजार से मँगवा कर खाऊँगा।''

डेरा इसमाईल खाँ नगर में एक शेख युसफ की कब्र थी, जिससे सैकड़ों हिन्दू मुरादें माँगने जाते थे, वहाँ के मजावर (कबर पर रहनेवाले मौलवी) मजारपोशी करने वाले के मुख पर थूकते फिर जूते लगाते। एक बार एक हिन्दू ने पं. लेखरामजी से पूछा, ''वे थूकते तो हैं परन्तु जूते क्यों लगाते हैं?''

पंडितजी बोले, ''थूकते इस कारण हैं कि तुम पारब्रह्म परमात्मा को तजकर कब्र पर सिर रगड़ने आए हो और क्योंकि थूक शीघ्र सूख जाती है इसलिए जूते भी लगाते हैं, ताकि तुम शीघ्र भूल न जाओ।''

हिन्दू उत्तर सुनकर लज्जित हुआ।

असमय में ही ऋषि दयानन्द का निर्वाण हो गया। पं. लेखराम के लिए यह बहुत आघात था। उनका तो मानो एक सुखद स्वपन ही टूट गया, लेकिन इस शोक की घड़ी में उन्होंने स्वयं को अधिक जिम्मेदार बनने का संकल्प लिया और ऋषि के अधूरे कार्यों को पूर्ण करने की ठान ली। अब धर्मान्तरण को रोकना उनके लिए कठिन चुनौती बन चुका था, क्योंकि न मुस्लिम और न ही ईसाई धर्मान्तरण करने से बाज आ रहे थे। पं. लेखराम धर्मान्तरणों को रोकने के लिए दौड़-धूप करते, व्याख्यान देते और मुस्लिम कट्टर पंथियों और ईसाइयों के षड्यंत्रों से हिन्दुओं को सचेत रहने के लिए लेख लिखते। इस प्रकार से उनकी दिनचर्या दिन-प्रतिदिन व्यस्त होती चली गई।

ऋषि के निर्वाण के बाद उनके जीवन चरित्र लिखने की माँग जोर पकड़ने लगी। स्थान-स्थान से यह माँग होने लगी कि उनका जीवन चरित्र पं. लेखराम ही लिखें। मुलतान समाज ने तो अपने वार्षिक अधिवेशन में यह प्रस्ताव पास ही कर दिया कि प्रतिनिधि सभा से प्रार्थना की जाए कि वह पं. लेखराम से ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र लिखवाएँ। पं. लेखराम से प्रार्थना की गई और उन्होंने इस कार्य को सम्पन्न करना स्वीकार कर लिया।

ऋषि का जीवन चरित्र लिखना बड़ा श्रम साध्य कार्य था, क्योंकि इसके लिए सम्पूर्ण भारत में घूमकर उन घटनाओं को एकत्रित करना था, जो ऋषि के कार्य-कलापों से सम्बन्धित थी। अब तक पं. केवल पंजाब तक ही अपने प्रचार कार्य में सीमित थे। इस भारत भ्रमण के सिलसिले में उनका सम्पर्क स्वामी श्रद्धानन्द महाराज से हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द भी धर्मान्तरण से बहुत चिन्तित थे और इसे रोकने के लिए निरन्तर प्रयास कर रहे थे।

पं. लेखराम ऋषि के जीवन चरित्र लिखने के सिलसिले में पहले मथुरा पहुँचे। मथुरा में रहकर ही गुरु बिरजानन्द से ऋषि दयानन्द ने वेदों की शिक्षा ग्रहण की थी। गुरु बिरजानन्द तो कभी के दिवंगत हो चुके थे, लेकिन उनके वे शिष्य अभी तक वहीं थे जो कभी ऋषि के सहपाठी रहे थे। बिरजानन्द के शिष्य पं. युगलकिशोर और पं. दामोदर चौबे आदि ने पं. लेखराम को उन सब घटनाओं से अवगत कराया जो स्वामी दयानन्द के अध्ययन काल में वहाँ घटी थी। मथुरा में कुछ दिन रहने के बाद पं. लेखराम संयुक्त प्रान्त के उन-उन स्थानों पर गए, जहाँ ऋषि दयानन्द अपने प्रचार के मध्य ठहरे थे।

अभी जीवन चरित्र के लिए घटनाओं का संकलन अधूरा ही था कि अजमेर में अब्दुल रहमान नामक व्यक्ति 'तकजीब' और 'नुस्खा खब्त' पढ़कर मुस्लिम मत से वैदिक मत में धर्मान्तरित हो गया। यह एक असाधारण घटना थी। अब तक केवल हिन्दू ही इस्लाम या ईसाई धर्म में धर्मान्तरित होते थे। इस घटना से जहाँ इस्लाम के अनुयायी स्तब्ध रह गए, वहाँ जैनियों और पौराणिकों में भी खलबली मच गई। इस्लाम के अनुयायी स्वतः तो सामने नहीं आए परन्तु जैनियों और पौराणिकों को भड़का दिया। उन्हें भी अपना आधार खिसकता दिखाई दे रहा था। पौराणिकों ने एक मुस्लिम को हिन्दू बनाने के विरोध में अनेक तर्क रखे, जिनका आर्य युवकों ने तर्क संगत उत्तर दिया। जब उन्हें कोई उपाय न दिखाई दिया तो वे मार-पिटाई पर उत्तर आए। आर्य युवकों ने उनका साहस से सामना किया। अब्दुल रहमान नामक व्यक्ति ने, जो अब धर्मान्तरित होकर सोमदत्त हो गया था। आर्य युवकों का साथ दिया। ऐसी

परिस्थिति में पं. लेखराम जीवन चरित्र लिखने का कार्य बीच में छोड़कर अजमेर पहुंच गए। अपनी युक्तियों से पं. लेखराम ने सभी का मुख तो बन्द कर दिया, लेकिन उनके तेवर कम नहीं हुए। पं. लेखराम के समर्थकों ने लेखराम को सचेत किया कि ये कभी भी कोई अप्रिय कांड कर सकते हैं, अतः इनसे सचेत रहा जाए और अपनी सुरक्षा के लिए कुछ अंगरक्षकों की व्यवस्था कर ली जाए। पंडित जी ने उनसे कहा—

''संभवतः यह आपके अन्दर का डर बोल रहा है।''

''सतर्कता को डर नहीं कहा जा सकता।''

''हम किस से सतर्क रहें? मुस्लिम कट्टर पंथियों से ही तो, या फिर जैनियों और पौराणिकों से भी?''

''ये तीनों ही आप के शत्रु हैं।''

''ये मेरे नहीं, स्वयं के शत्रु हैं क्योंकि ये वेद विरुद्ध मार्ग पर चल रहे हैं और यह विपरीत मार्ग है। अतः इनके विनाश का कारण है। एक इस्लाम का अनुयायी मेरा शत्रु हो सकता है, क्योंकि हिन्दुत्व का विरोध उनके रक्त में मिला हुआ है। लेकिन जैनी और पौराणिक वेदों से घृणा करें, यह बात समझ में नहीं आती। उन्होंने वेद विरुद्ध चलकर देख लिया है और स्वयं ही नहीं, इस देश की संस्कृति को भी ले डूबे हैं। इन्हें तो अपने कृत्य पर पश्चाताप करना चाहिए।

''क्या ये कर सकेंगे?''

''शायद नहीं, क्योंकि इन पौराणिकों में वहीं हठधर्मिता है, जो उस दिन थी जिस दिन सोमनाथ के मंदिर पर बाहय आक्रान्ताओं ने हमला किया था। उसकी रक्षा के लिए राजपूत हथियार लेकर आ चुके थे, लेकिन इन पौराणिकों ने उन्हें लड़ने से मना कर दिया था और यह तर्क उनके समक्ष रखा था कि भगवान स्वयं अपनी रक्षा के लिए समर्थ हैं, तुम क्यों व्यर्थ में रक्त-पात बहाते हो।''

''मूर्तियों पर इतना बड़ा अंधविश्वास?''

''तभी तो मंदिर लूटा गया, उस मूर्ति के रूप में खड़े भगवान को भी तोड़ डाला गया। मंदिर ही नहीं फिर तो पूरा देश लुटा। यहाँ की युवतियों का सतीत्व लुटा, जवान नारियों का पतिव्रत धर्म लुटा, देश की आजादी

लुटी और वैदिक संस्कृति लुटी। कितना बड़ा अहित देश का इन पौराणिकों ने किया। क्या मैं इनसे डर सकता हूँ? जैनियों ने भी देश को विनाश के कगार पर पहुँचाने में कोई कमी नहीं छोड़ी। ये उस समय अंहिसा का व्रत ले रहे थे, जिस समय बाह्‌य आक्रान्ताओं को रोकने के लिए युवकों को युद्ध कौशल में प्रशिक्षित करना था। काश! ये वेदों के उस उदघोष को सुन लेते कि बाह्‌य शत्रु यदि आक्रामक हो जाएँ तो भयंकर हथियारों से उसे क्षत-विक्षत कर दो, लेकिन हर हालत में देश की रक्षा करो।''

''ठीक है पंडित जी, जैसा उचित समझे वैसा करो।''

''मैं धर्मान्तरण के विरुद्ध खड़ा हूँ। मेरा सामना केवल कट्टर इस्लाम से रहे, इन पौराणिकों और जैनियों से नहीं। मैं इनसे आशा करूँगा कि सत्य को स्वीकार और असत्य का परित्याग करना सीख लें, तभी इस हिन्दू संस्कृति की रक्षा हो सकेगी।''

पंडित लेखराम के अन्दर डर नाम की कोई चीज़ नहीं थी। उन्होंने मिर्जापुर में एक ऐसा खूँखार मौलवी से शास्त्रार्थ किया था, जो एक प्रकार से नर-भक्षी ही कहा जाता था। फिर भी वह निहत्थे उस मौलवी के शहर में घूमते रहे थे। उनके हाथ में केवल एक सोटा रहता था। वह वहाँ दो मास तक रहे और बड़े प्रभावशाली व्याख्यान दिए। यहाँ भी पौराणिकों ने उनका विरोध किया, लेकिन उनके पास सशक्त तर्क थे, जिनके सामने पौराणिक ठहर ही नहीं सकते थे।

अब वह अपने लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ रहे थे, लेकिन उनका लक्ष्य भी अब व्यापक हो चला था। अब उनके मन में बड़ी-बड़ी योजनाएँ जन्म लेने लगी थी। उन्होंने पढ़ा था कि प्रारंभ में अरब से ही इस्लाम ने भारत में प्रवेश किया था। क्यों न अब भारत से अरब में वैदिक धर्म का प्रवेश कराया जाए, यह योजना अब उनके चिन्तन का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुकी थी। वह अरब के साथ-साथ अफगानिस्तान और परशिया में भी वैदिक धर्म का प्रचार करना चाहते थे। लेकिन यह योजना उनके जीवन में पूरी न हो सकी। इन पूर्वी देशों के साथ-साथ वह अमेरिका जैसे पाश्चात्य देशों में भी वैदिक धर्म का प्रचार करना चाहते थे। लेकिन भाषा की समस्या आड़े आ रही थी, क्योंकि उनका अंग्रेजी ज्ञान पर्याप्त नहीं था। इसके लिए

उन्होंने एक ऐसे विद्वान की खोज करनी चाही, जो अमेरिका में साथ चलकर दुभाषिया का कार्य कर सके, लेकिन उसकी व्यवस्था न हो सकी। अब उन्होंने पूरा ध्यान धर्मान्तरण को रोकने में लगा दिया।

हैदराबाद (सिंध) में कुछ हिन्दू ईसाई मत की ओर झुक रहे थे। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान ने पं. लेखराम को शीघ्र हैदराबाद जाने को आदेश दिया। वहाँ जाकर पंडित जी ने देखा कि एक हिन्दू रईस अपने दो पुत्रों सहित मुहम्मदी मत स्वीकार करने को तैयार था। पंडित लेखराम जी ने स्वामी श्रद्धानन्द को अपने साथ लिया और वहाँ जाकर ईसाई और मुस्लिम मत का खंडन किया। इसी अवसर पर पंडित जी ने एक पुस्तक लिखी ''क्या आदम और हव्वा हमारे माता पिता थे।'' इस पुस्तकों में प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया गया था कि सारी मनुष्य सृष्टि एक माँ-बाप की संतान नहीं हो सकती। वहाँ लगभग हजारों युवक इस्लाम में धर्मान्तरण रोका गया और शेष जनता को ऐसे धर्मान्तरण से दूर रहने के लिए सचेत किया गया।

लरकाना में कुछ हिन्दू जबरन मुसलमान बना दिए थे। उन्होंने पंडित लेखराम के पास प्रार्थना पत्र भेजा। यद्यपि उस समय पंडित जी बीमार चल रहे थे, परन्तु वे ऐसी अवस्था में भी वहाँ पहुँचे और उन लोगों को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित किया। उनके इस कदम से कट्टर मुसलमान उनके शत्रु बनने लगे, लेकिन पंडित जी को ऐसी बातों की चिन्ता नहीं थी।

आर्य समाज का प्रचार ठीक तरह से चल रहा था, लेकिन एक मुद्दे पर आकर इस प्रचार में विघ्न पड़ गया। प्रश्न मांस भक्षण का था। पंजाब में मांस भक्षण का अधिक जोर रहा है। यद्यपि वहाँ आर्य समाज का प्रचार जोरों से चला है, लेकिन वहाँ के आर्य-समाजी मांस भक्षण में विश्वास रखते थे। लोग आर्य समाज के सभासद बनने पर भी मांस का त्याग नहीं कर पा रहे थे। अपनी इस निर्बलता का समर्थन वे वेदों में खोजना चाहते थे। उनमें से बहुत से व्यक्ति यह तर्क देते रहते थे कि वेद भक्षण वेदों के अनुसार पाप नहीं है। कुछ तथा कथित विद्वान यह भी तर्क दे रहे थे कि वैदिक ऋषि मांस का सेवन करते थे। जब कोई निर्णय नहीं हो सका तो पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान ने पं. लेखराम को पंजाब में

आमंत्रित किया। पं. लेखराम उन दिनों राजपूताने में थे। उन्होंने वहाँ आकर अपने प्रबल तर्कों द्वारा सिद्ध कर दिया कि मांस खाना सर्वथा वेद विरुद्ध है।

उस समय पं. लेखराम का प्रभाव इतना व्यापक हो चुका था कि कोई भी उनके तर्कों से असहमत न हो सका। भारतीय चिन्तन एक मुक्त मस्तिष्क का चिन्तन है, उसे कभी भी एक परिधि के अन्तर्गत बन्द नहीं किया जा सकता, अतः किसी बात पर एक मतैक्य होना कठिन हो जाता है। अब शिक्षा के सम्बन्ध में आर्य समाज दो भागों में बट चुका था। एक गुरुकुल दल कहलाता था जो संस्कृत शिक्षण का जबरदस्त समर्थक था। दूसरा दल कालेज दल से प्रसिद्ध था और पाश्चात्य शिक्षा को ही रखना चाहता था। इस विषय पर सर्वमान्य निर्णय करना बहुत कठिन था, अतः ये दोनों दल समान्तर रूप से साथ-साथ चलते रहे।

पं. लेखराम द्वारा आर्य समाज के प्रबल प्रचार से पौराणिक अपने को पराजित सा अनुभव करने लगे थे। वे पं. लेखराम के व्यक्तित्व में ऐसा छिद्र खोजना चाहते थे, जिसके माध्यम से वे समाज में अपनी बढ़त बना सके। चूंकि पं. लेखराम जाति प्रथा का विरोध करते थे और विवाह जैसे विषयों पर बल देते थे कि योग्यता के आधार पर वर-वधु का चयन किया जाना चाहिए कि जाति के आधार पर। अब पौराणिक इस प्रतीक्षा में थे कि पं. लेखराम अपनी दुल्हन का चुनाव किस आधार पर करते हैं। यदि वह जाति के आधार पर करते हैं तो उन्हें कथनी और करनी के अन्तर पर घेरा जा सकता है, लेकिन पं. लेखराम के रक्त में आर्य समाज के सिद्धान्त पूर्ण रूप से रचे-बसे थे। उन्होंने अपने विवाह के लिए पर्वतीय प्रदेश के भन्नग्राम निवासिनी लक्ष्मी देवी का चयन किया जो सजातीय नहीं थी और विवाह भी आर्य समाज की पद्धति से ही सम्पन्न कराया। उनके इस नैतिक बल से पौराणिक स्वतः ही पराजित हो गए।

पं. लेखराम की सक्रिय भूमिका से धर्मान्तरण की घटनाएँ लगभग रुक सी गई थी, लेकिन हिन्दू समाज में अंधविश्वास बुरी तरह से छाया हुआ था। रोगों के इलाज के लिए झाड़-फूँक और तांत्रिक क्रियाएँ निरंतर चल रही थी। यद्यपि उनसे किसी भी रोग का निदान नहीं हो पा रहा था,

परन्तु फिर भी समाज का विश्वास उन पर टिका हुआ था। तांत्रिक लोग प्रसन्न थे कि उनका धंधा फल-फूल रहा है। पौराणिक पंडे देवी-देवताओं की प्रतिमा बनाकर लोगों को उनकी पूजा के लिए प्रोत्साहित करने में जुटे थे। प्रत्येक तीर्थ स्थल पर मूर्ति-पूजा के अलावा और कोई अनुष्ठान रहा ही नहीं था। देवी-देवताओं के नाम पर मेले लगाए जा रहे थे, जहाँ पाखंड के अलावा ज्ञान वृद्धि का और कोई साधन नहीं था। पाखंडी लोग ज्योतिषाचार्य बनकर लोगों को ठग रहे थे। समाज की ऐसी दमनीय दशा देखकर पं. लेखराम ने इन अंधविश्वासों का खंडन करना शुरू कर दिया। जहाँ से भी उन्हें पता लगता कि लोगों को अंधविश्वास के मिथ्या चमत्कार दिखाकर ठगा जा रहा है, वह तुरन्त वहाँ पहुँचते और लोगों को सावधान करते तथा सही ज्ञान द्वारा उनकी शंकाओं का समाधान करते।

पं. लेखराम के इस अभियान से वे लोग बौखला उठे, जिनकी रोजी-रोटी इन अंधविश्वासों पर ही आधारित थी। स्वाभाविक था कि वे उनके विरुद्ध खड़े हो जाते। दूसरी ओर धर्मान्तरण की प्रक्रिया प्रभावित होने से कुछ कट्टर मुसलमान भी उनके विरुद्ध खड़े हो गए और उन्हें रास्ते से हटाने का प्रयास शुरू करने लगे। लेकिन पं. लेखराम इन बातों से घबराने वाले कहाँ थे। उनका अभियान उसी तरह से चलता रहा।

सन् 1895 में पं. लेखराम मालेरकोटला पहुँचे। वह एक मुस्लिम रियासत थी। वहाँ मुंशी अब्दुल लतीफ नामक मुस्लिम विद्वान से पुनर्जन्म पर विचार-विनिमय होना था। उनके साथ स्वामी श्रद्धानन्द भी थे। मुंशी अब्दुल लतीफ तो संकीर्ण हृदय के मुसलमान नहीं थे, परन्तु उनके समर्थक पं. लेखराम से खार खाए हुए थे। वे विचार-विनिमय के मध्य पं. लेखराम से भिड़ गए, परन्तु लेखराम उनसे डरने वाले कहाँ थे। वहाँ उपस्थित कुछ हिन्दुओं ने स्वामी श्रद्धानन्द से कहा, ''स्वामी जी! आप पंडित जी से कहें कि यह मुसलमान बाहुल्य क्षेत्र है, अतः यहाँ इनसे भिड़ना ठीक नहीं होगा।'' स्वामी जी ने उनकी बातें पंडित जी तक पहुँचा दी, लेकिन वह मानने वाले कब थे। उन्होंने वहीं हिन्दुओं को धमकाना शुरू कर दिया, ''मैं तुम जैसे कमजोरों के बल पर कार्य नहीं कर रहा हूँ। तुम जैसे कमजोर लोगों के कारण ही यह देश इस दुर्दशा को प्राप्त हुआ है।''

"आपकी बात ठीक है पंडित जी, लेकिन समय की संवेदनशीलता को समझो।" एक हिन्दू ने धीरे से कहा।

"समय की संवेदनशीलता यह है कि हमें भय से बाहर निकलना होगा। हमारे इस भय ने हम से हमारा देश ही छीन लिया है। हम अपने देश में रहते हुए भी परदेशी हो गए हैं। हमें अपने देश को उन लोगों से छीनना होगा जिन्होंने हमें भयभीत किया हुआ है और यह तभी होगा जब हम वेदों की ओर लौटेंगे।"

"लेकिन यहाँ आपके जीवन को खतरा हो सकता है।"

"खतरों से डरना कायरों का काम है। अब तक हम बहुत डरे हैं, अब नहीं डरेंगे। अब तक हम मृतक अवस्था में थे, अब हमें जिंदा होना होगा और वही कौम जिन्दा रहती है जो बलिदान करना जानती है। मैं तुम्हें बलिदान सिखाने आया हूँ, लेकिन उपदेश देकर नहीं स्वयं बलिदान होकर। आप डरे नहीं, क्योंकि अब मैं बलिदान सिखाकर ही दम लूँगा।"

वैदिक संस्कृति के प्रति उनका समर्पण अब उदाहरण बनने लगा था। अब उनका एक ही उद्देश्य था—विश्व में वैदिक संस्कृति का प्रसार। इसके लिए वह कोई कमी बाकी नहीं छोड़ना चाहते थे। आर्य समाज के उत्सवों में भाग लेना उनके लिए सांस जैसा था। उनकी पत्नी माँ बनने वाली थी, लेकिन उनके पास वहाँ तक जाने का भी समय नहीं था। 18 मई को उनके घर एक पुत्र ने जन्म लिया, लेकिन वह भेरा में 24 मई को होने वाले आर्य समाज के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए चल पड़े थे। उन्होंने पुत्र को देखने की अपेक्षा आर्य समाज के उत्सव में भाग लेना उचित माना।

एक समय की बात है कि वही क्वेटा आदि बिलोचिस्तान के स्थानों में प्रचार के लिए घूम रहे थे। इस बीच उनके पास छोटे भाई तोताराम के निधन का समाचार पहुँचा, लेकिन उनका कार्य वहाँ अधूरा ही था। जब तक वह पूरा नहीं हुआ वह घर नहीं जा सके। उनकी अनुपस्थिति में ही तोताराम के अन्तिम संस्कार की सभी रस्में पूरी की गई।

वह आर्य समाज के प्रचार में अमृतसर पहुँचे ही थे कि मुरादाबाद से तार आया कि श्री राम सारस्वत ईसाई बन चुका है। पंडित लेखराम तुरन्त मुरादाबाद पहुँचे और आर्य समाज मंदिर में श्री राम सारस्वत को आमंत्रित

करके शुद्ध किया। इस प्रकार से व्यस्त जीवन में अपने लिए उनके पास एक मिनट का भी समय नहीं था। उन्हें तुरन्त ही वार्षिक उत्सव में सम्मिलित होने के लिए अजमेर जाना पड़ा। नगर कीर्तन के अवसर पर मुसलमानों ने कुछ बाधा डालनी चाही, लेकिन पंडित जी ऐसी बाधाओं से डरने वाले कब थे। वहाँ अचानक संघर्ष की स्थिति बन गई। साम्प्रदायिक दंगों के डर से कुछ आर्य समाजी वहाँ से खिसक गए, लेकिन पंडित जी वहीं डटे रहे। उन्होंने ख्वाजा चिश्ती की दरगाह के पास एक पुल पर खड़े होकर 'कब्रपरस्ती' और 'मुर्दमपरस्ती' का खंडन करना आरंभ कर दिया। कोई विरोधी उन तक पहुँच न सका। वहाँ उपस्थित सभी मुसलमान उनकी बहादुरी को देखकर दंग रह गए।

एक अन्य अवसर पर पं. लेखराम जी शिमला आर्य समाज के उत्सव पर गए हुए थे। मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी के शिष्य ख्वाजा कमालुद्दीन वहाँ पहले से ही पहुँचे हुए थे और अपने मिशन का प्रचार कर रहे थे। पंडित लेखराम प्रतिदिन उसके व्याख्यान को सुनने जाते और जिन बातों के लिए वह हिन्दुओं एवं आर्यों पर आक्षेप करते उन्हीं बातों का पंडित जी अपने व्याख्यानों में उत्तर देते। जब कमालुद्दीन को यह आभास हो गया कि पंडित लेखराम उसके आक्षेपों को नहीं चलने देंगे तो उसने धमकी भरे स्वर में कहा, ''पंडित लेखराम जी, मुहम्मदी तलवार से डर और इस्लाम के विरुद्ध बोलना व लिखना छोड़ दे, अन्यथा इसका अंजाम बहुत बुरा होगा।''

''अंजाम की धमकी देकर मुझे डराना चाहता है। आतंक से नहीं शास्त्रार्थ से अपने सिद्धान्तों को सिद्ध कर, तब पानी का पानी और दूध का दूध सिद्ध हो जाएगा।'' पंडित जी ने आवेशित मुद्रा में कह दिया। लेकिन उसके पास सत्य था ही नहीं, उसे शान्त होना ही पड़ा। एक अवसर पर इस्लाम के प्रचारक हिन्दुओं को काफिर सिद्ध करना चाह रहे थे, लेकिन पंडित लेखराम के होते हुए वे असत्य बात को सिद्ध कैसे कर सकते थे। पंडित जी ने अपने व्याख्यान में उनके पैगम्बरों को ही काफिर सिद्ध कर दिया। उन्होंने कहा, ''इस्लाम के पैगम्बरों ने खुदाई का दावा करके फैलाया है।''

इतने में भीड़ में से एक मुस्लिम युवक ने कहा, ''मुहम्मदी तलवार को मत भूल।''

पंडित जी ने तुरन्त कड़ककर कहा, ''मुझे बुजदिल, मुहम्मदी तलवार की धमकी देता है, क्या तलवार असत्य बात को सत्य सिद्ध कर सकती है? यदि तुझमें साहस है तो तलवार से नहीं तर्कों सें अपनी बात को सिद्ध कर, मैं तर्क से डर सकता हूँ तलवार से नहीं।''

''तुझे तलवार से ही डरना होगा और वह भी मुहम्मदी तलवार से।''

''मैंने अधर्मी निर्बल पुरूषों से डरना नहीं सीखा है। वैसे भी सत्य कभी तलवार से डरा नहीं है। मैं सत्य हूँ और सत्य का ही प्रचार करता हूँ। सत्य कभी तलवार के बल पर अपने को सिद्ध नहीं करता, इसलिए मैं कभी तलवार की धमकी नहीं देता।''

''तुम्हारे पास तलवार है ही कहाँ, यदि होती तो तुम्हारे ऊपर विदेशी शासक क्यों अपना शासन थोपते।''

''तलवार तो थी लेकिन हमारे अन्दर अंहिसा और करुणा जैसे भावों ने उसे कुंद कर दिया था। काश! ये बाहय आक्रान्ता मानवीय मूल्यों का सम्मान करते तो विश्व का परिदृश्य कुछ और ही होता। परन्तु यह हमारा वेद विरुद्ध गमन था जिसका परिणाम हमने भोगा। अब हम पुनः वेद की ओर लौट गए हैं।

पंडित जी का आर्य समाज के सम्मेलनों में आना-जाना लगा ही रहता था। वह वज़ीराबाद आर्य समाज के उत्सव में भाग लेने की तैयारी कर ही रहे थे कि पुत्र की मृत्यु की सूचना आ गई। यह उनके जीवन का बहुत बड़ा हादसा था, लेकिन आर्य समाज का उत्सव निकट था, अतः वह पुत्रशोक में घर न जाकर उत्सव में चले गए।

यद्यपि अपने व्याख्यानों में पंडित लेखराम सभी धर्मों का समान खंडन-मंडन करते थे, परन्तु फिर भी पौराणिकों, जैनियों, सिखों और बौद्धों को उनके प्रति कोई बदले की भावना नहीं थी, क्योंकि वे समझते थे कि इन खंडन-मंडन में उनकी सुधार की भावना है, परन्तु मुसलमानों को उनमें सुधार की भावना नहीं दिखाई दी, अतः उन्होंने बदले की भावना से उनको घेरना शुरू कर दिया। पहले आक्रमण के रूप में सन् 1893 में लाहौर के

मुसलमानों ने पंडित जी द्वारा लिखित जिहाद आदि पुस्तकों को अश्लील बताकर उनके विरुद्ध अदालत में केस दायर कर दिया। इस केस की पैरवी पंडित जी की ओर से लाला लाजपतराय ने की। कुछ ही दिनों में पंडित जी अदालत से निर्दोष सिद्ध हो गए और केस खारिज हो गया। लेकिन कट्टर मुसलमान इससे और अधिक खुँखार हो गए।

सन् 1897 के फरवरी मास में एक काला-कलूटा मुस्लिम युवक पंडित जी के घर पहुँचा। उसने बताया कि पहले वह हिन्दू था, लेकिन मुसलमानों ने उसे बहला-फुसलाकर मुसलमान बना दिया। अब वह पुनः हिन्दू धर्म में आना चाहता है। पंडित जी के लिए इतना ही काफी था। पंडित जी ने उसे कुछ समय तक अपने पास ही रहने के लिए कह दिया। पंडित जी के लिए तो यह शुद्धि का एक केस था, परन्तु पंडित जी के शुभ चिन्तकों को इसमें कोई गहरा षड्यंत्र दिखाई दे रहा था। उन्हें शंका थी कि यह प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त एक कट्टर मुस्लिम युवक हैं, जो पंडित जी की हत्या के उद्देश्य से उन तक पहुंचा है। उन्होंने अपनी शंका पंडित जी के समक्ष रखी, किन्तु पंडित जी ने उन पर विश्वास नहीं किया।

4 मार्च ईद का दिन आने वाला था। उस दिन ही उस युवक ने पंडित जी की हत्या की योजना बनाई हुई थी, परन्तु उस दिन पंडित जी के बाहर जाने से यह योजना सफल न हो सकी। वह उनके लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। वह 6 मार्च को 2 बजे लाहौर आ गए। वह युवक उनके साथ ही उनके घर आ गया और संध्या काल तक वहीं बना रहा। जैसे ही पंडित जी अपना लेखन कार्य समाप्त करके खड़े हुए तो तुरन्त उस युवक ने अपने कम्बल में से छुरी निकालकर उनके पेट में घुसेड़ दी। जब तक उनकी माता व पत्नी उनकी सहायता के लिए आईं वह हत्यारा भाग चुका था। उन्हें तुरन्त अस्पताल ले जाया गया। परन्तु डॉक्टर उन्हें बचा न सके।

रात्रि का समय था। स्वामी श्रद्धानन्द जैसे कुछ महान व्यक्ति उनके पास बैठे थे। वह निरंतर 'विश्वानि देव' और गायत्री मंत्र का पाठ कर रहे थे। रात्रि के लगभग दो बजे अचानक उनका स्वर बंद हो गया। इसी के साथ वह इस संसार से विदा हो गए।

सूर्योदय से पूर्व ही पंडित लेखराम की मृत्यु का समाचार बिजली की

भाँति फैल गया। जिसने भी सुना वह उधर ही दौड़ पड़ा। सभी धर्मावलम्बी उनकी मृत्यु से आहत हुए। जब उनकी शव यात्रा अनारकली बाजार में पहुँची तो वहाँ लगभग 20 हजार व्यक्तियों की भीड़ थी। सभी व्यक्ति शोक में डूबे हुए थे।

स्वामी श्रद्धानन्द

करुणा, मैत्री भावना, अहिंसा और सहानुभूति हिन्दू संस्कृति के ये चार स्तम्भ रहे हैं। इन स्तम्भों पर स्थित होकर हिन्दू संस्कृति ने विश्व को जीने के उदार विकल्प दिए हैं, लेकिन विश्व की किसी भी अन्य संस्कृति ने इनका सही मूल्यांकन नहीं किया है। अधिकांश संस्कृतियों ने इन्हें हिन्दुओं की निर्बलता मानकर उन पर आक्रमण तक कर डाले हैं और इन मानवीय मूल्यों को रौंदते हुए उस महान संस्कृति को ही नष्ट करने का प्रयत्न किया है। लेकिन वे आंशिक ही सफल हो पाए हैं, क्योंकि उस समय कुछ ऐसी महान विभूतियाँ जन्म लेती रही हैं जिन्होंने अपने पराक्रम से हिन्दू संस्कृति की रक्षा की। ऐसी ही एक विभूति ने स्वामी श्रद्धानन्द के रूप में फाल्गुन बदी 13, सम्वत् विक्रमी में तलवन जनपद जालंधर के प्रसिद्ध खत्री घराने में जन्म लिया। उनके पिता का नाम लाला नानकचन्द था।

स्वामी श्रद्धानन्द के जन्म का नाम 'बृहस्पति' था, परन्तु यह नाम कभी व्यवहार में नहीं आया। उन्हें बाल्यकाल में मुन्शीराम के नाम से पुकारा गया और यही उनका वास्तविक नाम पड़ गया। मुन्शीराम के पिता नानकचन्द ने सन् 1857 के गदर में अंग्रेजों की सहायता की थी। इस उपकार के बदले गदर के विफल हो जाने पर अंग्रेजी सरकार ने उन्हें कोतवाल बना दिया था। पुलिस की नौकरी ऐसी होती है कि एक स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रहा जा सकता। जगह-जगह स्थानान्तरण होने से बच्चों की शिक्षा अच्छी तरह से नहीं चल सकती। यही समस्या नानकचन्द के समक्ष आ खड़ी हुई थी। जब वे स्थानान्तरित होकर बनारस आए तब बालक मुन्शीराम की पढ़ाई सुचारू रूप से चल पाई। लेकिन शिक्षण आरम्भ करने के पूर्व उनका यज्ञोपवीत संस्कार कराया गया।

हिन्दू परिवार में जन्म लेने के कारण मुन्शीराम को हिन्दू संस्कारों से

बहुत लगाव था, लेकिन यह लगाव बहुत शीघ्र ही शंकाओं से घिर गया और इन संस्कारों में उन्हें पाखंड दिखाई देने लगे। प्राचीन काल में यज्ञोपवीत संस्कार के बाद बालक को वेद पढ़ने के लिए गुरुकुल में जाना होता था, लेकिन अब गुरुकुल प्रणाली समाप्त हो चुकी थी, अतः गुरुकुल जाने का प्रश्न ही समाप्त हो चुका था, लेकिन उस प्रणाली को जीवित रखने के लिए एक नाटक किया जाने लगा था। इस नाटक में यज्ञोपवीत के बाद बालक समस्त परिवार के समक्ष अपनी यह इच्छा रखता है कि वह गुरुकुल में पढ़ने जा रहा है। तब उसकी एक बहन उसे कहती है—''भाई, इतनी दूर पढ़ने मत जाओ। तुम्हारे पढ़ने की व्यवस्था यहीं कर दी जाएगी।'' वह बालक अपनी बहन की बात को मान लेता है।

इस नाटक को खेलने में एक समस्यर आड़े आ गई। मुन्शीराम के कोई बहन नहीं थी। लेकिन नाटक तो खेलना ही था अतः पड़ोस से एक लड़की बुला ली गई और उसे बहन मानकर यह नाटक पूर्ण कर लिया गया। परिवार तो नाटक खेलने में सफल रहा, लेकिन मुन्शीराम कई दिनों तक सोचता रहा और अन्त में इस निर्णय पर पहुँचा कि हिन्दू मान्यताओं में पाखंड़ों की भरमार है। अपनी पुलिस की नौकरी में तरक्की करते हुए यद्यपि नानकचन्द ऊँचे पद पर पहुँच चुके थे परन्तु अपनी आस्था के अनुसार वह सदैव पूजा-पाठ करते रहते थे। वह पौराणिक विचारों के मानने वाले थे, अतः सुबह उठकर उनका पहला काम शिव पूजा का होता था। बच्चे अपने बड़ों का अनुकरण करते ही हैं, अतः मुन्शीराम और उसके भाई ने भी शिव पूजा करने की ठान ली। वे कहीं से एक शिवलिंग उठा लाए और उस पर जल चढ़ाने की प्रक्रिया शुरू कर दी। बनारस शिव की नगरी के नाम से प्रसिद्ध है ही, वहाँ रहते हुए मुन्शीराम का झुकाव शिव की ओर हो गया। बनारस के शिवमय वातावरण ने मुन्शी राम को धार्मिक प्रवृत्ति का बालक बना दिया। उस समय हिन्दू समाज पाखंडों और धार्मिक आडम्बरों को ही धर्म मानने लगा था। पौराणिक ब्राह्मणों ने इन आडम्बरों को अपनी रोजी-रोटी का साधन बना लिया था। ये धर्मान्ध ब्राह्मण कहीं भी छोटा-मोटा मन्दिर बनाकर, उसमें देवी-देवताओं की प्रतिमा रख देते थे और अन्ध विश्वासी श्रद्धालु उन प्रतिमाओं पर चढ़ावे के रूप में फल-फूल

और अन्य खाद्य पदार्थ तथा रुपये-पैसे आदि चढ़ाना शुरू कर देते थे। इस चढ़ावे से ही वे धर्मान्ध ब्राह्मण अपनी जीविका चलाते थे। यह धंधा बनारस में खूब फल-फूल रहा था। यदि वहाँ कोई ज्ञानी पुरूष वास्तविक धर्म का ज्ञान लेकर आ जाता था और इन मिथ्या पाखंडों की पोल खोलना शुरू कर देता था तो ये पौराणिक पंडे उसके विरुद्ध लोगों को भड़का देते थे। उसे धर्म विरोधी और नास्तिक बताकर जनता की घृणा का पात्र बना देते थे। जिस समय मुन्शीराम बाल्य काल से गुजर रहे थे, बनारस में स्वामी दयानन्द का आगमन हो गया। अपने सत्य ज्ञान के प्रचार में यह उनका भारत भ्रमण का एक पड़ाव था। लेकिन धर्मान्ध पौराणिकों ने उनके सम्बन्ध में यह प्रचारित कर दिया कि बनारस में एक ऐसा नास्तिक आया हुआ है, जो सबके धर्म को भ्रष्ट करना चाहता है। वह जादू जानता है और जो उसके पास चला जाता है, वह उस पर ऐसा जादू करता है कि वह उसका चेला बनकर उसके साथ ही चल पड़ता है। मुन्शीराम ने अपनी माँ के समक्ष उस जादूगर को देखने की इच्छा व्यक्त की, लेकिन भय के कारण उसने मुन्शीराम को वहाँ न जाने दिया। लेकिन बाद में मुन्शीराम को पता चला कि वह और कोई नहीं, स्वामी दयानन्द थे, जिनका नाम वह कभी-कभी सुनते रहते थे। उन्हें नास्तिक क्यों कहा गया, मुन्शीराम ने इस पर गहन चिन्तन किया और इस निर्णय पर पहुँचे कि इसमें धर्मान्ध पंडों का कोई षड्यंत्र था।

एक बार वह अपने पिता के साथ चित्रकूट चले गए। वहाँ एक चट्टान है, जो 'लक्ष्मण पती की पहाड़ी' के नाम से विख्यात है। उस चट्टान पर धनुष-बाण का चित्र बना हुआ है। एक पंडे ने ऐसा बताया कि इस चट्टान पर लक्ष्मण अपने हथियार रखा करते थे। इस चट्टान पर बना यह धनुष-बाण का चित्र उसी धनुष-बाण का चित्र है। उसकी इस बात पर एक यूरोपियन ने उससे प्रश्न किया, ''तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि यह चित्र लक्ष्मण के धनुष-बाण का ही है?''

पंडे ने कहा, ''इससे नीचे जहाँ तक खोदते चले जाएँगे, यह धनुष-बाण का चित्र नीचे तक मिलता चला जाएगा।''

''ठीक है, यह लो पांच सौ रुपये। इसे नीचे तक खोदकर हमें

दिखाओ।''

कुछ ही फीट तक खोदने पर वहाँ ऐसा कोई चित्र नहीं दिखाई दिया। अपने इस मिथ्या पाखंड पर वह पंडा बहुत लज्जित हुआ। यह घटना मुन्शीराम के पिता के लिए एक साधारण घटना ही थी, लेकिन मुन्शीराम के लिए इसके बहुत गहरे अर्थ थे। इस घटना के माध्यम से वह इस निर्णय पर पहुँच चुका था कि हिन्दू धर्म मिथ्या पाखंडों का ही एक बंडल है।

नानकचन्द की बदली स्थान-स्थान पर होती रही और साथ-साथ मुन्शीराम की शिक्षा भी चलती रही। जब उनकी बदली तीसरी बार बनारस में हुई, तो उच्च शिक्षा दिलाने के लिए मुन्शीराम को बनारस के क्वीन्स कालेज में प्रवेश दिला दिया। अब मुन्शीराम युवा दिखने लगे थे। उन्हें व्यायाम का पहले से ही शौक था, अतः उनका शरीर एक पहलवान का शरीर बन चुका था। यह सम्वत् 1930 की बात है। उस समय बनारस में गुन्डागर्दी बहुत बढ़ी हुई थी। गुन्डे अपनी कमर में छुरी बाँधा करते थे। उन्हें देखकर मुन्शीराम ने सोचा कि मैं इनसे कम कैसे रह सकता हूँ, आखिर मेरा शरीर भी तो इतने ही डील-डोल वाला है, जितना इनका। फिर तो मुन्शीराम भी कमर में छुरी बाँधकर एक गुन्डा बन गया। लेकिन उनकी गुन्डई किसी को सताने के लिए नहीं, बल्कि सताए हुए की सहायता करने के लिए थी। उन्होंने अपनी गुन्डई का प्रयोग किया और उनकी धाक बनारस में जग गई।

मुन्शीराम अपने छात्र जीवन में प्रायः मन्दिरों में जाते रहते थे। वहाँ पर स्थित देवी-देवताओं की मूर्तियों के दर्शन से उन्हें आत्म सन्तुष्टि होती थी। एक दिन इसी क्रम के अनुसार वह विश्वनाथ मन्दिर की ओर चल पड़े। ज्योंही वह मन्दिर के निकट पहुँचे, द्वारपाल द्वारा रोक दिए गए। कारण पूछने पर बताया गया कि रीवां की महारानी इस समय पूजा कर रही है। जब तक उनकी पूजा सम्पन्न नहीं हो जाती, किसी श्रद्धालु को अन्दर नहीं जाने दिया जाएगा। मुन्शीराम यह सुनकर स्तब्ध रह गए। इस घटना से उनके भक्तिभाव को बहुत ठेस पहुँची।

वह वहाँ से हटकर एक स्थान पर बैठ गए और अपने गहन चिन्तन में उतर गए, ''यह कैसा भगवान है, जो ऊँच-नीच के हिसाब से दर्शन देता

है। भगवान के लिए तो सब बराबर होने चाहिए और यदि वह भेद भी करता है तो आस्था के आधार पर करना चाहिए। मेरे अन्दर विश्वनाथ भगवान के प्रति अथाह आस्था थी अतः मुझे पहले दर्शन करने का अवसर मिलना चाहिए था, लेकिन यह अतार्किक भेद-भाव कैसा? फिर मैं ऐसे भगवान के प्रति आस्थावान क्यों बनू। इससे अच्छा तो ईसाई मत ही है, वह ऐसी मूर्ति पूजा का खंडन करता है। उसे खंडन करना भी चाहिए, क्योंकि यह पाखंड जो ठहरा। फिर मैं क्यों न ईसाई धर्म स्वीकार कर लूँ? उनका चर्च सबके लिए समान भाव रखता है। वहां पहुँचने वालों में कोई ऊँच-नीच का भेद नहीं है। कितना तार्किक है ईसाई धर्म।''

एक दिन मुन्शीराम छावनी की ओर जा रहे थे। रास्ते में उनकी भेंट रोमन कैथोलिक के फादर लीफूं से हो गई। बात-चीत का सिलसिला शुरू हुआ। मूर्ति पूजा के खंडन में लीफूं ने अनेक तर्क दिए। तर्क के अलावा भी उसकी व्यवहार कुशलता से मुन्शीराम अत्यधिक प्रभावित हुए और वह ईसाई बनने को तैयार हो गए। ईसाई बनने की प्रक्रिया में 'बपतिस्मा' लेना पड़ता है। बपतिस्मा लेने की तारीख निश्चित करने के लिए वह चर्च में पहुँच गए। चर्च पास बनी आवासीय इकाई का जैसे ही मुन्शीराम ने परदा हटाया, तो वह चौंक पड़े। वहां लीफूं तो नहीं थे, परन्तु एक अन्य पादरी थे, जो एक नन (ईसाई ब्रह्मचारिणी) के साथ आपत्तिजनक स्थिति में बने हुए थे। इस घटना से मुन्शीराम को ईसाई धर्म से घृणा हो गई और वह वापिस घर लौट आए।

मुन्शीराम के लिए यह समय बहुत संवेदनशील था, क्योंकि इसमें घटने वाली घटनाएँ उसे धर्म में व्याप्त मिथ्या पाखंडों का अध्ययन करा रही थी। धर्म उन्हें 'मायाजाल' के अतिरिक्त कुछ नहीं जान पड़ रहा था। उन्होंने पूजा-पाठ बन्द कर दिया, लेकिन गंगा स्नान और व्यायाम चलता रहा, वह भी स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से।

कुछ समय बाद नानकचन्द की बदली मथुरा हो गई और मुन्शीराम अपने पिता के साथ मथुरा आ गए। वहाँ जाकर उन्होंने मन्दिरों में जो देखा, उनसे उनकी आस्था ही बदल गई। मन्दिरों में उन्होंने अश्लील लीलाएँ देखी। एक प्रसिद्ध मन्दिर में व्यभिचार लीला देखी और लीलाओं

ने उन्हें पौराणिक मत से विमुख बना दिया।

मथुरा से होकर मुन्शीराम तलवन पहुँचे। वहाँ राय सालिगराम रईस जालंधर की सुपुत्री से उनका विवाह हो गया। विवाह साधारण हिन्दू प्रणाली से ही सम्पन्न हुआ, क्योंकि उस समय तक मुन्शीराम आर्य समाजी नहीं बने थे।

कभी-कभी जीवन में ऐसी अभूतपूर्व घटना घट जाती है, जो व्यक्ति के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन कर देती है। अन्ततः वे पल मुन्शीराम के जीवन में आ ही गए, जिसने उन्हें मुन्शीराम से स्वामी श्रद्धानन्द बना दिया। उस समय वह अपने पिता के साथ बरेली में थे। 14 श्रावण सम्वत् 1936 के दिन बरेली में स्वामी दयानन्द पधारे। उस समय वहाँ नानकचन्द कौतवाल थे। स्वामी जी के प्रवचन के समय शान्ति व्यवस्था बनाए रखने के लिए उन्हें ही प्रवचन स्थल पर नियुक्त किया गया था। स्वामी दयानन्द के प्रवचनों ने नानक चन्द्र के मन की शान्ति को ही प्रभावित कर दिया। उन्हें आभास हुआ कि अब तक जो धार्मिक ज्ञान ग्रहण किया था, वह मिथ्या पाखंड के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। वास्तविक ज्ञान तो केवल स्वामी दयानन्द के प्रवचनों से ही ग्रहण किया जा सकता है। उन्होंने तुरन्त निर्णय लिया कि कल के प्रवचनों में मुन्शीराम को यहाँ लाया जाए। उन्होंने यह प्रस्ताव मुन्शीराम के समक्ष रख दिया परन्तु उन्होंने स्वामी दयानन्द के प्रवचनों के प्रति कोई आकर्षण नहीं दिखाया। उन्हें यह भी बताया गया था कि स्वामी दयानन्द संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान हैं और वास्तविक धर्म का ज्ञान कराते हैं, परन्तु मुन्शीराम ने एक वेद पाठी ब्राह्मण को बनारस में व्यभिचार करते देख लिया था, अतः उनके मन में ऐसे वेद पाठी संस्कृत ज्ञाता के प्रति कोई आस्था नहीं रह गई थी। फिर भी अपने पिता के आग्रह पर वह प्रवचन स्थल पर पहुँच ही गए। जैसे ही उन्हें स्वामी दयानन्द को दर्शन हुए, तो उन्हें ऐसा आभास हुआ मानों अन्तर्मन में हजारों ज्ञान के दीप जल उठे हों। उन्होंने श्रोताओं की ओर देखा और यह देखकर स्तब्ध रह गए कि टी.जे.स्कॉट जैसे पादरी और यूरोपियन विद्वान एवं अधिकारी इस संन्यासी के व्याख्यान को दत्त चित्र होकर सुन रहे हैं। उनके द्वारा की गई ओउम की व्याख्या ने ही उनके मन से धर्म के प्रति उत्पन्न हुई वह

निराशा दूर कर दी, जो पौराणिकों के मिथ्या पाखंडों और चर्च, मंदिरों की अश्लील गतिविधियों के कारण उत्पन्न हो गई थी। उन्होंने स्वीकार किया कि वास्तविक धार्मिक पुरूष स्वामी दयानन्द हैं और उनके द्वारा दिया गया ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है।

अगले दिन स्वामी दयानन्द का प्रवचन टाउन हाल में होना था। मुन्शीराम स्वामी जी के प्रवचनों से इतने प्रभावित हुए थे कि प्रवचन शुरू होने से बहुत पूर्व ही टाउनहाल के द्वार पर बैठ गए। प्रवचन सुनते-सुनते ऐसे मंत्रमुग्ध हुए कि अपने सांसों की गति को भी भूलने लगे। उन्होंने मन ही मन स्वामी जी को अपना गुरु मान लिया और उनकी दिनचर्या के अध्ययन में जुट गए। उन्हें पता लगा कि स्वामी जी बहुत सवेरे भ्रमण के लिए निकल जाते हैं। एक दिन वह भी अपने मित्र को साथ लेकर स्वामी जी के पीछे-पीछे चल पड़े। उन्होंने देखा कि आसन जमाते ही स्वामी दयानन्द की समाधि लग जाती थी।

मुन्शीराम के पिता नानक चन्द्र का अँग्रेज अधिकारियों पर काफी अच्छा प्रभाव था। उन्होंने अपने प्रभाव से मुन्शीराम को नायब तहसीलदार बनवा दिया, परन्तु अँग्रेजों के अशोभनीय व्यवहार के कारण उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी और सम्वत् 1937 के पौष मास में लाहौर पहुँचकर कानून की श्रेणी में प्रवेश ले लिया। लाहौर आवास के दौरान उनका झुकाव सार्वजनिक जीवन की ओर हुआ और धीरे-धीरे सभा सोसाइटियों में जाने लगे। उनकी यह प्रवृत्ति कानून की पढ़ाई में बाधा बन गई। उनकी उपस्थिति कम रह गई। फलस्वरूप वह परीक्षा में न बैठ सके।

वह पुनः लाहौर जाकर कानून में भर्ती हो गए और इस दौरान वह आर्य समाज व ब्रह्म समाज में जाने लगे, लेकिन ब्रह्म समाज के पुनर्जन्म के सिद्धान्त से सहमत न हो सके। पुनर्जन्म के सम्बन्ध में उन्होंने आर्य समाज का मत जानना चाहा। इसके लिए उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश को आद्योपान्त पढ़ डाला। पुनर्जन्म का प्रकरण पढ़कर उनकी सन्तुष्टि हुई। अब उनका झुकाव पूरी तरह से आर्य समाज की ओर हो गया और लाहौर आर्य समाज के सभासद् बन गए। इसी दौरान उनके पिता को अर्धांग हुआ और उनका स्वर्गवास हो गया। उनके भाई और सगे-सम्बन्धियों ने उनका

अन्तिम संस्कार पौराणिक विधि से करना चाहा, परन्तु मुन्शीराम के सामने उनकी एक न चली। अन्त्योष्टि संस्कार वैदिक विधि से ही किया गया।

पौराणिक पंडित मुन्शीराम जी द्वारा की गई आर्य समाज की सेवा को सहन न कर सके। उन्होंने मुन्शीराम को शास्त्रार्थ करने की चुनौती दी, जिसे मुन्शीराम ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थ से सत्य प्रकट होना ही था, अतः पौराणिकों की एक न चलने दी। इस शास्त्रार्थ से आर्य समाज का प्रचार और अधिक तीव्र गति से चल पड़ा। यह बात पौराणिकों के लिए निश्चय ही आहतकारी थी। जब उनका कोई तर्क न चला, तो उन्होंने मुन्शीराम को जाति-बहिष्कार की धमकी दे डाली और इसके लिए एक पंचायत की तैयारी शुरूकर दी। मुन्शीराम घबराने वाले व्यक्तियों में से नहीं थे। उन्होंने आयोजकों से कहा कि यदि तुम बाज नहीं आए, तो मैं भरी पंचायत में तुम्हारे उस ढोंगी जीवन की पोल खोल दूँगी जो तुम मंदिरों में अश्लील क्रीड़ाएँ करते हुए व्यतीत कर रहे हो। अपनी पोल खुल जाने के भय से आयोजक भाग खड़े हुए।

अब मुन्शीराम तथा उनके सहयोगी और भी अधिक उत्साह से आर्य समाज के प्रचार में लग गए। दशहरा निकट था और मुन्शीराम को पता था कि दशहरे के दिन ईसाई अपने प्रचार का आयोजन करते हैं और भोले-भाले हिन्दुओं को अपने जाल में फँसाकर उनका ईसाईकरण कर देते हैं। इस दशहरे को मुन्शीराम ने ईसाईयों से दो-दो हाथ करने की ठान ली। जब ईसाई प्रचारकों को मुन्शीराम की योजना का पता चला, तो उन्होंने अपने प्रचार का कार्यक्रम स्थगित कर दिया। इस घटना से हिन्दुओं में आत्मविश्वास जाग्रत होने लगा।

सम्वत् 1945 में मुन्शीराम पूरे वकील बन गए थे। वह वकालत भी करते थे और हिन्दुओं की पुरानी रूढ़ियों पर आक्रमण भी। उस समय समाज में पर्दा-प्रथा का चलन जोरों पर था। हिन्दू हो या मुस्लिम सभी औरतें पर्दा करती थी। मुन्शीराम की पत्नी शिव देवी भी पर्दा करती थी। सबसे पहले उन्होंने अपनी पत्नी का पर्दा छुड़वाया और समाज में इसका प्रदर्शन करने के लिए उन्हें अपने साथ पर्दा रहित स्थिति में भ्रमण के लिए ले जाने लगे। प्रारंभ में यह घटना चर्चित रही और इसकी निन्दा भी की

गई, किन्तु धीरे-धीरे पढ़े-लिखे घरों में इसका अनुकरण होने लगा।

उस समय न कोई आर्य समाज की शिक्षण संस्था थी और न ही पौराणिक हिन्दुओं की अतः मुन्शीराम को अपनी बेटी को ईसाई स्कूल में ही भेजना पड़ा। ईसाई स्कूलों में हिन्दू छात्र-छात्राओं को शिक्षा के साथ-साथ ईसाइयत में ढालने का कार्य भी होता था। एक दिन उनकी बेटी घर में यह गीत गुनगुना रही थी—

एक बार ईसा-ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल।
ईसा मेरा राम-रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया॥

मुन्शीराम चौंक पड़े। उनकी चिन्तन प्रक्रिया तुरन्त शुरू हो गई, ''तो ईसाइयों का भारत में शिक्षण संस्थाएं खोलने को उद्देश्य भारत के बच्चों को शिक्षित करना नहीं है, अपितु उनका ईसाईकरण करना है। लेकिन यह कैसे रोका जा सकता है? क्या ऐसी संस्थाएं आर्य समाज नहीं खोल सकता? क्यों नहीं खोल सकता? मैं ऐसी संस्था खोलूँगा, जिसमें शिक्षार्थियों को उनकी प्राचीन संस्कृति के गौरव से अवगत कराया जा सकेगा और उनका ईसाईकरण रोका जा सकेगा।''

उन्होंने आर्य समाज की बैठक में एक कन्या पाठशाला का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित हुआ। पाठशाला के लिए धन की व्यवस्था दान द्वारा करने की योजना बनाई गई और लोगों से दान देने के लिए प्रार्थना की गई। धन की व्यवस्था होने में कोई विलम्ब नहीं हुआ और सम्वत् 1947 में कन्या विद्यालय की स्थापना हो गई।

अब उनका ध्यान आर्य समाज के प्रचार पर केन्द्रित हो गया। उन्होंने इस कार्य के लिए एक 'सद्धर्म प्रचारक' साप्ताहिक पत्र निकाला। पंजाब प्रांत उर्दू बाहुल्य प्रांत था, अतः पत्र उर्दू में निकाला गया। इसके सम्पादक मुन्शीराम और उस समय के प्रसिद्ध आर्य समाजी देवराज नियुक्त किए गए। इस पत्र द्वारा उन्होंने आर्य समाज का भारी प्रचार किया। पं. गुरुदत्त और शहीद लेखराम से भी उनकी घनिष्ठ मित्रता थी। गुरुदत्त के सम्पर्क में आकर उन्होंने स्वाध्याय में रुचि रखनी शुरू की थी और लेखराम से इन्होंने धर्म प्रचार की शैली सीखी थी।

मुन्शीराम की कार्य करने की अद्‌भुत शैली के कारण, उन्हें आर्य

प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रधान चुना गया। इनके कार्यकाल सम्वत् 1946 और 1947 में आर्य समाज का धुंआ-धार प्रचार रहा तथा शास्त्रार्थों की बड़ी धूम रही। जब वह 35 वर्ष के हुए, उनकी पत्नी का निधन हो गया। दूसरी शादी के प्रस्ताव आए, लेकिन आर्य समाज के प्रचार में स्वयं को समर्पित करने के कारण प्रस्तावों पर कोई ध्यान नहीं दिया, बल्कि अपनी सन्तान को अपने भाई को सौंपकर आर्य समाज के प्रचार में आगे बढ़ गए।

आर्य समाज के प्रचार के साथ-साथ उनका उद्देश्य शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन करना भी था। वह उस समय की शिक्षा के प्रारूप से सन्तुष्ट नहीं थे। यद्यपि आर्य समाज ने ऋषि दयानन्द की स्मृति में दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज की स्थापना की थी, लेकिन मुन्शीराम उसकी पद्यति से भी सन्तुष्ट नहीं थे। वह प्राचीन गुरुकुल के प्रारूप पर इस युग में भी एक वैसा ही गुरुकुल बनाना चाहते थे, जो ऋषिदयानन्द के दिशा-निर्देशों के अनुसार हो अर्थात् गुरुकुल बस्ती से दूर हो, जहाँ कम-से-कम 25 वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी सादा जीवन व्यतीत करते हुए वेदों का अध्ययन करें। लेकिन यह कार्य आसान नहीं था और न ही इस युग में संभव दिखाई दे रहा था, क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति भारतीय युवकों पर हावी हो चुकी थी। समाज में अंग्रेजी भाषा की शिक्षा का महत्त्व जोर पकड़ चुका था। प्रशासनिक सेवाओं में भी अंग्रेजी भाषा का बोल-बाला हो चुका था, फिर ऐसे वातावरण में कौन अभिभावक अपने बच्चों को गुरुकुल की संस्कृत भाषा के माध्यम से शिक्षा दिलाना चाहेगा। मुन्शीराम के मित्रों ने भी गुरुकुल पद्धति की शिक्षा को अव्यवहारिक बताकर इस योजना को ही रद्द करने के लिए मुन्शीराम को सहमत करना चाहा। कुछ मित्रों ने तो उनकी इस योजना का ही उपहास कर डाला, लेकिन वह अपने सिद्धान्त पर अडिग थे। वह अपने सब मित्रों की आपत्तियों को निरस्त करते हुए इस संकल्प के साथ घर से निकल पड़े कि जब तक वह तीस हजार रुपये एकत्रित नहीं कर लेंगे घर वापिस नहीं लौटेंगे।

जो काम समाज को कठिन लगा रहा था, वह उन्होंने सहज सिद्ध कर दिखाया। उन्होंने देश का भ्रमण किया। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली पर

स्थान-स्थान पर व्याख्यान दिए और धनराशि जुटा ली। कहा जाता है कि महान व्यक्तियों के महान कार्यों में कभी विघ्न नहीं आता। यह कहावत मुन्शीराम पर चरितार्थ हुई। हरिद्वार के निकट कांगड़ी ग्राम में नजीबाबाद जिला बिजनौर के मुन्शी अमर सिंह की जमींदारी थी। उन्होंने गुरुकुल के लिए सारी जमींदारी दान दे दी। उस जमींदारी में ही गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना हुई। अब उन्होंने वकालत छोड़कर अपना सारा ध्यान गुरुकुल कांगड़ी के विकास पर ही केन्द्रित कर दिया। उनके इस त्याग के कारण लोगों ने उन्हें महात्मा कहना शुरू कर दिया। अब वह लाला मुन्शीराम से महात्मा मुन्शीराम हो गए।

महात्मा मुन्शीराम ने 15 वर्ष तक गुरुकुल की सेवा की और सम्वत् 1974 (सन् 1917) में सन्यास ले लिया तथा स्वामी श्रद्धानन्द कहलाए। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को भेंट कर दी। सन्यास धर्म के अनुसार अपने समस्त भौतिक जीवा के कर्तव्यों से मुक्त होकर अपना सन्यासी जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होंने गुरुकुल को भी त्याग दिया और भारत की राजधानी दिल्ली में आकर अपना आसन जमा लिया। लेकिन वहाँ भी निष्क्रिय नहीं रहे, अपितु हिन्दू जाति के सुधार-कार्य में जी-जान से लग गए।

स्वामी श्रद्धानन्द महात्मा गाँधी के कार्यों से बहुत प्रभावित थे। जब महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह किया, तो स्वामी श्रद्धानन्द ने वहाँ की स्थिति जानने की इच्छा प्रकट की। उन्हें बताया गया कि वहाँ भारतीयों को बहुत कष्ट दिए जा रहे हैं। उन्होंने तुरंत सत्याग्रहियों की सहायता के लिए कुछ धनराशि भेजने की व्यवस्था की। यह धनराशि गुरुकुल के छात्रों ने अपने भोजन में से बचाकर और मजदूरी करके एकत्रित की थी। उस समय से उनका महात्मा गाँधी से निरन्तर सम्पर्क बना रहा। उन्होंने ही गाँधी को महात्मा की उपाधि देकर महात्मा गांधी बनाया था।

अँग्रेजी सरकार ने पंजाब में 'मार्शल लॉ' लगाया था, जिसके कारण पंजाब में आतंक छा गया था। इसके अन्तर्गत अनेक निर्दोष भारतीयों को अंडमान की जेलों में ठूँस दिया गया था। दिल्ली में इसके विरुद्ध बहुत

बड़ा आंदोलन स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में ही किया गया था। इस आंदोलन को कुचलने के लिए अँग्रेजी सरकार ने गोरखों की फोर्स टाउन हाल के मैदान में तैनात कर दी थी। स्वामी श्रद्धानन्द निर्भयतापूर्वक भारी भीड़ के साथ जुलूस के रूप में जब घंटाघर के नीचे पहुँचे तो भीड़ को तितर-बितर करने के लिए गोरखों की फोर्स ने फायर शुरू कर दिया। गोली छूटते ही स्वामी श्रद्धानन्द आगे बढ़ गए और छाती तानकर गरज उठे, ''कायरों, निर्दोष जनता पर गोली चलाते हो। पहले मेरी छाती में संगनि ओंक दो, फिर इन पर गोली चलाना।'' बस, इतना ही काफी था।

उनके अधिकारियों ने समझ लिया कि श्रद्धानन्द इन संगीनों से डरने वाला नहीं है, अतः उन्होंने फायर रोक दी।

तुर्की देश में एक ऐसी घटना हो गई थी, जिसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा था। वहाँ तुर्की के खलीफा को किसी ने गद्दी से उतार दिया था। जिसने गद्दी से उतारा था वह अँग्रेज समर्थक था। तुर्की में इसके विरुद्ध एक आंदोलन हुआ था जिसे 'खिलाफत' के नाम से जाना गया है। भारतीय मुसलमानों ने खिलाफत आंदोलन का समर्थन किया था। मुसलमानों का झुकाव देखकर महात्मा गाँधी ने भी उस आंदोलन का समर्थन कर दिया था। चूंकि स्वामी श्रद्धानन्द महात्मा गाँधी में आस्था रखते थे, अतः उन्होंने भी खिलाफत आंदोलन को समर्थन करके भारतीय मुसलमानों में अपनी पहचान बना ली थी। भारतीय मुसलमान उन्हें हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक मानने लगे थे। इसी मान्यता ने उन्हें जामा मस्जिद से सम्बोधन का अवसर प्रदान किया था। स्वामी श्रद्धानन्द ऐसे प्रथम हिन्दू सन्त थे, जिन्हें जामा मस्जिद से सम्बोधन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह निश्चय ही एक दुर्लभ अवसर था। हिन्दू सन्यासी के मुख से जामा मस्जिद के पवित्र मंच से बेदों के मंत्रों का उच्चारण अपने आप में एक बहुत बड़ा आश्चर्य था।

महात्मा गाँधी में आस्था के साथ-साथ स्वामी श्रद्धानन्द की कांग्रेस पार्टी में भी आस्था हो गई थी। जनरल डायर ने निर्दोष भारतीयों पर पंजाब के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान जलियांवाला बाग में गोली की वर्षा कर दी थी। इस घटना से पंजाब में भारी आतंक छा गया था। सन् 1919 के अन्तिम महीने में भारतीय राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन अमृतसर में होना प्रस्तावित था, लेकिन भारतीयों में इतना साहस नहीं रह गया था कि वे अधिवेशन कर सकें। सब अँग्रेजों के क्रूर अत्याचारों से भयभीत थे। पंजाब में हजारों सक्रिय कार्यकर्ता जेलों में बन्द थे। सभी के सामने यह ज्वलंत प्रश्न था कि कौन अपनी जान हथेली पर रखकर यह अधिवेशन सम्पन्न करा सकेगा, लेकिन स्वामी ऋद्धानन्द के अन्दर डर नाम की कोई चीज़ नहीं थी। उन्होंने इस अधिवेशन को सफल बनाने का बीड़ा उठाया। उन्होंने लोगों से सम्पर्क किया, लेकिन आश्चर्य इस बात का था कि लोग

अधिवेशन में तो भाग क्या लेते, कांग्रेस का नाम लेने से भी डरते थे। कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हो सकेगा ऐसा कोई भी नहीं सोच सकता था। लेकिन यह असंभव दिखने वाला कार्य स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने साहस और कर्मण्यता से संभव कर दिया। वह आगे बढ़े और लोगों को अपने साथ कर लिया। कांग्रेस के इतिहास में यह प्रथम अवसर था कि एक सन्यासी ने किसी अधिवेशन का सफल नेतृत्व किया हो।

स्वामी श्रद्धानन्द ऋषि दयानन्द के अनुयायी थे। वह उनके बताए हुए पथ पर तो आगे बढ़ ही रहे थे, लेकिन साथ-साथ उनके अधूरे कार्यों को भी पूरा करने का प्रयत्न करते थे। हिन्दुओं में छुआ-छूत की भावना को समाप्त करना स्वामी दयानन्द का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था। अब यह लक्ष्य स्वामी श्रद्धानन्द का हो चुका था। गांधी जी भी इस छूआ-छूत की कुप्रथा से बहुत दुखी थे। उन्होंने नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में अछूतों का मामला पेश किया और सर्व सम्मति से अछूतोद्धार कांग्रेस के आदर्श में सम्मिलित कर लिया गया। स्वामी श्रद्धानन्द ने कुछ दिनों तक इस आदर्श को देखा, लेकिन कुछ न हो सका। उन्होंने उस ओर से निराश होकर अछूतोद्धार पर दिल्ली में आकर स्वतंत्र रूप से कार्य करना शुरू कर दिया।

समय के साथ-साथ स्वामी श्रद्धानन्द की जिम्मेदारी बढ़ती जा रही थी। अभी उन्हें एक काम और अपने हाथ में लेना था, जिसे उनके मित्र पं. लेखराम बीच में ही छोड़कर शहीद हो गए थे। वह कार्य था धर्मान्तरण को रोकना और धर्मान्तरित हुए हिन्दुओं को पुनः शुद्ध करके हिन्दू बनाना। सबसे पहले उन्होंने आगरा में रहने वाले महकाना राजपूतों को पुनः हिन्दू धर्म में वापिस लाने का बीड़ा उठाया, जो अभी-अभी ही मुसलमान बना दिए गए थे। इनकी संख्या लगभग पांच लाख थी। ये मलकाना आगरा, भरतपुर और मथुरा में बसे हुए थे। पहले स्वामी जी ने हिन्दू राजपूतों से सम्पर्क करके उन्हें इस बात के लिए सहमत किया कि वे अपने में पुनः हिन्दू बनने वाले राजपूतों को स्वीकार करलें और उन्हें सभी सामाजिक अधिकार प्रदान करें। उनकी स्वीकृति के बाद उन्होंने गाँव-के-गाँव शुद्ध किए। इतनी बड़ी संख्या में यज्ञ आदि का प्राविधान न हो सका, केवल गंगाजल की कुछ बूंदे पिलाकर ही उन्हें शुद्ध किया गया।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति के प्रणेता, आजादी के अमर सपूत तथा महान स्वतंत्रता सेनानी स्वामी श्रद्धानंद सरस्वती का पलवल जिले से विशेष नाता रहा है। पलवल जिले में कई आंदोलन हुए और स्वामी श्रद्धानंद ने इन आंदोलनों में बढ़-चढ़कर भाग लेते हुए लोगों को जागृत किया। उन्हीं के असर के कारण यहाँ गदपुरी तथा हसनपुर में गुरुकुलों की स्थापना की गई।

स्वामी श्रद्धानंद सरस्वती पलवल, औरंगाबाद, विघावली, हसनपुर, पिंगोड़, पृथला, स्वामीका, बंचारी व होडल अनेकों बार आए। पलवल में उन्होंने शुद्धि आंदोलन के तहत अनेक विधर्मियों को हजारों की संख्या में पुनः वैदिक धर्म में दीक्षित किया। उनसे प्रभावित होकर यहां के चौधरी परिवार ने आर्य समाज को जमीन भी दान दी। उन्होंने औरंगाबाद में चौधरी बंसी व चौधरी टुंडा के सहयोग से शुद्धि आंदोलन चलाया तथा मूला जाटों के साथ संबंध बनवाया। वे बिघावली गाँव में 1919 में 20 ब्रह्मचारियों के साथ 15 दिन तक रहे और स्वामीका गांव को वैदिक धर्म में दीक्षित किया। इसमें हथीन के ठाकुर रणजीत सिंह की विशेष भूमिका रही। हसनपुर में उन्होंने एक अग्रवाल परिवार की विधवा को शुद्ध करके उसका पुनर्विवाह कराया। पिंगोड़ गाँव को भी उन्होंने वैदिक धर्म में दीक्षित कराया। होडल के सती मंदिर पर जाटों के 12 गांवों के मूला जाटों को एकत्रित करके उन्हें पुनः वैदिक धर्म में लौटने के लिए प्रेरित किया। जिसके सकारात्मक परिणाम भी निकले। बंचारी गाँव में हीरालाल स्वामी के यहाँ श्रद्धानंद ठहरे थे। पृथला के भोला जेलदार के सहयोग से जटौला को वैदिक धर्म में दीक्षित किया।

स्वामी श्रद्धानंद के प्रभाव से यहाँ शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ तथा लोग आजादी के आंदोलन में शरीक होने के लिए तैयार हुए।

आर्य समाज के कार्यकर्ताओं को जब भी वे किसी भी प्रकार की विपत्ति में पाते तो झट उनकी सहायता को निकल पड़ते। लाला लाजपत राय के देश निर्वासन के समय आपने उनके समर्थन में लेख लिखकर ब्रिटिश सरकार को खुलेआम चुनौती दी थी जबकि लाला जी आपके प्रमुख आलोचकों में से थे। बहुत कम लोगों को ज्ञात हैं की आपने महाशय

चिरंजीलाल जी के लिए अभियोग लड़ा था। आर्यसमाज के अनन्य प्रचारक महाशय चिरंजीलाल जी पंडित लेखराम के समान वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार में अपना तन, मन, धन समर्पित करने वाले प्रचारक थे। 19 वर्ष की आयु में आपने 1877 में स्वामी दयानंद के दर्शन लुधियाना में किए थे। बस तभी से आपने वैदिक धर्म का प्रचार करने की ठान ली थी। परन्तु एक तो आपका विवाह हो चुका था ऊपर से आपके पिताजी की मृत्यु होने से घर का सार बोझ आपके कंधों पर आ चुका था। 11-12 वर्ष तक आपने किसी प्रकार धैर्य किया और दुकानदारी से कुटुम्ब का भरण पोषण करने लगे। जब छोटा भाई कार्य भार सँभालने योग्य हो गया तो आप प्रचार कार्य में निकल पड़े। इनके प्रचार का साधन इन्ही की बनाई हुई पंजाबी की सी हर्फियाँ होती थी। उन्हें यह उर्दू में छपवा लेते और गा-गा कर उनका प्रचार करते थे। आप पर एक अभियोग भी चला जिसके कारण आपको 4 मास की सजा हुई और 50 रुपये का दंड मिला। आपके लिए महात्मा मुंशीराम ने अपील की जिससे आप छूट गए पर कुछ काल तक आपको जेल में रहना पड़ा था। कारावास की कहानी करुणाजनक हैं। इस कारावास ने आपके प्रचार को द्विगुणित कर दिया।

संगठन निर्माणकर्ता वही बन सकता हैं जो अपने सहयोगियों के दुःख और दर्द में उनका साथ दे।

गुरुकुल कांगड़ी भारतीय शिक्षा इतिहास में मील के पत्थर के समान हैं। गुरुकुल मात्र शिक्षण संस्था न होकर स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा किया गया महान यज्ञ था, जिसकी प्रत्येक आहुति के रूप में स्वामी जी ने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया था। जिस समय स्वामी जी (तब मुंशीराम) गुरुकुल खोलने की योजना बना रहे थे तो उस समय पंजाब प्रतिनिधि सभा के लाला रलाराम और राय ठाकुरदत्त से गुरुकुल के स्थान को लेकर मतभेद था। उनका प्रस्ताव था की गुरुकुल पंजाब में खोला जाना चाहिए। जबकि महात्मा जी का विचार उसे हरिद्वार में खोलने का था। गुरुकुल के लिए उस काल में 30000 रुपये एकत्र करना एक भारी कार्य था, जिसे महात्मा जी ने अनेक कष्टों को सहते हुए पूरा किया। महात्मा जी ने धन एकत्र करने के पीछे से उनके परिवार पर भारी कर्ज का बोझ लद गया।

इस पर राय ठाकुर दत्त ने उन्हें सलाह दी की महात्मा जी कुछ समय सार्वजानिक जीवन से अवकाश लेकर अपने परिवार की आर्थिक स्थिति संभाल ले। महात्मा मुंशीराम इस बात के लिए तैयार हो गए और अपने निजी कार्य में लग गए। इस बीच महात्मा जी की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर रायठाकुर दत्त ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में गुरुकुल की नीति के समक्ष में अपनी ओर से कुछ परिवर्तन प्रस्तावित कर दिए। जब महात्मा मुंशीराम जी को इस बात का पता चला तो वे सभी कार्यों को छोड़कर आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन में जा उपस्थित हुए। यह महात्मा जी का व्यक्तित्व था जिसके कारण राय ठाकुर दत्त का एक भी प्रस्ताव पास नहीं हुआ। मुंशी राम जी ने अपनी सूझ बुझ से गुरुकुल की रक्षा उसके खुलने से पहले कितने कष्टों को सहते हुए की , इसकी कल्पना मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उत्तम कार्यों को करने में जो कष्ट होते हैं उनको सहन करना ही तप कहलाता हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के स्वभाव, मृदुता, शालीनता और सौम्यता से प्रभावित होकर उनके अनेक प्रशंसक बन गए थे, जिनमें न केवल हिन्दू थे अपितु ईसाई और मुसलमान दोनों थे। ऐसे ही स्वामी जी एक भगत थे, जिनका नाम था मौलाना आसफ अली बार एट लॉ। आप दिल्ली के मशहूर वकील थे और क्रान्तिकारी अरुणा आसफ अली के पति थे। आपने 'हिन्दुस्तान रिव्यु' नामक अखबार में स्वामी जी की शहादत के पश्चात एक लेख लिखा था जिसमे आप लिखते हैं : "1918 में दिल्ली में कांग्रेस के अधिवेशन में स्वामी जी को स्वागतकारिणी समिति का उपप्रध ाान चुना गया और मुझे सहकारी मंत्री चुन गया था। मुझे स्वामी जी के साथ कार्य करने का बहुत अवसर मिला। आपकी स्नेहमय उदारता, अपूर्व सज्जनता, नम्रता और निष्कपट मैत्री ने शीघ्र ही मुझे वशीभूत कर लिया। उनकी गुरुजन सुल्म सौम्यता और स्नेह और मेरी ओर से भक्ति और सम्मान के भावों ने हमारे बीच में एक ऐसा प्रगाढ़ सम्बन्ध उत्पन्न कर दिया जो अनेक विषयों पर हम में तात्विक विरोध होने पर भी अंत तक बना रहा।"

सन 1922 में लेखक की मियावाली जेल में स्वामी जी से फिर भेंट

हुई, जिनकी सजा के अब थोड़े ही दिन बाकी रह गए थे। जैसे ही आपको मालूम हुआ की स्वामी जी वहाँ हैं, "मैं उनकी कोठरी की ओर बेतहाशा दौड़ पड़ा। स्वामी जी ने दोनों बाहें फैला कर मेरा स्वागत किया और बड़े स्नेह से मुझे गले लगाकर अपने पास बैठा लिया।"

मियावाली जेल में भी स्वामी जी गीता, रामायण या दर्शन पर उपदेश देते थे। कैदियों को जिस सत्संग का सुअवसर और कहीं न मिल सकता वह इस जेल में हाथ आता। प्रेमियों की एक मण्डली रोज जमा हो जाती थी। मौलाना आसफ अली ने बड़े शौक से गीता रहस्य माँग कर पढ़ा और जब कभी उन्हें कोई शंका होती तो स्वामी जी बड़े हर्ष से समाधान कर देते थे। कभी राजनीति पर बात चल पड़ती, कभी दर्शन पर और कभी फारसी साहित्य पर। स्वामी जी फारसी साहित्य के बड़े अच्छे मर्मज्ञ थे। मौलाना रूम की मसनवी से आपको बहुत प्रेम था।

मौलाना आसफ अली का स्वास्थ्य उन दिनों कुछ अच्छा न था। शरीर मैं रक्त की कमी थी। चेहरा पीला पड़ गया था। स्वामी जी को उनकी दशा देख कर चिंता हुई। वाह! कितना सच्चा वात्सल्य भाव था। खुद जेल में थे, सभी प्रकार के कष्ट सह रहे थे, पर मौलाना अली की यह दशा देखकर आपने उनके लिए एक दूसरी कोठरी चुन दी, जिसमे धूप और प्रकाश स्वछंद रूप से मिल सकता था। उनके आहार के सम्बन्ध में भी जेलर से सिफारिश कर दी, जो स्वामी जी का बहुत लिहाज करता था। यह सद्व्यवहार था, यह सज्जनता थी, जो अपरिचितों को भी उनका भगत बना देती थी।

जब वाइसराय साहब ने उन्हें मिलने के लिए दिल्ली बुलाया था तब वहाँ से लौट कर उन्होंने अक्षरशः जो दोनों की बातें हुई थी वह सब सभा में सुनवाई थी। उनकी स्मृति शक्ति इतनी थी कि उन्होंने अक्षरशः सारी बात दुहराई थी। उनका अभीप्रायः यह था कि वायसराय साहब को यह रिपोर्ट दी जा रही हैं की गुरुकुल में बगावत की शिक्षा दी जाती है। महात्मा जी का जवाब था की आपको जो रिपोर्ट दी जा रही हैं वह गलत हैं। गुरुकुल की स्थापना इसलिए हुई है कि वहाँ से सदाचारी, पूर्ण शिक्षित विद्वान निकले न कि हत्या करने वाले हत्यारे। इस पर चेम्सफोर्ड साहब को

संतोष हो गया था और बाद में वे गुरुकुल में पधारे भी थे। हमने देखा वे तथा संयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर जेम्स मेस्टन जो लीचे लार्ड मेस्टन हो गए उनका कितना सम्मान करते थे। उन्होंने गुरुकुल को आर्थिक सहायता देने की बात छेड़ी पर महात्मा जी ने पूरी तरह इनकार कर दिया।

20 मई सन 1924 को मद्रास के गोखले हाल में मर्मस्पर्शी भाषण देते हुए स्वामी श्रद्धानन्द ने कहा था कि, "पुरोहित आदि के अहंकार के कारण आपके यहा ब्राह्मण ब्राह्मणेतरो का झगड़ा तो चल ही रहा था कि अब उससे भी अधिक बुरा एक झगड़ा आपके सामने खड़ा होने वाला हैं। यदि आपने अस्पृश्य कहे जानेवाले भाईयों के उद्धार की ओर विशेष ध्यान न दिया तो मैं आपको सचेत करता हूँ की वह दिन दूर नहीं, जब आपके दलित भाई जिन्हें आप पंचम कहते हैं, आप से सब तरह का सम्बन्ध तोड़ देंगे। या तो सब के सब दूसरे सम्प्रदायों में चले जाएँगे अथवा अपनी जाति ही अलग बना लेंगे। मैं स्वयं कमजोर, रोगी और वृद्ध होता हुआ सारे देश में घूम जाऊँगा। दलित भाईयों का संगठन करूँगा और उनसे कहूँगा कि वे हर ब्राह्मण और अब्राह्मण को स्पर्श करके वैसा ही भ्रष्ट कर दे जैसा आप उनको मानते हैं। तब निश्चय ही आप उनके पैरों में माथा टेक देंगे।'' इस प्रकार की क्रन्तिकारी विचार रखने वाले स्वामी श्रद्धानंद ने अस्पृश्यता को बढ़ावा देने वाले लोगों के मुँह पर करारा तमाचा मारा था।

गुरुकुल में छात्रों की अनुशासनहीनता का दंड देने का स्वामी जी का तरीका अत्यंत निराला था। शारीरिक दंड तो वह किसी को देते ही न थे। छात्रों के साथ निकट सम्बन्ध होने के कारण उन पर पूर्ण विश्वास करते थे। ऐसे अवसरों पर वे उपदेश में छात्रों से स्पष्ट कहते, ''मुझे तुम सब पर पूरा विश्वास है। तुममें से जिससे यह अपराध हुआ हैं, वह मुझसे एकांत में मिल ले अपराध स्वीकार कर ले और उसका प्रायश्चित करे। महात्मा जी की इस पद्यति का अचूक प्रभाव पड़ता।''

सब जानते हैं कि स्वामी श्रद्धानंद और आचार्य रामदेव का आपस में कैसा सम्बन्ध था। स्वामी जी ने गुरुकुल की स्थापना की थी तो आचार्य रामदेव ने उसे संस्कृत पाठशाला से आधुनिक रूप में परिवर्तित किया था।

बहुत कम लोग यह जानते हैं की आचार्य रामदेव जब कुँवारे थे तब उनका सम्बन्ध डीएवी संस्था से था। आप महात्मा हंसराज के सम्बन्धी भी थे। इसलिए आप कॉलेज पार्टी के समर्थक थे। आपका विवाह 13 वर्ष की आयु में ही हो गया था। आपकी पत्नी कन्या पाठशाला जालंधर की छात्रा थी। इसलिए आपके विवाह में महात्मा मुंशीराम और लाला देवराज भी शामिल हुए थे। आपने जब पहली बार महात्मा मुंशीराम को देखा तो आपकी प्रतिक्रिया भी यह थी कि ''अच्छा यह हैं पंजाब के सभी समाजों में झगड़ों की जड़''। किन्तु समय का फेर देखिए यही महात्मा मुंशीराम बाद में रामदेव जी के प्रेरणा स्रोत्र बन गए।

विवाह के 10-15 दिन के पश्चात ही आपको 5-6 दिन के लिए अपनी ससुराल में रहना पड़ा। इससे पूर्व पंडित गुरुदत्त के संपर्क में आने के कारण आपकी स्वाध्याय की प्रवृति पहले से ही बन चुकी थी। ससुराल में खाली बैठे-बैठे आप जब बोर हो गए तो महात्मा मुंशीराम के पुस्तकालय में स्वाध्याय के लिए पहुँच गए। यहाँ आपका परिचय महात्मा मुंशीराम से हुआ और आप उनसे मिलकर अत्यंत प्रभावित हुए तथा उनसे मिलकर आपके मन में जो गलत भ्रान्ति थी उसका निराकरण हो गया। इसी अवसर पर जालंधर कन्या विद्यालय के अन्य प्रमुखों से मिलने से आपको आर्यसमाज के आदर्शों और स्त्री शिक्षा के महत्व का भली-भांति ज्ञान हो गया।

महात्मा मुंशीराम के त्याग और तपस्या की भट्टी में आचार्य रामदेव सरीखे आर्य नौजवान कुंदन बनकर निकले। अपने विरोधियों को जीत लेना मुंशीराम जी की स्वाभाविक प्रवृति थी।

उन दिनों की बात हैं जब 1920 के दशक में हिन्दू मुस्लिम दंगों ने जोर पकड़ लिया था। स्वामी श्रद्धानन्द जी एक स्थान पर भाषण दे रहे थे। तभी कहीं पर गोली चल पड़ी। औहदेदार ने स्वामी जी से पूछा कि इसकी जिम्मेवारी किस पर है। स्वामी जी ने निर्भीकता से उत्तर दिया कि ''यदि सरकारी कर्मचारी कुछ गड़बड़ न करे तो मुझ पर है अन्यथा वह स्वयं जिम्मेदार हैं।''

औहदेदार चुपचाप वहाँ से चला गया।

दरअसल, देश में हो रहे दंगो के लिए एक जाँच कमेटी मोती लाल नेहरु की अध्यक्षता में बनाई गई थी, जिसने अपनी रिपोर्ट में यह लिखा था की स्वामी श्रद्धानन्द के शुद्धि आन्दोलन के कारण देश में दंगे हुए थे। स्वामी जी ने स्पष्ट रूप से कहा था की जिस आधार पर मुसलमानों को गैर मुसलमानों को इस्लाम की दावत देने का अधिकार हैं उसी आधार पर हिन्दुओं को अपने बिछड़े हुए भाईयों को अपने घर में वापिस लाने का अधिकार हैं। महात्मा गाँधी ने जोश में आकर सत्यार्थ प्रकाश और स्वामी श्रद्धानंद के विरुद्ध लेख लिख डाला और मुसलमानों के समर्थन में लिखा। जिससे आर्यसमाज का तो कुछ न बिगड़ा परंतु मुसलमानों ने यही सोचना आरंभ कर दिया की उनकी जायज और नाजायज माँगों को महात्मा गाँधी का समर्थन प्राप्त है।

स्वामी श्रद्धानन्द इससे भी आगे बढ़ गए। उन्होंने उन हिन्दुओं के लिए भी पुनः अपने धर्म में वापिस लौटने का आह्वान कर दिया, जो मुस्लिम शासन में बलात मुसलमान बना दिए गए थे। इस कार्य के लिए उन्होंने 'भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' का गठन कर दिया, लेकिन शुद्धिकरण की क्रिया से मुसलमान भड़क उठे। उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द का विरोध करना शुरू कर दिया। यह वह समय था जब 'खिलाफत आंदोलन' विफल हो गया था। इसकी विफलता पर मुसलमानों को अंग्रेजों पर आक्रमण करना चाहिए था, लेकिन मालाबार की मुस्लिम मोपला जाति ने अपनी बौखलाहट हिन्दू पर उतार दी। मालाबार में हिन्दुओं पर भाँति-भाँति के जुल्म ढाए गए। हजारों हिन्दू बलात् मुसलमान बना लिए गए। हजारों को मौत के घाट उतार दिया गया हजारों हिन्दू देवियों का सतीत्व लूटा गया। हजारों निरीह बच्चों को हलाल कर दिया गया। अन्य स्थानों पर भी दंगे हुए। इस घटना से स्वामी जी छटपटा उठे। उन्होंने निर्णय लिया कि आत्म-रक्षा के बिना हिन्दुओं का जीवन कठिन है। हिन्दुओं का गौरव, धन और विद्या तभी तक सुरक्षित है जब तक उनमें आत्म-रक्षा की सामर्थ्य है। मोपलाओं की घटना से आहत होकर स्वामी जी ने हिन्दुओं को संगठित करने का उद्घोष कर दिया। स्थान-स्थान पर हिन्दू सभाओं की स्थापना की और नवयुवकों के अन्दर हिन्दुत्व का गौरव जगाने का कार्य प्रारंभ कर

दिया। लेकिन इन कार्यों से मुसलमान उनके शत्रु बन चुके थे।

जीवन के अन्तिम सात वर्षों में दिन-रात भाग-दौड़ करने के कारण स्वामी जी का स्वास्थ्य खराब रहने लगा था। 23 दिसम्बर 1926 को स्वामी जी रुग्ण शय्या पर लेटे थे। अब्दुल रशीद नामक युवक उनसे मिलने आया। उसने एक गिलास पानी माँगा। जब सेवक पानी लेने गया तो रशीद ने अपना रिवाल्वर निकाला और स्वामी जी पर चार गोलियाँ दाग दी। रुधिर से लथपथ बिस्तर पर ही स्वामी जी ने अन्तिम सांस ली।

एक सितारा, जिसने अपनी चमक से हिन्दुत्व का गौरव बढ़ाया, भले ही वह भौतिक रूप से अस्त हो गया हो, लेकिन हिन्दुओं के दिलों से वह कभी अस्त नहीं हो सकेगा।

महाशय राजपाल

महाशय राजपाल एक महान आत्मा थे, जो बच्चों में अच्छे संस्कार भरने के लिए अच्छी-अच्छी पुस्तक प्रकाशित करते थे। समय प्रतिक्षण बदलता रहता है। चौबीस घंटे में तारीख बदल जाती है, लेकिन बलिदान की तारीख नहीं बदल सकती। वह सदा के लिए स्थायी हो जाती है। 6 अप्रैल 1929 की तारीख एक महान बलिदानी के पवित्र रक्त से नहाई हुई आज भी उसी स्वरूप में दिखाई दे रही है। उस बलिदान को साक्षात् देखने वाले उनके वंशज भले ही न रहें, लेकिन यह तारीख आर्य संस्कृति के इतिहास में उसी मूल स्वरूप के साथ सदा अंकित रहेगी।

1924 में महात्मा गाँधी ने 'यंग इण्डिया' में 28 मई को एक लम्बा लेख लिखकर महर्षि दयानन्द, 'सत्यार्थप्रकाश', आर्यसमाज तथा स्वामी श्रद्धानन्द जी के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किए थे, उनसे आर्यनेताओं के विरुद्ध मुसलमानों में पैदा रोष को और अधिक उत्तेजना मिली और 'रंगीला रसूल' का आन्दोलन महात्मा जी की एक टिप्पणी के बाद ही शुरू हुआ था। 'रंगीला रसूल' पुस्तक '19वीं सदी के महर्षि' पुस्तक के उत्तर में लिखी गई थी। उसके प्रकाशक थे इन्हीं बालक दीनानाथ के पिताश्री महाशय राजपाल। लेखक का नाम पुस्तक पर प्रकाशित नहीं किया गया था। मुस्लिम समाचार-पत्रों ने राजपाल जी को उसका लेखक मानकर उनके विरोध में आकाश-पाताल एक कर दिया। उनकी दृष्टि में दो ही मुख्य अभियुक्त थे। पहले महाशय राजपाल और दूसरे महाशय कृष्ण। 'रंगीला रसूल' आन्दोलन 1924 से 1929 तक पाँच वर्ष चला। इस बीच महाशय राजपाल जी पर तीन बार घातक आक्रमण किए गए और महाशय जी को 1929 तक हत्या करने की धमकी-भरे पत्र बराबर मिलते रहे। महाशय जी का जीवन पाँच वर्ष तक मृत्यु के झूले में झूलता रहा।

अमृतसर की आपकी दुकान पर शाम के समय सभी पार्टियों के आर्यसमाजी इकट्ठे होकर एक-दूसरे के नेताओं की कुछ ऐसी तीव्र आलोचना किया करते थे। उनको लाहौर लाकर महाशय कृष्ण जी ने उनका नाम राजपाल रख दिया था। आर्यसमाज के नामों के सम्बन्ध में भी उन दिनों में एक आन्दोलन चला था। पुराने निरर्थक नामों को बदलकर सुसंस्कृत नाम रखने की परिपाटी चल पड़ी थी। 'रंगीला रसूल' और महाशय राजपाल के अमर बलिदान की गर्वीली कहानी का उल्लेख करने से पहले महात्मा जी के लेख और उसकी प्रतिक्रिया की चर्चा कराना आवश्यक है। उससे धर्मान्धता और आक्रामक हलचलों को विशेष बल मिला था। गांधी जी का मूल लेख इस प्रकार है :

"मेरे हृदय में स्वामी दयानन्द के लिए बड़ा मान है। मैं समझता हूँ कि उन्होंने हिन्दू धर्म की बहुत सेवा की है। उनकी वीरता में सन्देह करने की गुंजाइश नहीं, परन्तु उन्होंने अपने धर्म को संकुचित बना दिया है। मैंने आर्यसमाजियों की बाइबिल 'सत्यार्थ प्रकाश' को पढ़ा है। जब मैं यरवदा जेल में आराम कर रहा था, तो कुछ एक मित्रों ने उसकी तीन कापियाँ मेरे पास भेजी थीं। स्वामी दयानन्द ने सत्य और केवल सत्य पर खड़े होने का दावा किया है परन्तु उन्होंने अनजान में जैन धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाइयत और स्वयं हिन्दू धर्म को अशुद्ध रूप में उपस्थित किया है। उन्होंने पृथ्वी-तल पर अत्यन्त सहिष्णु और स्वतन्त्र सम्प्रदायों में से एक (हिंदू सम्प्रदाय) को संकुचित बनाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि वे मूर्ति-पूजा के विरुद्ध थे परन्तु एक अत्यन्त सूक्ष्म रूप में मूर्ति-पूजा का बोलबाला करने में सफल हुए हैं। उन्होंने वेदों को मूर्ति बना दिया है और वेदों में विज्ञान-प्रतिपादित प्रत्येक विद्या का होना प्रमाणित किया है। मेरी सम्मति में, आर्यसमाज 'सत्यार्थ प्रकाश' की शिक्षाओं की उत्तमताओं से उन्नत नहीं हो रहा है, अपितु उसकी उन्नति का कारण उसके संस्थापक का विशुद्ध चरित्र है। आप जहाँ कहीं भी आर्यसमाजियों को पाएँगे, वहाँ जीवन और जागृति मिलेगी, परन्तु संकुचित विचार और लड़ाई-झगड़े की आदत से वे अन्य सम्प्रदायवालों से लड़ते रहते हैं और जहाँ ऐसा नहीं, वहाँ स्वयं आपस में लड़ते रहते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी को भी इसका अधिकांश

भाग मिला हुआ है, परन्तु इन सब त्रुटियों के होते हुए भी मैं उन्हें (स्वामी श्रद्धानन्द जी को) ऐसा नहीं समझता जिसके लिए सुधार की प्रार्थना न की जा सके। सम्भव है कि आर्यसमाज और स्वामी (श्रद्धानन्द जी) इस लेख से अप्रसन्न हों। परन्तु यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मेरा उद्देश्य किसी को अप्रसन्न करना नहीं। मैं आर्यसमाजियों के साथ प्रेम रखता हूँ, क्योंकि उनमें से कई मेरे सहकारी हैं। और मैंने स्वामी श्रद्धानन्द जी से उस समय प्रेम करना सीखा था, जब मैं दक्षिण अफ्रीका में था। यद्यपि अब मैं उन्हें भली भाँति जानता हूँ, तो भी उनसे कम प्रेम नहीं करता हूँ। यह मेरा प्रेम ही है, जिससे ये बातें मैंने कही हैं।''

इस लेख पर सारे आर्यजगत् और अधिकांश हिन्दू समाज में रोष, असन्तोष तथा विक्षोभ की लहर दौड़ गई थी। कुछ समय बाद गाँधी जी ने इस लेख द्वारा किए गए अन्याय का प्रतिकार करने का प्रयत्न किया किन्तु तीर कमान से छूट चुका था। उससे पैदा हुआ विष बुझाया न जा सका। महाशय कृष्ण जी ने अपने दोनों समाचार पत्रों 'प्रकाश' तथा 'प्रताप' में उसके विरोध में दर्जनों लेख प्रकाशित किए थे और स्वयं भी कई लेख लिखे थे। अपने लेखों में आपने बड़े ही तर्क से यह सिद्ध किया था कि महात्मा जी ने आर्यसमाज के साथ घोर अन्याय किया। 'कांग्रेस तबाहकुन रास्ते पर' शीर्षक से उन दिनों में महाशय कृष्ण जी ने कई मुख्य लेख लिखे थे। दूसरी लेख-माला 'यह सौदेबाजी का रास्ता खतरनाक है' शीर्षक से लिखी गई थी। एक लेख 'यह खुशामद की राह देश के नाश की वजह होगी' शीर्षक से लिखा गया था। इस प्रकार कई लेख लिखकर आपने गांधी जी को सावधान किया था कि,

''इस कहावत को चरितार्थ न होने दें कि घर सूत न कपास, जुलाहे से लट्ठम-लट्ठा।'' आपने लिखा था कि ''अँग्रेज यहां बैठा हुकूमत कर रहा है। उसका शासन हमारे रक्त को चूस रहा है। एक होकर उसे यहाँ से खदेड़ने को कोई प्रबन्ध हो नहीं रहा और आपस की सौदेबाजी आरम्भ करके अँग्रेज-दमन चक्र का और आपसी फूट का चोंचला छेड़ दिया है।''

मुसलमानों में कोई विशेष उत्तेजना पैदा न होने पर भी केवल 'यंग इण्डिया' की टिप्पणी पर महाशय राजपाल जी पर पंजाब सरकार ने 153

(अ) धारा के अनुसार मुकदमा चलाया। नीचे की अदालत से डेढ़ वर्ष की सजा हुई। सेशन ने अपील होने पर वह सजा घटाकर छः मास कर दी गई और उच्च न्यायालय में अपील होने पर सर्वथा बरी कर दिया गया। मुसलमानों में ऐसा आवेशपूर्ण आन्दोलन उठ खड़ा हुआ कि महाशय राजपाल जी, महाशय कृष्ण जी और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश सर दिलीपसिंह जी, तीनों के विरुद्ध जेहाद बोल दी गई। उन दिनों सारे देश में धार्मिक एवं सामाजिक आंदोलन हो रहे थे। पुन जागरण का काल था। सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध लोग एकजुट हो रहे थे, लेकिन कुछ कट्टरपंथी समाज सुधार चाहते ही नहीं थे।

पश्चिमी पंजाब के जिला मिंटगुमरी का एक गाँव गोविन्दगढ़ है। उस गाँव में कभी लाला इच्छरुमल खन्ना रहते थे। वह आर्य विचारों के श्रेष्ठ व्यक्ति थे। उस गाँव में उनकी बड़ी जमींदारी थी, जिसकी देखभाल वे स्वयं करते थे। सब तरह से सम्पन्न परिवार था। सम्पन्नता के कारण गाँव में उनका बहुत सम्मान था। वैसे तो वह गाँव भी विकास की दृष्टि से अच्छा माना जाता था, लेकिन एक बहुत बड़ी कमी थी। उस गाँव में उच्च शिक्षा के लिए कोई कन्या विद्यालय नहीं था। यह अभाव सामान्य परिवारों के लिए तो कोई अर्थ नहीं रखता था, लेकिन इच्छरुमल के लिए इसका अर्थ था। उसकी एक सरस्वती नाम की पुत्री थी। एक आर्य परिवार की लड़की उच्चा शिक्षा ग्रहण न करे यह हो ही नहीं सकता। इच्छरुमल अपनी बेटी को उच्च शिक्षा दिलाना चाहते थे। जब से पंजाब में आर्य समाज के प्रचार ने जोर पकड़ा, सभी उच्च घराने के अभिभावक अपनी कन्याओं की शिक्षा के प्रति संवेदनशील हो गए थे।

सरस्वती ने भी अपने पिता के समक्ष उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा प्रदर्शित की। उसके पिता पहले से ही उच्च शिक्षा दिलाने की योजना बना रहे थे। निर्णय यह हुआ कि सरस्वती को आर्य कन्या महाविद्यालय जालंधर में दाखिला दिला दिया जाए। यद्यपि विद्यालय गाँव से काफी दूर था, लेकिन और कोई विकल्प भी तो नहीं था। गाँवों में उस समय इतनी दूर लड़की को पढ़ाने की परंपरा भी नहीं थी, परन्तु इच्छरुमल ने इस नई परंपरा की शुरुआत की।

सरस्वती आर्य कन्या विद्यालय जालंधर की छात्रा बन गई। वहाँ तेजस्विनी नाम की छात्रा थी और दोनों साथ-साथ ही कक्षा में बैठा करती थी। एक दिन जैसे ही छुट्टी हुई कि धीमी-धीमी वर्षा शुरू हो गई। दोनों बरामदे में खड़ी होकर वर्षा की बूंदों को देखने लगी। तेजस्विनी ने जिज्ञासावश सरस्वती से पूछ लिया–

''आपको कुछ नक्षत्रों का ज्ञान है?''

''नहीं, मुझे इस सम्बन्ध कोई ज्ञान नहीं है।'' सरस्वती ने सहज रूप से उत्तर दे दिया।

''थोड़ा बहुत ज्ञान तो रखना चाहिए।''

''क्या आपको है?''

''क्यों नहीं।''

''तो बताओ आज कौन सा नक्षत्र है?''

''स्वाति नक्षत्र है।''

''तुम्हें कैसे पता?''

''मेरे पिताश्री ज्योतिर्विज्ञानी हैं। उन्हें सब नक्षत्रों का ज्ञान है।''

''इस स्वाति नक्षत्र की क्या विशेषता है?''

''इस नक्षत्र में यदि वर्षा हो जाए तो उन बूंदों के भाग्य उस पदार्थ से बंध जाते हैं, जिस पर वे गिरती हैं।''

''क्या मतलब?''

''यदि वे केले की गोभ में गिरती हैं तो कपूर बन जाती हैं। यदि सीप के मुँह में गिरती हैं तो मोती बन जाती हैं।''

''और यदि धूल में गिर जाती हैं?''

''तो उनका मिटना निश्चित है।''

''और यदि अग्नि में गिर जाए?''

''तो उनका जलना निश्चित है।''

''तो फिर यह कहो न कि वे बूंद भारतीय युवती है।''

''क्या मतलब?''

''बादल उनका मायका है और धरती ससुराल। यदि उन्हें अच्छा परिवार मिल गया तो मोती बन गई। यदि मध्यम मिल गया, तो कपूर बन

गई और यदि निकृष्ट मिल गया तो मिट गई या जल गई।''

''हाँ आपकी उपमा सही रही।''

''लेकिन मैं क्या बनूँगी, बता सकोगी?''

''यह तो भविष्य बताएगा।''

''क्यों, तुम क्यों नही बता सकती? एक ज्योतिर्विज्ञानी की लड़की जो ठहरी।

इस बात पर दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ी। लेकिन यह उनकी अन्तिम भेंट थी। घर में सरस्वती की माँ का असमय ही निधन हो गया और सरस्वती की पढ़ाई बीच में ही रूक गई। उसे विद्यालय छोड़कर घर आना पड़ा।

समय बीतता गया और ये बातें पुरानी होती गई, लेकिन एक दिन अचानक नई हो गई। वर्षों बाद वे दोनों सहेली लाहौर के अनारकली बाजार में मिल गई। उन्हें एक दूसरे को पहचानते देर न लगी। पहले तो दोनों गले मिली, फिर अचानक तेजस्विनी बड़े ध्यान से सरस्वती को देखने लगी। जब वह निरंतर ऐसे ही देखती रही तो आखिर सरस्वती को पूछना ही पड़ा, ''इस तरह से क्या देख रही हो तेजस्विनी?''

''हाँ, कुछ देख ही रही हूं।''

''यही तो पूछ रही हूँ, क्या देख रही हो?''

''देख रही हूँ कि आप मोती हैं या कपूर या...।''

''ठहर जाओ।''

''क्यों?''

''आगे डर लगता है।''

''तो फिर यहाँ तक ही बताओ।''

''मुझे ही बताना पड़ेगा? तुम तो ज्योतिर्विज्ञनी की लड़की हो और संभवतः पति भी ज्योतिर्विज्ञानी मिल गया होगा। तुम्ही बताओ।''

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ी। शीघ्र हो तेजस्विनी बोल उठी,'' ठीक हैं, मैं ही बता देती हूँ। आप मोती हैं।''

''कैसे जाना?''

''आपका खिला सौंदर्य, स्वर्ण आभूषणों से दमकता तन।''

“यह दिखावा तो एक वेश्या का भी होता है। क्या वह मोती होती है। मैं मोती हूँ या नहीं, इसके लिए तुम्हें मेरा मन देखना पड़ेगा।”

“लेकिन मैं तो कभी मनोविज्ञान की छात्रा नहीं रही हूँ। फिर मैं कैसे परख कर सकती हूँ। यह तो आपको ही बताना पड़ेगा।”

“मेरा खिला सौंदर्य है, स्वर्ण आभूषणों से मेरा तन दमक रहा है। इनसे मैं मोती नहीं हूँ। मैं मोती इसलिए हूँ कि एक आर्य समाजी परिवार की बहू हूँ। मेरे पति राजपाल एक आर्य युवक हैं।”

“फिर तो मुझे आपसे ईर्ष्या करनी पड़ेगी, क्योंकि मैं एक पौराणिक के साथ बँध गई हूँ।”

“ईर्ष्या मत करो, मोती बनो। उसे आर्य समाजी बनाओ।”

“बहुत कठिन काम है। मैं स्वामी दयानन्द तो नहीं बन सकती। लगता है मैं तो मिट ही गई हूँ।”

तेजस्विनी चली गई और उसके साथ ही उसकी कथा का अन्त हो गया, लेकिन सरस्वती की कथा चलती रहेगी, क्योंकि उसे उस महान बलिदानी आर्य युवक राजपाल की पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो बाद में चलकर महाशय राजपाल कहलाएं और आर्य संस्कृति की रक्षा के लिए अपना बलिदान देकर अमर हो गए।

राजपाल का जन्म अमृतसर के एक साधारण घराने में हुआ था। साधारण घराना इसलिए कहा गया है कि उस घर के पास सीमित सम्पत्ति थी लेकिन उसके संस्कार बहुत ऊँचे थे। वहाँ संग्रह की नहीं त्याग की भावना थी। इस दृष्टि से वह घराना उच्च कहा जा सकता है। उनके पिता रामदास जी एक सन्त प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्हें न सम्पत्ति में आसक्ति थी और न घर-गृहस्थी में। वह कुछ वर्षों बाद विरक्त हो गए और युवावस्था में ही घर से चुप-चाप चले गए। यह वैराग्य की प्रवृत्ति वंशानुक्रम के अनुसार अगले वंशजों तक भी पहुँची है। उस समय राजपाल की आयु केवल सोलह वर्ष की थी। इतनी कम आयु में ही घर का सम्पूर्ण भार उनके कंधों पर ही आ गया। उनके परिवार में उनकी माँ जयदेवी और एक भाई सन्तराम था। इस त्रासदी के कारण उन्हें अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी और कुछ काम का स्रोत खोजना पड़ा। उन्हें उस समय के

प्रसिद्ध हकीम फतेहचन्द के यहाँ सहायक के रूप में नौकरी मिल गई। थोड़े समय में ही वह अपनी लगन व कड़ी महनत से हकीम जी के अत्यंत प्रिय बन गए।

यह नौकरी थी तो नियमित, लेकिन परिवार के भरण-पोषण के लिए अपर्याप्त थी। अतः नौकरी के साथ वह कोई अन्य काम भी तलाशते रहे। उन्हें कचहरी में अर्जीनवीसी का काम मिल गया और उर्दू किताब का काम भी सीख लिया। अब उनके पास एक भी क्षण आराम करने के लिए नहीं था। वह रात-दिन कठिन परिश्रम करते तब जाकर परिवार का भरण-पोषण कर पाते। इसके अतिरिक्त उन्हें आर्य समाज का काम भी करना पड़ता, क्योंकि वह पक्के आर्य समाजी थे और आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में उन्हें कुछ समय भी देना पड़ता था। वह स्वामी दयानन्द के पक्के अनुयायी थे और उन्हीं की तरह हिन्दू जाति की कुरीतियों को मिटाने का प्रयत्न करते थे। इस कार्य के लिए उन्होंने आर्य युवक सभा बनाई हुई थी। उस समय अमृतसर में आर्य समाज का प्रचार जोर पकड़ रहा था। अतः आर्य सन्यासी प्रायः वहाँ आते-जाते रहते थे। जब भी वहाँ कोई आर्य समाजी सन्यासी आता, उसकी सम्पूर्ण व्यवस्था राजपाल को ही करनी होती थी। अपनी लगन और सेवा के कारण वह सन्यासियों के भी प्रिय बन चुके थे।

उनकी यह लगन देखकर आर्य समाज के शीर्षस्थ नेता महाशय कृष्ण उन्हें लाहौर ले गए और अपने साप्ताहिक अखबार 'प्रकाश' का सारा कार्यभार उनके ऊपर छोड़ दिया और स्वयं दैनिक उर्दू 'प्रताप' का कार्य देखने लगे। उनके प्रवास के दिनों में 'प्रताप' का काम भी राजपाल को ही देखना होता था। इस व्यस्त समय में उनका विवाह सरस्वती के साथ हो गया। सरस्वती भी उनकी तरह आर्य संस्कारों में पली-बढ़ी थी, अतः दोनों का जीवन प्रसन्नता पूर्वक व्यतीत होने लगा। सरस्वती की सम्मति और महाशय कृष्ण जी की सहमति से अब राजपाल ने पुस्तक प्रकाशन का काम भी शुरू कर दिया। आरंभ में उन्होंने आर्य सन्यासियों के उपदेशों की पुस्तकें प्रकाशित की। ऐसा उन्होंने व्यापार की दृष्टि से नहीं किया, अपितु आर्य सिद्धान्तों में आस्था के कारण किया। व्यापार से अधिक उन्हें आर्य समाज के प्रचार की ज्यादा चिंता रहती थी। जब कोई आर्य सन्यासी

आता, तो वह उनके प्रवचन सुनते और उन्हें पुस्तक का रूप देकर प्रकाशित कर देते थे।

इस प्रकार से प्रकाशन का कार्य धीरे-धीरे बढ़ता चला गया। अधिकांश पुस्तकें आर्य समाज के विचारों की ही प्रकाशित होती थी, अतः प्रकाशन-गृह का नाम 'आर्य पुस्तकालय' रखा। लेकिन अब इस प्रकाशन का विस्तार हो चुका था और प्रकाशन की नीति भी बदल दी गई थी, क्योंकि कोई भी प्रकाशन केवल एक मत की पुस्तकों के प्रकाशन पर आधारित नहीं हो सकता। उसका अपना व्यापारिक दृष्टिकोण भी होता है, अतः सिद्धान्तों में कुछ शिथिलता बरतनी आवश्यक हो जाती है। अब इस प्रकाशन से अन्य विषयों की पुस्तकें भी प्रकाशित करनी शुरू कर दी गई थी। अतः अब इस प्रकाशन का नाम 'सरस्वती आश्रम' रख दिया था। स्पष्ट था कि यह नाप उन्होंने अपनी पत्नी सरस्वती के नाम पर रखा था।

लाहौर में धार्मिक आस्था के दृष्टिकोण से हिन्दू दो भागों में बट चुका था—पौराणिक हिन्दू और आर्य समाजी हिन्दू। संख्या की दृष्टि से यद्यपि वहाँ पौराणिक हिन्दू ज्यादा थे, लेकिन वहाँ वर्चस्व आर्य समाजियों का था। इसका कारण यह था कि पौराणिक निष्क्रिय थे और आर्य समाजी सक्रिय। जब कभी हिन्दू और मुसलमानो में संघर्ष की स्थिति बनती दिखती थी, तो हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व आर्य समाजी करते दिखाई देते थे। पौराणिक भी आर्य समाजियों से ही आशा रखते थे कि वे ही मुस्लिमों से संघर्ष करने के लिए सक्षम हैं और वे ही उनकी रक्षा कर सकेंगे।

यह वह समय था जब स्वतंत्रता के लिए देश में आंदोलन चल रहे थे और इस आंदोलन का नेतृत्व गांधी जी कर रहे थे। यह आंदोलन सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से भिन्न था, क्योंकि वह संग्राम तो अन्तिम मुगल बादशाह के नेतृत्व में लड़ा गया था। अतः मुसलमानों को विश्वास था कि यदि यह संग्राम सफल हो जाता है तो भारत पर पुनः मुस्लिम राज हो जाएगा। लेकिन इस आंदोलन में मुसलमानों में निराशा की भावना थी, क्योंकि वे समझ चुके थे कि यदि गाँधी का आंदोलन सफल हो गया तो देश पर हिन्दुओं का शासन हो जाएगा। हिन्दुओं के शासन में रहना उनके लिए कठिन था, क्योंकि उनकी दृष्टि में हिन्दू काफिर थे और काफिर के

शासन को स्वीकार करना उनके लिए धर्म विरुद्ध था। इस दृष्टि से उनका इस आंदोलन में सक्रिय सहयोग नहीं था। यह मानसिकता आम मुसलमानों की थी, लेकिन कुछ समझदार मुसलमान जिनकी संख्या बहुत थोड़ी थी, आंदोलन में सहयोग कर भी रहे थे। इस आंदोलन में सन् 1857 के आंदोलन की तुलना में एक अन्तर और था। उस आंदोलन में आंदोलन कार्यों का केवल एक लक्ष्य था अँग्रेजों को भारत से भगा देना। उस समय आर्य समाज जैसी संस्था अस्तित्व में नहीं आई थी, यद्यपि स्वामी दयानन्द अपने अभियान में लग चुके थे। अतः उन दिनों हिन्दू अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए इतने संवेदनशील नहीं हुए थे। लेकिन इस आंदोलन में जहाँ आर्य समाजियों का उद्देश्य स्वतंत्रता प्राप्त करने का था। वहाँ अपनी संस्कृति की रक्षा करना भी उनकी योजनाओं का अंग था। इसके विपरीत गाँधी जी के समक्ष संस्कृति की रक्षा जैसी कोई समस्या नहीं थी। यद्यपि वे अपने हिन्दू होने पर गर्व करते थे, लेकिन इस बात को सार्वजनिक नहीं करना चाहते थे। उन्हें आंशका थी कि यदि उन्होंने ऐसा प्रदर्शित कर दिया तो मुसलमान उनसे नाराज हो जाएँगे और हिन्दू-मुसलमानों की एकता भंग हो जाएगी जो इस आंदोलन के लिए बहुत बड़ी क्षति मानी जाएगी। इसलिए गांधी जी मुसलमानों की हर इच्छा को, भले ही वह अनुचित हो पूरा करने का प्रयत्न करते थे। गाँधी जी की उन्हें रिझाने की इस प्रवृत्ति से मुसलमान दिन प्रतिदिन कट्टर होते जा रहे थे। आर्य समाजी गांधी जी की इस प्रवृत्ति से खुश नहीं थे।

दूसरी बात जो भारतीय संस्कृति के विरुद्ध जा रही थी, गांधी जी की अहिंसा का अतिरेक था। यद्यपि अहिंसा बुरी नहीं होती, लेकिन इसकी अधिकता बुरी थी। गुणों की अधिकता भी अवगुण में बदल जाती है, इसलिए गांधी जी की अहिंसा कभी-कभी हिंसा को जन्म दे देती थी। मुसलमान इस अहिंसा को हिन्दुओं की निर्बलता समझकर उनपर आक्रमक हो जाते थे और हिसंक घटना घट जाती थी। आर्य समाज का समर्थन उन क्रान्तिकारियों के पक्ष में अधिक था, जो सशस्त्र क्रान्ति द्वारा भारत को आजाद करने में लगे हुए थे।

उन दिनों लाहौर शिक्षा व सुधारवादी संस्थाओं का उत्तरी भारत

का बड़ा केन्द्र था। हिन्दुओं का नेतृत्व सुधारवादी आर्य समाजियों के हाथ में था। वे ही हिन्दू जाति की मान-मर्यादा के रक्षक माने जाते थे। हिन्दू समाज तो क्या मुसलमान व ईसाई भी मान चुके थे कि आर्य समाज ही वास्तविक हिन्दुओं का समाज है। जब से आर्य समाज अस्तित्व में आया था, धर्मान्तरण की क्रिया लगभग बन्द हो चुकी थी। अब कोई भी मुस्लिम या ईसाई समुदाय हिन्दुओं का इस्लामीकरण या ईसाईकरण करने का साहस नहीं कर सकता था। आर्य समाज ने तो इससे भी आगे बढ़कर धर्मान्तरित हिन्दुओं को पुनः शुद्ध करके हिन्दू धर्म में लाने का एक अभियान चला रखा था। यह बात मुसलमानों को सहन नहीं हो पा रही थी। वे इस बौखलाहट के कारण हिन्दुओं को अपमानित करने के लिए उनके आराध्य देवताओं के चरित्र पर कीचड़ उछालने लगे थे। पौराणिकों को यह बात बुरी तो लगती थी, लेकिन वे इसकी प्रतिक्रिया में कुछ कर नहीं सकते थे। वे तो आर्य समाजियों से ही आशा रखते थे कि वे ही इस सम्बन्ध में कुछ आवश्यक कदम उठाए। आर्य समाजी अपनी संस्कृति के गौरव की रक्षा के लिए मर-मिटने को तैयार रहते थे। अतः वे मुसलमानों के ऐसे दुष्कृत्यों का डटकर मुकाबला करते रहते थे।

सन् 1920 में एक ऐसी ही घटना हो गई। मुसलमानों की बौखलाहट अब कहने सुनने तक ही सीमित नहीं रह गई थी, उन्होंने एक कदम आगे बढ़कर हिन्दू देवी-देवताओं पर पुस्तकों के माध्यम से आक्षेप लगाने शुरू कर दिए थे। इसी कड़ी में उनकी ओर से दो पुस्तकें प्रकाशित की गई। जो भगवान कृष्ण और महर्षि दयानन्द के चरित्र पर सीधा आक्षेप करती थी। एक का नाम 'कृष्ण तेरी गीता जलानी पड़ेगी' और दूसरी का नाम था 'बीसवीं सदी का महर्षि'। यदि वे पुस्तकें समालोचनात्मक दृष्टि से लिखी जाती, तो कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि उस स्थिति में वे मर्यादित ही रहनी थी, लेकिन वे घृणा और बदले की भावना से लिखी गई थी, अतः उनकी भाषा अमर्यादित थी और उनके माध्यम से हिन्दू जाति पर घिनौना प्रहार किया गया था। यद्यपि इससे पहले भी ऐसी घटनाएं होती रही थी, लेकिन उनमें मुस्लिमों की घृणा केवल वाक-प्रहार तक ही सीमित रहती थी, अतः उन्हें आर्य समाजियों ने गंभीरता से नहीं लिया

था। किन्तु यह घटना घृणा पर आधारित थी और सभी मर्यादाओं को तोड़ती हुई प्रकाशित सामग्री के रूप में व्यक्त हुई थी, अतः इसे गंभीरता से लेने का समय आ चुका था। इसका प्रतिकार यही था कि मुसलमानों के किसी सर्वमान्य धार्मिक नेता के संबंध में कोई पुस्तक प्रकाशित की जाए और उसमें उस नेता के चरित्र पर उँगली उठाई जाए। इस कार्य को करने के लिए गुरुकुल कांगड़ी के चमूपति नाम के विद्वान आचार्य सामने आए और उन्होंने 'रंगीला रसूल' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में भाषा तो मर्यादित थी, लेकिन उसमें मुसलमानों के पैगाम्बर मोहम्मद साहब के जीवन की विलासिताओं की घटनाओं का वर्णन किया गया था। उनकी कई बीवियों का भी उसमें वर्णन था। यह सारी पुस्तक ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित थी। पुस्तक प्रकाशित होने से पूर्व ही चमूपति को यह आभास हो चुका था कि पुस्तक की विषय-वस्तु से मुसलमानों में उबाल आ सकता है और वे इसके लेखक पर प्राणघातक हमला कर सकते हैं, क्योंकि मुसलमानों की यह प्रवृत्ति रही है कि वे तो भले ही किसी अन्य सम्प्रदाय पर कितने भी आक्षेप लगा लें, लेकिन यदि कोई उनके धर्म पर आक्षेप करता है तो वे उसे सहन नहीं कर सकते और उस आरोपी व्यक्ति पर प्राणघातक हमला ही उनका एक मात्र विकल्प रहता है।

चमूपति ने बिना लेखक के नाम के ही इसे प्रकाशित कराना चाहा, लेकिन यह प्रकाशन विधान के विरुद्ध था, अतः कोई भी प्रकाशक ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हुआ। इस कार्य को वही प्रकाशक कर सकता था, जिसे अपनी संस्कृति पर गर्व हो और उसके लिए अपने जीवन का भी बलिदान करने में भी संकोच न करे। उस समय ऐसा प्रकाशक केवल महाशय राजपाल ही था, अतः उन्होंने बिना नाम के ही वह पुस्तक प्रकाशित कर दी और चमूपति को यह आश्वासन भी दे दिया कि उनका नाम आगे भी गोपनीय रखा जाएगा।

जैसा अनुमान था वही हुआ। पुस्तक प्रकाशित होते ही मुसलमानों में रोष की लहर फैल गई। किसी ने पुस्तक को फाड़ दिया और किसी ने जला दिया, लेकिन इतने से उनका रोष शान्त होने वाला कहा था, उनका तो एक ही विकल्प होता था—काफिर की संज्ञा देकर अपने धार्मिक आदेश

के अनुसार उसकी हत्या कर देना। इस सम्बन्ध में मस्जिद में एकत्रित होकर लेखक से बदला लेने की योजनाएँ बनने लगी, लेकिन पुस्तक में लेखक का नाम तो था ही नहीं। अतः निर्णय लिया गया कि पहले पुस्तक के लेखक के नाम का पता लगाया जाए। वे प्रकाशक महाशय राजपाल के पास गए और लेखक का नाम जानना चाहा, लेकिन राजपाल ने उनकी एक न सुनी।

लेकिन वे शान्त होने वाले कहाँ थे। उनकी दृष्टि में इस्लाम संसार का सबसे श्रेष्ठ व पवित्र धर्म है, अतः इस पर या इसके पैगम्बर पर उँगली उठाने वाले को जीने का अधिकार ही नहीं है। मुस्लिम अखबारों में धमकी भरे ऐलान निकाले जीने लगे कि पुस्तक के प्रकाशक को लेखक का नाम बताना होगा, अन्यथा सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसका होगा। इसकी प्रतिक्रिया में महाशय राजपाल ने घोषणा कर दी कि पुस्तक के लिखने व प्रकाशित करने का सारा दायित्व उनका है।

इस घोषणा के उपरान्त मुसलमानों के सारे प्रहार उन पर होने लगे। फिर क्या था, मस्जिदों में षड्यंत्र रचे जाने लगे कि प्रकाशक राजपाल से बदला लेना चाहिए। उस समय लाहौर में मस्जिदें इबादत के लिए कम और ऐसे षड्यंत्रों के लिए अधिक उपयोग में लाई जाने लगी थी। जिस पवित्र स्थान पर विश्व शान्ति की कामना होनी चाहिए थी, वहाँ हिसंक षड्यंत्र रचना धर्म को अधर्म में बदलने जैसा था, परन्तु क्रोधावेश में चूर मुसलमानों में ऐसा सोचने की शक्ति उस समय नहीं रह गई थी। बदले की भावना से बौखलाए मुस्लिम युवक इस अवसर की ताक में रहने लगे कि कब महाशय राजपाल अपने प्रकाशन-गृह में अकेले मिलें और वे उनका कत्ल कर दें। 23 सितंबर 1927 को महाशय राजपाल जी अपने प्रकाशन संस्थान में बैठे हुए थे। खुदाबख्श नामक पठान योजनानुसार दुकान में पहुँचा तथा उसने महाशय जी पर छुरे से प्रहार करना शुरू कर दिया। अचानक आर्यसमाज के सुविख्यात संन्यासी स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाशय जी से मिलने आ पहुंचे। उन्होंने छुरे से प्रहार करते देखकर खुदाबख्श को धर दबोचा। राजपाल जी को घायलावस्था में अस्पताल पहुँचाया गया। खुदाबख्श को पुलिस को सौंप दिया गया। मुकदमा चलाकर उसे सात वर्ष

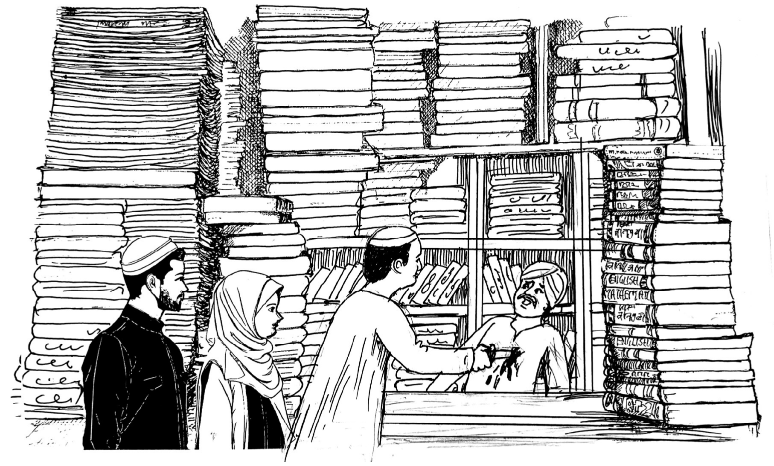

की सजा सुनाई गई।

कुछ दिन बाद 9 अक्टूबर 1927 को एक अन्य मजहबी उन्मादी अब्दुल अजीज ने प्रकाशन संस्थान में पहुँचकर वहां बैठे स्वामी सत्यानन्द जी को महाशय राजपाल समझ कर उन पर छुरे से प्रहार कर घायल कर दिया। उस आततायी को भी पकड़ कर पुलिस को सौंप दिया गया। लाहौर के उन्मादी मुसलमान किसी भी तरह महाशय राजपाल जी की हत्या करने पर तुले हुए थे। उनके विरुद्ध अदालत में मामला भी चलाया गया। लाहौर हाईकोर्ट ने दलीलें सुनने के बाद रंगीला रसूल पुस्तक को तथ्यों पर आधारित बताते हुए प्रकाशक महाशय राजपाल जी को बरी कर दिया। इसके बाद से ही पुनः उनकी हत्या की साजिश शुरू कर दी गई।

6 अप्रैल, 1929 को महाशय राजपाल जी अपने प्रकाशन संस्थान में बैठे हुए थे कि इलमदीन नामक उन्मादी, मजहबी जुनूनी वहाँ पहुँचा। उसने छुरे से प्रहार कर उनकी क्रूरतापूर्वक हत्या कर डाली। इलमदीन हत्या कर भाग रहा था कि विद्यारत्न नामक युवक ने पीछा कर उसे जकड़ लिया। उसे पुलिस को सौंप दिया गया।

महाशय जी की हत्या का समाचार मिलते ही हजारों हिन्दू वहाँ पहुँच गए। महाशय कृष्ण तथा अन्य असंख्य आर्यसमाजी तथा अन्य नेताओं ने

वहाँ पहुँचकर महाशय जी को श्रद्धासुमन अर्पित किए। पूरे देश में बलिदान का समाचार मिलते ही आक्रोश व्याप्त हो गया।

जिस समय राजपाल का बलिदान हुआ उस समय महाशय कृष्ण के सुपुत्र बालक नरेन्द्र पाँच-छह साल के ही थे। उस दिन राजपाल का शव आम जनता के दर्शनार्थ रखा हुआ था। बालक नरेन्द्र की आँखें भी नम थी, तभी पीछे से उनके कंधे पर एक हाथ आकर टिका। वह हाथ भी एक उन जैसे ही बालक का था। वह बालक था महाशय राजपाल का पुत्र दीनानाथ। उसने सुबकते हुए कहा, ''नरेन्द्र मेरे पिताजी नहीं रहे।''

बालक नरेन्द्र दीनानाथ को वहाँ अलग कक्ष में ले गया, ''देखो दीनानाथ, धैर्य से काम लो। आपके पिताजी का बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा। बलिदानी हुए हैं तुम्हारे पिताजी और जो वीर बलिदान देता है उसके बलिदान पर रोने से काम नहीं चलता, वरन संभला जाता है।''

''हां यह ठीक है, पिताजी का बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा। उन्होंने प्रकाशन की स्वतंत्रता के लिए बलिदान दिया है और बड़ा होकर एक दिन मैं प्रकाशन की स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति को इतना गुँजायमान कर दूँगा कि पिताजी की आत्मा भी स्वर्ग से आशीष देने से नहीं चूकेगी।''

आगे चलकर यह बालक दीनानाथ एक महान प्रकाशक बने और इन्होंने हिन्द पॉकेट बुक्स की स्थापना की। और अपने पिता के बलिदान पर जो इन्होंने प्रतिज्ञा की थी, वह सार्थक सिद्ध की। भारत में पेपरबैक क्रान्ति का सूत्रपात करने और स्वतंत्रतापूर्वक निर्भीक होकर प्रकाशन उद्योग को नए आयाम पर स्थापित करने के कारण कालांतर में इन्हें यूनेस्को के प्रतिष्ठित इंटरनेशनल बुक अवॉर्ड से सम्मानित किया गया और उनके पिताजी को भी बाद में प्रकाशन की स्वतंत्रता के लिए बलिदान देने पर संयुक्त राष्ट्र महासंघ द्वारा मरणोपरांत सम्मानित किया गया।

प्रकाशन जगत के अग्रणी श्री दीनानाथ मल्होत्रा ने अपने बलिदानी पिता की अंतिम यात्रा का वर्णन अपनी हाल ही में प्रकाशित आत्मकथा ''भूली नहीं जो यादें'' में लिखा है :

''हमारे सबसे बड़े भाई प्राणनाथ जी छोटे थे। अतएव डी.ए.वी. संस्थाओं के संचालक महात्मा हंसराज जी ने शव को मुखाग्नि दी। स्वामी

स्वतंत्रानंद जी ने प्रार्थना करवाई। अकस्मात् माता जी (सरस्वती जी) हिम्मत करके उठ खड़ी हुईं और उन्होंने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा, 'अपने पति के इस प्रकार मारे जाने का मुझे बहुत दुख है। परन्तु मैं कहना चाहती हूं कि मुझे गर्व भी है कि उन्होंने धर्म की वेदी पर अपने जीवन का बलिदान दे दिया।''

महाशय राजपाल जी प्रथम बलिदानी थे, जिन्हें बलिदान के 69 वर्ष बाद जून 1998 में नई दिल्ली के विश्व पुस्तक मेले में तत्कालीन गृहमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी ने फ्रीडम टू पब्लिश (प्रकाशन स्वातंत्र्य) सम्मान से अलंकृत किया था। यह सम्मान बलिदानी राजपाल जी के पुत्र विश्वनाथ जी ने ग्रहण किया था।

स्वतंत्रता के पहले पंजाब में हिन्दी का प्रचलन बहुत कम था, हिन्दी के प्रकाशक तो नगण्य थे। अधिकतर पुस्तकें उर्दू या पंजाबी में प्रकाशित होती थी। उस जमाने में महाशय राजपाल जी ने 'आर्य पुस्तकालय' तथा 'सरस्वती आश्रम' नामों के अन्तर्गत हिन्दी प्रकाशन का न केवल श्रीगणेश किया, बल्कि वे हिन्दी के प्रचार-प्रसार के सशक्त माध्यम बने।

कल्पना कीजिए, आज से 80-85 वर्ष पूर्व का समय, जब पुस्तक प्रकाशन बिल्कुल अव्यवस्थित था। प्रकाशन कला सीखने के लिए आज की तरह न कोई सुविधाएं थीं, न ही इस विषय पर कोई प्रामाणिक पुस्तक उपलब्ध थी, राजपाल जी ने स्तरीय प्रकाशन के ऐसे आयाम स्थापित किए कि आज उन पर विश्वास करना भी कठिन लगता है। लाहौर में रहते हुए उन्होंने अनेक पुस्तकें इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध इंडियन प्रेस से छपवाई थीं। पूरे संस्करण की प्रतियाँ लकड़ी की बड़ी पेटियों में बंद होकर इलाहाबाद से दिल्ली आती थीं। उन्होंने रिब्ड एंटिक पेपर का प्रयोग किया, पुस्तकें के बहुरंगी आवरण कलकत्ता के सुप्रसिद्ध चित्रकार टी.एन. मित्रा से बनवाए और अनेक पुस्तकों पर राजा रवि वर्मा जैसे श्रेष्ठ कलाकारों की उत्कृष्ट पेटियों का प्रयोग किया। ऐसे सभी चित्र बहुरंगी हाफटोन में होते थे।

राजपाल जी ने उस जमाने में अंग्रेजी भाषा की चर्चित पुस्तकों के प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किए, जैसे मेरी स्टोप्स की लोकप्रिय

पुस्तक 'मेरिड लव' का पं. संतराम बी.ए. द्वारा हिन्दी अनुवाद विवाहित प्रेम नाम से। दूसरी ओर ऐसे विषयों की पुस्तकों को हिन्दी में प्रकाशित करने का साहस भी किया, जो वर्जित थे। भारत पर में परिवार-नियोजन पर सबसे पहली हिन्दी पुस्तक 'सन्तान संख्या का सीमा बंधन' उन्होंने प्रकाशित की थी। यह 300 पृष्ठों की सचित्र प्रामाणिक पुस्तक थी। 'बर्थ कंट्रोल' के लिए तब हिन्दी का कोई शब्द प्रचलित नहीं हुआ था, क्योंकि जनसाधारण में जन्म निरोध की न समझ थी और न ही उसकी उपयोगिता का ज्ञान था। पुस्तक प्रकाशित होने पर बावैला मचा था, कि पुस्तक का विषय ही अनैतिक है, आदि।

सन् 1920 और 1930 के दशक में राजपाल जी ने चार भाषाओं में एक साथ स्तरीय पुस्तकें प्रकाशित कीं। हिन्दी और उर्दू में उनके द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की संख्या 200 से ऊपर थी। गुरुमुखी भाषा में केवल कुछेक पुस्तकें ही प्रकाशित की। अंग्रेजी में सुनियोजित ढंग से अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं, जो उस समय के विख्यात विद्वानों द्वारा लिखी गई थीं, जिनका अंग्रेजी पर पूरा अधिकार था। पं. गुरुदत्त, एम.ए., जो गवर्नमेंट कालेज, लाहौर में प्रोफेसर थे और डी.ए.वी. कॉलेज के संस्थापकों में थे, उनकी 400 पृष्ठ की पुस्तक विजडम ऑफ रिशीज थी। अपने विषय पर यह पुस्तक आज भी प्रामाणिक दस्तावेज के समान मानी जाती है, हालाँकि इस बात को 80 वर्ष से अधिक हो गए हैं। इसी प्रकार प्रो. टी. एल. वासवानी की पुस्तक 'दि टार्च-बेयरर' प्रकाशित की। वासवानी जी उस समय के चर्चित विद्वान् लेखक व सिंधी समाज के प्रबुद्ध विचारक थे। एक ओर पुस्तक थी, जो आर्य समाज के दस नियमों का अंग्रेजी में परिचय देती है, और जिसके लेखक थे पं. चमूपति, जो बाद में गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य बने। पुस्तक का नाम था 'दि टैन कमाण्डमेंट्स।' इस पुस्तक के आज तक अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त भी अन्य कई पुस्तक अँग्रेजी में प्रकाशित की गई।

विचार स्वातन्त्र्य और प्रकाशन की स्वतंत्रता सदियों से कठिन परीक्षा से गुजर रही है। इतिहास साक्षी है कि सम्राटों ने और धर्मगुरुओं ने, जब भी कोई पुस्तक अथवा विचारधारा उनके मत के प्रतिकूल हुई, तो उसे दबा

देने, पुस्तक की प्रतियाँ जब्त कर लेने अथवा उन्हें जला देने में था। ऐसे विचारकों और लेखकों को कठिन से कठिन सजा और मृत्यु दण्ड देने तक में भी जरा भी हिचक नहीं की। अनेक लेखकों को कारावास के दण्ड भुगतने पड़े, उन्हें कत्ल कर दिया गया, उन पर मौत के फतवे लगाए गए और उन्हें सिर पर इनाम भी रखे गए। कुछ वर्ष पूर्व सलमान रश्दी पर मुसलमान कठमुल्लों ने उसे कत्ल करने के लिए करोड़ों रुपयों के इनाम की घोषणा कर दी थी। उसकी पुस्तक के नारवेजियन प्रकाशक पर घातक हमला किया गया और लंदन तथा अनेक शहरों में पुस्तक की उन दुकानों को जला दिया गया, जहाँ रश्दी की पुस्तक बिक रही थी। ऐसा ही व्यवहार बंग्लादेश की लेखिका तसलीमा नसरीन के साथ हो रहा है, जो अब अपनी विवशता में, देश निकाले का जीवन जी रही हैं। उनके सिर पर कट्टरपंथियों की तलवार लटक रही है।

महाशय राजपाल जी ने प्रकाशन की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की बलि दी। पिछली सदी के पहले तीन दशक अर्थात् सन् 1930 तक विभिन्न धर्मों में एक दूसरे की तीखी आलोचना, वाद-विवाद, शास्त्रार्थ, बहस-मुबाहसों का चलन था। एक धर्मावलम्बी अन्य धर्मों के मंतव्यों पर दो टूक भाषा में लिखा करता था और अपने धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करता था। उन्हीं दिनों मुसलमानों की ओर से दो पुस्तकें प्रकाशित की गई- 'कृष्ण तेरी गीता जलानी पड़ेगी' और 'उन्नीसवीं सदी का महर्षि'। उन दोनों पुस्तकों में योगेश्वर श्रीकृष्ण और महर्षि दयानन्द पर बहुत ही भद्दे और अश्लील शब्दों में कीचड़ उछाला गया था। जैसा कि उस समय का चलन था, इन दोनों पुस्तकों के प्रत्युत्तर में महाशय राजपाल जी ने 'रंगीला रसूल' नाम की पुस्तक सन् 1923 में प्रकाशित की, जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इस पुस्तक के लेखक के नाम के स्थान पर 'दूध का दूध और पानी का पानी' लिखा था।

महाशय राजपाल जी द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तकों पर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने मुकदमा चलाया, जुर्माने किए और ऐसी पुस्तकों के संस्करण भी जब्त कर लिए। इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् भाई परमानन्द जी ने, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने काले पानी की सजा दी थी, इतिहास की

अनेक पुस्तकें राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखी थीं। ये सभी पुस्तकें राजपाल जी ने प्रकाशित की थीं। इनमें से 'तारीख-ए-हिन्द' (भारत का इतिहास) पुस्तक छपते ही जब्त की गई और मुकदमा भी चला। इसी तरह एक अन्य पुस्तक देश की बात, जो हिन्दी में प्रकाशित हुई थी, उस पर बनारस की कोर्ट में मुकदमा चला, जिसके सिलसिले में उन्हें अनेक बार लाहौर से बनारस की यात्राएँ करनी पड़ीं। अन्य भी ऐसी अनेक पुस्तकें हैं, जिनके प्रकाशन के कारण वे ब्रिटिश सरकार के कोपभाजन बने जैसे डॉ. सत्यपाल द्वारा लिखित 'पंजाब-बीती अथवा जलियाँवाला बाग का हत्याकांड', 'कालेपानी के कारावास की कहानी' (भाई परमानन्द) इत्यादि।

महाशय राजपाल जी स्वयं अच्छे लेखक एवं कुशल सम्पादक थे। उन्होंने अनेक पुस्तकें स्वयं लिखी तथा अन्य सुयोग्य लेखकों के लेखों तथा भाषणों को लिपिबद्ध करके और सम्पादित करके प्रकाशित किया। अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानंद जी के पत्र 'सद्धर्म-प्रचारक' में वे स्वामी के सहायक सम्पादक थे। कालांतर में वे लाहौर से निकलने वाले साप्ताहिक प्रकाश के वर्षों सह-सम्पादक रहे। इसी पृष्ठभूमि के साथ उन्होंने पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में तब पदार्पण किया जब इस व्यवसाय में संघर्ष और जोखिम अधिक था, पैसा कम। परन्तु उस जमाने में वही लोग प्रकाशन में आते थे जो आदर्शवादी थे और अपनी धुन के पक्के, और जो पुस्तकों के माध्यम से सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना जगाना चाहते थे।

महाशय राजपाल जी की आयु उनेक बलिदान के समय केवल 44 वर्ष थी। अपने छोटे से लगभग पन्द्रह वर्षों के प्रकाशकीय जीवन काल में उन्होंने न केवल हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन में नए कीर्तिमान स्थापित किए, अपितु सुदूर देशों में बसे भारतीय मूल के लोगों तक उन्हें पहुँचाने का भी योजनाबद्ध ढंग से सफल प्रयत्न किया। उनके जीवन काल में उनके प्रकाशन मॉरिशस, फिजी, पूर्वी अफ्रीका, ब्रिटिश तथा डच गायना आदि स्थानों पर बड़ी संख्या में जाते थे। पुस्तकों के माध्यम से भारतीय विचारधारा और संस्कृति के संदेशवाहक साहित्य के निर्यात में भी उनकी ऐतिहासिक भूमिका रही।

ससस